Vijaya

सामाजिक विज्ञान का शिक्षण शास्त्र

(PEDAGOGY OF SOCIAL SCIENCE)

● Dr. K.C. JAIN
● MANJU JAIN

AL-9
SH-4

VIJAYA PUBLICATIONS
LUDHIANA

इकाई - 1
(Unit - 1)

सामाजिक विज्ञानों के आधार और संदर्भ व सामाजिक विज्ञान के शिक्षण की प्रकृति और क्षेत्र

(Foundation and Context of Social Science & Nature and Scope of Teaching of Social Science)

1. एक स्कूल विषय के रूप में सामाजिक विज्ञानों का अर्थ, प्रकृति और क्षेत्र
   (Meaning, Nature and Scope of Social Science as a School Subject)

2. विद्यालय स्तर पर सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्य
   (Aims and Objectives of Teaching Social Science at School Level)

3. सामाजिक विज्ञानों में वर्गीकरण और व्यवहार के उद्देश्य
   (Taxonomy and Behavioural Objectives in Social Sciences)

4. सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण के मूल्य
   (Values of Teaching Social Sciences)

5. सामाजिक विज्ञान का विषय के भीतर और अन्य विषयों के साथ संबंध एवं इतिहास, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र, भूगोल, समाज शास्त्र, गणित, प्राकृतिक विज्ञान और मनोविज्ञान के साथ सामाजिक विज्ञानों के सह-संबंध
   (Relationship of Social Science with Other Subjects and Within the Subject & Correlation of Social Science with History, Economics, Civics, Geography, Sociology, Mathematics, Natural Science and Psychology)

CHAPTER 1

एक स्कूल विषय के रूप में सामाजिक विज्ञानों का अर्थ, प्रकृति और क्षेत्र (Meaning, Nature and Scope of Social Science as a School Subject)

सामाजिक विज्ञान का अर्थ
(Meaning of Social Science)

सामाजिक विज्ञान के विषय की विषय-वस्तु मनुष्य तथा उसकी सामाजिक गतिविधियां हैं। इन मानवीय गतिविधियों का सम्बन्ध मनुष्य तथा समाज से है और मनुष्य का समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन सामाजिक विषयों के अर्न्तगत यह अध्ययन किया जाता कि मानवीय संस्थाओं की उत्पति और उनका संगठन कैसे और क्यों हुआ और फिर बाद में चलकर उनका विकास किस प्रकार से हुआ। इससे यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट होती है कि मनुष्य और समाज का किस प्रकार का सम्बन्ध है ? सन् 1916 में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की सामाजिक विज्ञान की परिषद् ने इन विषयों की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "जो विषय मानव-समाज के संगठन, विकास एवं मनुष्य का सामाजिक प्राणी के रूप में अध्ययन करते हैं, वे सामाजिक विज्ञान के अर्न्तगत आते है।" ("These subjects whose subjects-matter relates directly to the organisation and development of human society and so man as a member of social gropus.") इससे यह स्पष्ट होता है कि इन विषयों की विषय सामाग्री किसी व्यक्ति विशेष से या समाज विशेष से सम्बन्धित नहीं है बल्कि विश्व के सम्पूर्ण मानव समाज से सम्बन्धित है। इससे छात्र-छात्राओं को यह शिक्षा मिलती है कि वे समाज में किस प्रकार उचित ढंग से अपना स्थान बनाएं और किस ढंग से समाज के संगठन और विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकें।

इस बात की चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं कि इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल और अर्थशास्त्र के सामूहिक नाम को सामाजिक विज्ञान का नाम दिया गया है। एक समय ऐसा था कि ये सभी विषय अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए हुए थे। शिक्षक इन विषयों में से किसी विषय विशेष को पढ़ाते हुए इस बात का ध्यान रखने का प्रयास नहीं करता था कि इन सभी विषयों में कोई सम्बन्ध भी स्थापित हो सकता है, परन्तु आधुनिक युग में शिक्षित वर्ग की विचारधारा में तीव्र गति से परिवर्तन आने के परिणामस्वरूप यह समझा जाने लगा कि इन विषयों में आपसी सम्बन्ध स्थापित करना अधिक मनोवैज्ञानिक, सार्थक, शिक्षानुकूल और उपयोगी है। यह मत है भी अर्थपूर्ण और तर्कपूर्ण, क्योंकि आज के नागरिक की कोई भी समस्या ऐसी नहीं है जिसका स्वतन्त्र रूप से अस्तित्व हो।

इसके अतिरिक्त मानव सभ्यता का इतिहास भी इस बात पर प्रकाश डालता है कि भूतकाल में कोई भी घटना इस प्रकार नहीं घटी कि उस पर किसी प्रकार का सामाजिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक प्रभाव न पड़ा हो। इसलिए इन विषयों को पूर्ण रूप से अलग-अलग करके नहीं पढ़ाया जा सकता। यदि इनको पूर्ण रूप से अलग-अलग करके पढ़ाया जाएगा तो उस विषय का ज्ञान आधा-अधूरा ही रहेगा। उदाहरण के लिए इतिहास पढ़ाना हो तो तत्कालीन भौगोलिक और सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करना आवश्यक होता है। सारांश में यह कहना उचित रहेगा कि सामाजिक विज्ञान के विषयों को समवाय (correlation) विधि से पढ़ाना बहुत उचित और मनोवैज्ञानिक है।

यह तथ्य सर्वविदित है कि व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध अटूट और स्वाभाविक है। कोई भी मनुष्य समाज से दूर रह कर अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। जो मनुष्य ऐसा करने का प्रयास करता है वह मानव संज्ञा से दूर चला जाता है। अरस्तु का विचार है कि "जो मनुष्य समाज में रहने की आवश्यकता अनुभव नहीं करता वह या तो देवता है या जानवर।" ("He who does not feel the necessity of society is either a God or a Beast,"–Aristotle) इसका अर्थ यह है कि मनुष्य के लिए समाज अत्यन्त आवश्यक है। इससे परे मनुष्य का ठीक अस्तित्व सम्भव नहीं है।

शिक्षा एक सामाजिक क्रिया है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के विकास में पूर्ण सहायक होती है। प्रगतिशील शिक्षा शास्त्री जॉन डीवी का विचार है कि "शिक्षा ऐसी क्रिया है जो व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों के विकास की क्रिया की अपेक्षा इस बात पर अधिक ज़ोर देती है कि यथा समय उन्नति के लिए सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण होता रहे और शिक्षा से मनुष्य को नवीन अनुभव मिलते रहे।" ("Education is dynamic function which is not so much concerned with the unfoldment of latent powers from within but it reveals the social fabric and reconstructs human experience."–John Dewey)

इस प्रकार समाज के निर्माण का पूर्ण उत्तरदायित्व शिक्षा पर आता है। यदि देश की शिक्षा प्रणाली जन-कल्याण की दृष्टि से सोच-विचार कर बनाई जाती है, तो उससे समाज प्रगति करता है और देश भी उन्नत होता है। जन-समुदाय छोटी-छोटी बातों पर कलह नहीं करता है। इस प्रकार की शिक्षा के ढांचे में ढला हुआ समाज आने वाले समाज का पथ-प्रदर्शक बनता है। विद्यालयों की अपेक्षा समाज ही शिक्षा केन्द्र बन जाता है। उससे ही व्यक्ति का सही रूप में विकास होता है। जॉन डीवी ने शिक्षा की परिभाषा में लिखा है कि "व्यक्ति को ठीक रूप में शिक्षा तभी मिलती है जब वह मानव समाज में क्रियाशील होकर कार्य करता है।" ("All education proceeds by the participation of the individuals in the social consciousness of the race."–John Dewey)

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्ति के विकास के लिए शिक्षा और समाज दोनों आवश्यक हैं। यह भी निश्चित है कि शिक्षा और समाज में पारस्परिक सम्बन्ध भी घनिष्ट है। ऐसी दशा में यदि समाज और मनुष्य से सम्बन्धित विषयों को भिन्न-भिन्न करके पढ़ाया जाएगा तो विद्यार्थियों का ज्ञान अधूरा एवं अव्यवस्थित रहेगा। विद्यार्थियों को न तो समाज के क्रमबद्ध विकास का पता चल सकेगा और न उनमें जीवन की समस्याओं को हल करने की प्रवृत्ति आएगी। इसका परिणाम यह होगा कि सामाजिक प्रगति रुक जाएगी। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि उन विषयों को जो मनुष्य उसकी क्रियाओं समाज के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हैं, समन्वय के साथ पढ़ाया जाए। ये विषय सामाजिक विज्ञान के विषय हैं जिनसे सामाजिक मस्तिष्क, सामाजिक भाव तथा सामाजिकता उत्पन्न हो, विद्यार्थियों में सामाजिक चरित्र की दृढ़ता आए जिससे वे भविष्य में एक आदर्श समाज की स्थापना कर सकें।

सामाजिक विज्ञान की प्रकृति
(Nature of Social Science)

सामाजिक जीवन के प्रमुख घटक–मानव पर्यावरण तीन प्रकार का होता है, जो निम्न है-

I. प्राकृतिक और आर्थिक
II. मानवीय और सांस्कृतिक
III. सामाजिक और राजनैतिक

इन तीनों वातावरणों को मोटे तौर पर निम्न प्रकार से दर्शाया गया है, जिन्हें हम विषयों का नाम देते हैं-

I. भूगोल और अर्थशास्त्र
II. इतिहास
III. नागरिक शास्त्र।

भूगोल प्रथम प्रकार का अर्थात् प्राकृतिक तथा आर्थिक पर्यावरण का ज्ञान देता है। इतिहास दूसरे और नागिरक शास्त्र तीसरे प्रकार के। इसी कारण भूगोल को सामाजिक विज्ञान में सम्मिलित किया जाता है।

भूगोल तथा सामाजिक विज्ञान–भूगोल मनुष्य और उसके प्राकृतिक वातावरण की क्रिया-प्रतिक्रिया को स्पष्ट करता है। वह यह बताता है कि इस वातावरण ने मानव सभ्यता के विकास को नियन्त्रित करने का यत्न किया है। सामाजिक विज्ञान अपनी पाठ्य सामग्री के लिए इस ज्ञान का प्रयोग करता है।

इतिहास तथा सामाजिक विज्ञान-इतिहास मनुष्य की सहकारिता पर आधारित सफलताओं का निरुपण करता है। यह मानव-सभ्यता के विकास की कहानी है। मानव की वर्तमान समस्याओं और सामाजिक संस्थाओं के विकास को समझने में इस जानकारी से बड़ी सहायता मिलती है। अत: सामाजिक विज्ञान की पाठ्य सामग्री में इसका भी समावेश किया जाता है।

सामाजिक विज्ञान तथा अर्थशास्त्र मानव द्वारा उत्पादित वस्तुओं की खोज से जो सम्बन्ध पैदा होते हैं, वे अर्थशास्त्र के अन्तंगत आते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक आर्थिक क्रियाएं ऐसी हैं जो मानवीय सम्बन्धों के साथ सम्बन्धित हैं। यथा मजदूर संगठन, बैंक, सहकारी समितियां इत्यादि जो उत्पादन के काम को सरल बनाते हैं। ये सभी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति और मावन के विकास के लिए आवश्यक हैं। अत: सामाजिक विज्ञान अर्थशास्त्र में ऐसी सामग्री लेता है जो मानव के लिए अत्यन्त अर्थपूर्ण है।

नागरिक शास्त्र तथा सामाजिक विज्ञान-नागरिक के अधिकार और कर्त्तव्य तथा प्रशासन सम्बन्धी नियन्त्रण से उत्पन्न सम्बन्ध नागरिक-शास्त्र की ओर संकेत करते हैं। सामाजिक विज्ञान इस विषय से ऐसी पाठ्य-सामग्री लेता है जो बालक के वर्तमान जीवन की इन समस्याओं के साथ सम्बन्ध रखती है।

भूगोल का अर्थ तथा प्रकृति-भूगोल से अभिप्राय उस विषय से है जो मानव के भौतिक वातावरण अर्थात् मानव तथा पृथ्वी की परस्पर प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है तथा जिनमें मानवीय दृष्टिकोण की प्रधानता रहती है। इसकी विषय-वस्तु भौतकी, प्राणिशास्त्र, वनस्पति शास्त्र, अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र विषयों से ली गई है। यह प्राकृतिक गोचर पदार्थों के सम्बन्ध से निकाले गए अन्य विज्ञानों के निष्कर्षों का मानव प्रतिक्रियाओं के साथ समन्वय स्थापित करता है।

भूगोल का क्षेत्र-संसार आज विस्तृत तथा गहन संचार माध्यम एवं सुविधाओं के कारण सिमट कर हमारा पड़ोसी बन गया है। सारे देश हमारे पड़ोसी बन गए हैं। इन पड़ोसियों की जानकारी होने से उनके प्रति मानवीय भावनाएं जैसे-सौहार्द, सहानुभूति तथा विश्वबन्धुता की भावनाएं उत्पन्न होती हैं। अत: भूगोल की विषय-वस्तु ऐसी हो जाती है कि अपने देश तथा अन्य देशों की प्राकृतिक विशिष्टताओं तथा उनसे प्रभावित निवासियों के आचार-विचार, रहन-सहन की पर्याप्त जानकारी होने से मानवीय सद्भावना जागृत होती है।

संक्षेप में भूगोल की विषय-सामग्री इस प्रकार है-

* **प्राकृतिक अथवा भौतिक भूगोल-**

(i) सौरमंडल की जानकारी-पृथ्वी की जानकारी।

(ii) थलमंडल

(iii) वायुमंडल

* **प्रादेशिक भूगोल-**

(i) प्रादेशिक विस्तार-विभाजन आदि।

(ii) प्राकृतिक भौगोलिक खंड।

* **भारत का भूगोल-**

(i) भारत की स्थिति-विस्तार आदि।

(ii) नदियाँ, जलवायु आदि।

(iii) वन सम्पदा, खनिज सम्पदा आदि।

(iv) कृषि सिंचाई आदि।

(v) उद्योग-धन्धे।

(vi) जल-विद्युत्, बहुउद्देश्यी योजनाएं आदि।

(vii) व्यापार-आन्तरिक तथा विदेशी।

(viii) यातायात।

(ix) जनसंख्या।

(x) वातावरण की शुद्धता-प्रदूषण आदि।

* **संसार का भूगोल-**

(i) महाद्वीप तथा महासागर।

(ii) महाद्वीपों के धरातल, नदियाँ आदि।

भूगोल शिक्षण के उद्देश्य-

ज्ञानात्मक उद्देश्य-सामाजिक विज्ञान के सन्दर्भ में भूगोल-शिक्षण के प्रमुख ज्ञानात्मक उद्देश्य निम्न प्रकार हैं-

- प्राकृतिक पर्यावरण से परिचित कराना।
- प्राकृतिक पर्यावरण तथा मानव प्रयासों के बीच चल रही अन्त: क्रिया से परिचित कराना तथा मानव को अधिक से अधिक प्रयत्नशील बनने के लिए प्रेरित करना।
- विभिन्न राज्यों तथा क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति के बारे में जानकारी बढ़ाना तथा पारस्परिक अन्तनिर्भरता का आभास कराना।
- व्यक्ति के ज्ञान को बहुपक्षीय एवं बहुउद्देश्यी बनाने में सहायक होना।

- प्रकृति प्रेम की भावना के विकास में सहायक होना।
- विभिन्न पर्यावरण में बसे लोगों की आकृति, रंग, भोजन आदि में अन्तर को समझना तथा सह-अस्तित्व की भावना जागृत करना।
- समान भौगोलिक परिस्थितियों में बसे लोगों द्वारा किए गए सफल प्रयासों की जानकारी बढ़ाना तथा उनके अनुभवों से लाभ उठाने के लिए प्रेरित करना।
- भौगोलिक खोजों से परिचित करना।

अभिरुचि तथा अभिवृत्ति का विकास-

- अपने आस-पड़ोस में मिलने वाले भूगोल के नमूनों (चट्टानों, वनस्पति, मिट्टी, खनिज आदि) का संकलन करने में रुचि बढ़ाना।
- देश एवं विदेश के महत्त्वपूर्ण स्थानों (औद्योगिक एवं अन्य) के चित्र, डाक-टिकट, अन्वेषकों आदि के चित्रों का संकलन करने तथा विदेश में मित्र (पेन-फ्रैंडस) बनाने में रुचि बढ़ाना।
- अपने देश के आर्थिक विकास एवं उद्योग-धन्धों की प्रगति में रुचि एवं उनके प्रति प्रशंसात्मक भावना का विकास करना।
- भौगोलिक खोजों तथा अन्वेषकों के साहसी कृत्यों की जानकारी में रुचि एवं उनके प्रति प्रशंसात्मक भावना का विकास करना।
- यातायात, संचार व्यवस्था हेतु निर्मित रेल व तार लाइनों एवं जन-स्थानों को सुरक्षित रखने की सबल मनोवृत्ति का निर्माण करना।
- स्वतन्त्र भारत में औद्योगिक एवं आर्थिक विकास के लिए निर्मित, क्रियान्वित एवं क्रियाशील, विविध बहुमुखी योजनाओं के प्रति प्रशंसात्मक भावना उत्पन्न करना।
- अपने आस-पड़ोस एवं विद्यालय में पेड़-पौधे आदि लगाने में रुचि।
- इस विषय के उच्च स्तरीय अध्ययन में रुचि बढ़ाना।

कुशलताएं एवं क्षमताएं-

1. ऋतु दशा (मौसम) के विभिन्न तत्त्वों को मापने में काम आने वाले सरल यन्त्रों का प्रयोग करना सिखाना।

2. भौगोलिक मानचित्र, ग्लोब तथा तथ्यों सम्बन्धी आंकड़ों के आधार पर बने हुए ग्राफ, डायग्राम्स आदि को पढ़ने, समझने एवं उपयोग करने तथा स्वयं तथा प्रदर्शित करने की क्षमता का विकास करना।

3. भारत, महाद्वीपों तथा संसार की सीमा-रेखाचित्र में पढ़ी हुई भौगोलिक जानकारी अंकित करना।

4. दिए हुए अक्षांश तथा देशान्तर की सहायता से नक्शे में किसी स्थान को ढूँढ लेने की क्षमता का विकास करना।

इतिहास का अर्थ-इतिहास वह अध्ययन है जो मानव द्वारा अतीत में किए गए प्रयत्नों एवं उनके क्रम में घटित घटनाओं का अध्ययन वर्तमान को भली भांति समझने में करता है तथा वर्तमान को बेहतर बनाने के लिए प्रेरित करता है। साथ ही उज्जवल भविष्य के लिए मार्गदर्शन करता है। मानव द्वारा अपने जीवन को सुखी और सन्तोषपूर्ण बनाने हेतु अतीत में किए गए प्रयत्नों तथा उनसे उत्पन्न घटनाओं का विवरण इतिहास में दिया गया है।

इतिहास की प्रकृति-इतिहास की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं-

* इतिहास में घटनाओं का समय-क्रम महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।
* इतिहास घटनाओं के कारण तथा उनके तत्कालीन एवं दीर्घकालीन मानवीय प्रभावों का पूरा अध्ययन करता है।
* इतिहास का अध्ययन हमें वर्तमान परिस्थितियों एवं समस्याओं को समझने तथा उनके निराकरण में सहायता एवं अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है।
* प्रत्येक जाति, राज्य, क्षेत्र तथा समाज का अपना इतिहास होता है।
* भारत का अपना अत्यन्त दीर्घकालीन इतिहास है।
* भारतीय इतिहास को अध्ययन की सुविधा हेतु तीन कालों-प्राचीन काल, मध्य काल एवं आधुनिक काल में बाँटा जाता है।
* ऐतिहासिक ज्ञान के आधार पर लिखित तथा पुरातत्त्वावशेष है।
* भारतीय सभ्यता के विकास में मानव की विभिन्न उपजातियों का योगदान रहा है।

इतिहास की क्षेत्र-इतिहास का क्षेत्र बहुत विशाल है। मानव ने सभी क्षेत्रों में अपनी सभ्यता के विकास का आरम्भ अपनी गुफाओं में किया तथा आज वह गगनचुम्बी मकानों में रह रहा है। इन सभी घटनाओं का इतिहास से सम्बन्ध है। मानव आरम्भ से सभी क्षेत्रों तथा देशों में रहता आया है। अतः इतिहास का सम्बन्ध विश्व से है।

इतिहास का सम्बन्ध दर्शन, साहित्य, ललितकलाओं, वस्तुकला, भाषा, राजनीति, धर्म, अर्थशास्त्र, भूगोल, नागरिक शास्त्र आदि विषयों से है।

इतिहास शिक्षण के उद्देश्य-इतिहास को सामाजिक अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सम्मिलित किया जाता है-

* देश की ऐतिहासिक घटनाओं, उनके कारण तथा समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का क्रमबद्ध ज्ञान देना।
* वर्तमान समस्याओं को भली-भांति समझ पाने एवं उनके दीर्घकालीन हल ढूंढने में सहायक होना।
* अपने देश की संस्कृति एवं परम्पराओं के प्रति गौरव, प्रेम तथा श्रद्धा की भावना का विकास करना।
* युद्धों के प्रति घृणा की मनोवृत्ति तथा शान्ति व्यवस्था की आवश्यकता की अनुभूति करना।
* देश की संस्कृति के निर्माण में सभी वर्गों के योगदान को महत्त्व देना।
* अनेकता में राष्ट्रीय एकता तथा भावात्मक एकता के महत्त्व को पहचानना।
* विश्व की ऐतिहासिक घटनाओं, उनके कारणों एवं समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का क्रमबद्ध ज्ञान कराना।
* अन्य संस्कृतियों, ऐतिहासिक परम्पराओं, धर्म आदि के प्रति सहिष्णुता एवं उचित सम्मान की भावना का विकास करना।
* इतिहास सम्बन्धी उच्च स्तरीय अध्ययन के प्रति रुचि जागृत करना।
* अन्य देशों के इतिहास के अध्ययन के प्रति रुचि का विकास करना।
* विभिन्न शक्तियों जैसे-तर्क शक्ति, तुलना शक्ति, कल्पना शक्ति तथा निर्णय आदि के समुचित विकास में सहायता देना।
* विश्व शान्ति बनाए रखने की प्रेरणा देना।
* राष्ट्र एवं विश्व की दृष्टि से सुनागरिकता की भावना तथा राजनयिक नीति के निर्माण में सहायक होने की मनोवृत्ति का विकास करना।

अभिवृत्तियों एवं अभिरुचियों का निर्माण तथा विकास-

कक्षा 6 से 8 के स्तर तक सामाजिक अध्ययन के सन्दर्भ में इतिहास से सम्बद्ध निम्नलिखित अभिरुचियों एवं अभिवृत्तियों के विकास की अपेक्षा की जाती है-

* भारत के गौरवपूर्ण अतीत के प्रति सम्मान की भावना।
* भारत की समन्वित संस्कृति एवं इसकी समृद्धि के प्रति अपनत्व की भावना।
* भारत की प्राचीन साहित्यिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं कलात्मक धरोहर के प्रति गौरव, श्रद्धा एवं सुरक्षा की भावना।
* देश की ऐतिहासिक एवं कलात्मक सम्पत्ति-ऐतिहासिक स्मारक, गुफाएं, भवन आदि की सुरक्षा में रुचि।

* भारत की महान् विभूतियों के प्रति श्रद्धा की भावना एवं उनके कार्यों के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोण।
* उत्तरी एवं दक्षिणी भारत की संस्कृतियों में ऊपर से दिखाई देने वाले अन्तर की पृष्ठभूमि में एकीकरण सम्बन्धी तत्त्वों के प्रति प्रशंसात्मक भावना।
* देश की स्वतन्त्रता के लिए देशभक्तों एवं नेताओं द्वारा दिए गए बलिदान एवं अहिंसात्मक प्रयत्नों के प्रति सम्मान की भावना।
* युद्धों के प्रति विकर्षण एवं शान्ति के प्रयत्नों के प्रति लगाव की भावना।
* देश व विश्व के इतिहास के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने में रुचि।
* इतिहास सम्बन्धी मूल स्त्रोतों एवं उनके आधार पर की जा रही खोज में रुचि।
* ऐतिहासिक महापुरुषों, स्मारकों एवं तत्सम्बन्धी सूचनाओं के संकलन में रुचि।
* ऐतिहासिक स्थानों व ऐतिहासिक सामग्री-संग्रहालयों को देखने में रुचि।
* ऐतिहासिक स्थानों, स्मारकों तथा वस्तुओं के चित्र एवं विवरणों के संकलन, संग्रह में रुचि।

कौशल एवं दक्षताओं का निर्माण तथा विकास-

1. ऐतिहासिक सूचनाओं को प्रदर्शित करने वाली निम्नलिखित सामग्री को पढ़ना, समझना तथा उपयोग में ला सकना एवं स्वयं निर्माण कर सकना।

(क) चार्ट्स एवं डायग्राम्स (ख) वंशावली चार्ट्स
(ग) समय-रेखा, समय चक्र, समय प्रवाह, (घ) समय चार्ट
(ङ) ऐतिहासिक धारा चित्र (च) ऐतिहासिक मानचित्र
(छ) युद्ध योजना (ज) मॉडल।

2. मूल ऐतिहासिक स्त्रोतों से लिए गए अंशों को समझना एवं उनकी सत्यता का स्त्रोतों के आधार पर पता लगाना।

3. सरलता से उपलब्ध शिखालेखों, मूर्तियों आदि के प्रारूप (मॉडल) तैयार करना।

नागरिक शास्त्र का अर्थ क्या है ? इसकी विषय सामग्री में किन-किन बातों का विवरण रहता है ? इसके उद्देश्य कौन-कौन से हैं जिनके कारण इसे सामाजिक ज्ञान का एक प्रमुख घटक माना जाता है ?

नागरिक शास्त्र का अर्थ-नागरिक शास्त्र का अर्थ उस अध्ययन से है जो समाज एवं व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों को मधुर बनाने एवं एक-दूसरे के जीवन में सहायक होने के लिए व्यक्ति को जानकारी देता है। साथ ही वह एक विशेष प्रकार के दृष्टिकोण

अपनाने पर बल देता है जिससे व्यक्ति को अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों में उचित समन्वय स्थापित करने में सहायता मिल सके। नागरिक शास्त्र उन सभी मानवीय संस्थाओं, आदतों और क्रियाओं का अध्ययन करता है। जिनके प्रति मानव अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है तथा समाज में सदस्यता के लाभों की प्राप्ति करता है। व्यक्ति को अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति जागरुक बनाने के साथ ही वह समाज को प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करने का भी अध्ययन करता है।

नागरिक शास्त्र की विषय सामग्री

- व्यक्ति, समाज एवं राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों और पारस्परिक निर्भरता की जानकारी।
- नागरिक के अधिकार और कर्त्तव्य।
- जनतंत्र की विशेषताओं की जानकारी।
- भारतीय संविधान तथा इसकी विशेषताएं आदि।
- केन्द्रीय शासन व्यवस्था।
- राज्य की शासन व्यवस्था।
- स्वायत्त शासन एवं प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण।
- भारत की प्रमुख आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक तथा राजनीतिक समस्याएँ तथा उनके निराकरण के उपाय।
- संयुक्त राष्ट्र संघ तथा इसका संगठन-विभिन्न गतिविधियां।
- विश्व शान्ति, निरस्त्रीकरण आदि।
- विकासशील देश, विकसित देश तथा पिछड़े देश समस्याएँ।

नागरिक शास्त्र के प्रमुख उद्देश्य

ज्ञानात्मक उद्देश्य-

1. व्यक्ति में समाज के कुशल नागरिक के रूप में अपना दायित्व निभाने के लिए उचित व्यवहार क्षमता के विकास में सहायता देना।
2. व्यक्ति को जनतन्त्र सम्बन्धी उचित जानकारी देना।
3. व्यक्ति में जनतांत्रिक गुणों का विकास करना।
4. व्यक्तियों को देश व राज्य की शासन व्यवस्था से परिचय कराकर इसकी कार्यप्रणाली व व्यवस्था में समुचित सहयोग देने की क्षमता का विकास करना।
5. व्यक्ति में राज्य, देश तथा विश्व की समकालीन घटनाओं तथा समस्याओं को भली प्रकार से समझाकर उनके बारे में अपना मत बनाने की क्षमता का विकास करना।

6. चुनाव प्रणाली से परिचित करना।
7. व्यक्ति को कुशल नेता तथा बुद्धिमान अनुयायी बनाने में सहायक होना।
8. समकालीन सामाजिक समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की क्षमताओं के विकास में सहायक होना।
9. विश्व शान्ति तथा विश्व बन्धुता हेतु उचित दृष्टिकोण बनाने में सहायता देना।

अभिरुचि तथा अभिवृति का विकास

1. सरल जीवन व्यतीत करने की मनोवृत्ति का विकास करना।
2. स्वानुशासनपूर्ण जीवन व्यतीत करने की मनोवृत्ति का विकास करना।
3. दूसरों के प्रति सहनशीलता की भावना का विकास करना।
4. जनतांत्रिक शासन प्रणाली में आस्था की भावना का विकास करना।
5. परिवार से लेकर समाज के सामूहिक उत्तरदायित्वों को वहन करने में रुचि का विकास करना।
6. देश में शासन सत्ता के विकेन्द्रीकरण की नीति के प्रति उचित दृष्टिकोण का विकास करना।
7. भारतीय संविधान, राष्ट्रीय ध्वज तथा राष्ट्रीय गीत के प्रति सम्मान तथा श्रद्धा की भावना का विकास करना।
8. राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति सजग दृष्टिकोण का विकास करना।

कुशलताओं तथा क्षमताओं का विकास

1. नागरिक शास्त्र सम्बन्धी सरल चार्ट्स, डायग्राम्स, मानचित्र तथा मॉडल्स आदि को सूझ-बूझ से समझ सकना।
2. स्वयं नागरिक शास्त्र सम्बन्धी सरल चार्टर्स, डायग्राम्स, मानचित्रों आदि को बनाने के कौशल का विकास करना।
3. अपने साथियों से अपनी बात उचित रूप से कहने की क्षमता का विकास करना।
4. किसी भी समूह में सक्रिय भाग लेकर निष्कर्ष तथा निर्णय पर पहुंचने की क्षमता का विकास करना।
5. अपने विद्यालय में स्व-शासन गतिविधियों में भाग लेने के कौशल का विकास करना।
6. स्थानीय विकास सम्बन्धी कार्यों में यथोचित सहयोग देने की क्षमता का निर्माण करना।

7. समाचार-पत्रों तथा अन्यत्र पढ़े हुए समाचारों आदि को अपने विषय का ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित कर सकने की क्षमता का विकास करना।

सामाजिक विज्ञान का क्षेत्र
(Scope of Social Science)

व्यक्तित्व के सन्तुलित विकास के लिए आज सभी देशों की शिक्षा पद्धति सामाजिक विज्ञान के विषय को पाठ्यक्रम में उचित स्थान दिया जा रहा है। हम इस बात की पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि सामाजिक विज्ञान के विषयों इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल और अर्थशास्त्र के अन्तर्गत मनुष्य जीवन के वे सभी पहलू आ जाते है जिनका सम्बन्ध भूतकालीन क्रिया-कलापों या घटनाओं से होता है जो उसके प्राकृतिक वातावरण से सम्बन्धित है या फिर मनुष्य के सामाजिक या राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित हैं। हम सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत मनुष्य की भूत तथा वर्तमान काल की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, प्राकृतिक और सांस्कृतिक सभी समस्याओं तथा पहलुओं का अध्ययन करते हैं। इस विषय में यह बात सभी को स्वीकृत है कि सामाजिक विज्ञान का क्षेत्र अन्य किसी भी विषय की तुलना में अधिक विस्तृत है।

मनुष्य परिवर्तन में विश्वास करता है और यही कारण है कि उसे प्रगतिशील प्राणी कहा जाता है। उसे प्रगति करने में सुख और आनन्द की अनुभूति होती है। इसके लिए हमेशा शारीरिक और मानसिक रूप से अथक परिश्रम करने में विश्वास करता है। इस परिश्रम के द्वारा ही वह प्रगति की ओर अग्रसर रहता है। इस प्रगतिशीलता और परिवर्तनशीलता के बल पर उसने अनेक प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक ढांचों में मूलभूत परिवर्तन किए हैं और विकास करने में आई हुई बाधाओं, समयस्याओं और कठिनाईयों से डटकर सामना किया है और वर्तमान अवस्था तक पहुंचा है।

आज के चकाचौंध करने वाले भौतिक युग में छात्र-छात्राओं को मानव सभ्यता के इस विकास से परिचित कराना अत्यन्त आवश्यक है जिससे वह अपने अस्तित्व को समाज में पहचान सके। साथ ही साथ उसे यह भी ज्ञान हो जाए कि उनके पूर्वजों ने कितने कठिन प्रयास किए और कठिन प्रयासों के परिणाम स्वरूप ही वर्तमान स्थिति में उनको यह भी ज्ञान हो जाए कि वर्तमान के मानव समाज ने उनकी भलाई, सुख और सुविधा के लिए कितना योगदान दिया है। जिनको ऋण रूप में उनको चुकाना है। सभी छात्र-छात्राओं को यह भी ज्ञान सामाजिक विज्ञान के अध्ययन और अध्यापन से मिलता है। जिसकी विषय सामग्री का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसकी विषय सामग्री यह है कि मानव समाज का किस प्रकार संगठन एवं विकास हुआ और आज भी किस प्रकार तीव्र गति से विकास को ओर अग्रसर है।

अमेरिकन इतिहास संघ (American Historical Association) की रिपोर्ट में बड़े स्पष्ट रूप से सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र पर प्रकाश डाला है। अमेरिका की शिक्षा प्रणाली में सुधार करने हेतु बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही संघ बना और इस संघ ने सन् 1934 ई. में अपने सुझावों को एक रिपोर्ट के रूप में प्रकाशित किया। उस रिपोर्ट में सामाजिक विज्ञानों की विषय-सामग्री तथा क्षेत्र को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है-

"विद्यालय के पाठ्यक्रम में अन्य विषयों की अपेक्षा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान समाज विज्ञान के विषयों को देना चाहिए क्योंकि इनका प्रत्यक्ष रूप से मानव-जीवन, उसकी संस्थाओं, उसके विचार तथा उसकी आकांक्षाओं पर प्रभाव पड़ता है, साथ ही राष्ट्रों की नीति निर्धारण में भी पूर्ण सहायता मिलती है। समाज विज्ञान का क्षेत्र इतना व्यापक है कि वह मानव इतिहास के प्रारंभ से लेकर आज तक के सभी पहलुओं को स्पर्श करता है जिसके अन्तर्गत प्रारिम्भक मनुष्यों के रीति-रिवाज़ों से लेकर वर्तमान समय की सभ्यता संस्कृति आती है। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से भी मानव से सम्बन्धित शास्त्र है।"

सामाजिक विषयों के अध्ययन से छात्र-छात्राओं को मानव की भूतकालीन तथा वर्तमान समस्याओं का ज्ञान हो जाता है और इसके साथ ही साथ यह भी ज्ञात हो जाता है कि सभ्यता के विकास से मनुष्य ने किस प्रकार अपने वातावरण से संघर्ष करके विजय पाई, किस प्रकार उसने उपलब्ध साधनों को समाज की प्रगति में लगाया, किस प्रकार विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्रों के निवासियों में एकता की लहर व्याप्त हुई। सारांश रूप में यह कहना उचित होगा कि सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत मानव जीवन के सभी पहलुओं का सामूहिक रूप से अध्ययन किया जाता है। सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में जीवन के किसी भी पहलू को अछुता नहीं रखा जा सकता। संक्षिप्त रूप में, सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में विस्तृत रूप को निम्न व्याख्या से समझाया जा सकता है-

1. मानव प्राकृतिक प्राणी होने के साथ-साथ सामाजिक प्राणी भी है। इसका विकास समाज में होता है और आवश्यकताओं की पूर्ति समाज में होती है। इसलिए उसको सामाजिक वातावरण का ज्ञान होना आवश्यक है। सामाजिक विज्ञान में उन सभी विषयों का समावेश होता है जिनसे मनुष्य को सामाजिक वातावरण को समझने में सहायता मिलती है, जिनसे उसमें सामाजिक गुणों के साथ-साथ चरित्र का विकास भी होता है और सामाजिक जीवन के आदर्शों के महत्त्व को भी समझता है।

2. सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत इतिहास नागरिक शास्त्र और भूगोल का अध्ययन किया जाता है इसलिए इसका क्षेत्र इन सभी विषयों तक व्याप्त है। इसमें मानव समाज की वे सभी क्रियाएं आती हैं जो मानव ने सभ्यता की आदि अवस्था से लेकर आज तक की है और वर्तमान में जो कुछ कर रहा है।

3. सामाजिक विज्ञान का क्षेत्र व्यक्ति, परिवार तक सीमित न होकर इसके अन्तर्गत राज्य और राष्ट्र भी आ जाते हैं जिनका सामाजिक विकास में पर्याप्त रूप से योगदान है। इस विषय के अध्ययन का उद्देश्य यह है कि छात्र-छात्राएं अपने वातावरण से पूर्ण रूप से परिचित हो जाएं और वे समाज एवं राष्ट्र की प्रगति में आवश्यक योगदान दे सकें। वे अपने पारिवारिक जीवन को समझें और उसकी समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करें। ऐसा करने से उनमें राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय समस्याओं को समझने और उनका समाधान करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होगी।

4. आज के भौतिक युग में विज्ञान और तकनीक की प्रगति ने देश काल की दूरी के भेद-भाव को समाप्त कर दिया है। सभी राष्ट्रों के नागरिक एक-दूसरे के निकट आ रहे हैं और पारस्परिक सम्बन्धों के महत्त्व को समझने का प्रयास कर रहे हैं। भूतकाल की अपेक्षा वर्तमान में वे अपनी समस्याओं का समाधान एक दूसरे के सहयोग से करने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार से सामूहिक प्रगति लक्ष्य का रूप धारण कर रही है। विश्व बन्धुत्व की भावना को प्रोत्साहित किया जा रहा है। यही कारण है कि आज सामाजिक विज्ञान का क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक व्याप्त हो गया है। वर्तमान युग में एक आदर्श नागरिक स्वयं या अपने से सम्बन्धित हितों की बात नहीं सोचता बल्कि वह सम्पूर्ण मानवता के हितों के बारे में सोचता है। आज छोटे से लेकर बड़े देश तक सभी शान्ति के लिए प्रयत्नशील हैं। पण्डित जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में, ''विश्व के राष्ट्रों की अधिकांश जनता ऐसी शान्ति की कामना करती है जिसमें जीत सब की हो और हार किसी की भी न हो।'' आज अधिकांश राष्ट्र निःशस्त्रीकरण के पक्ष मे हैं। भारत के प्रधानमन्त्री नेहरू ने अन्तर्राष्ट्रीय संघ की सभा में बोलते हुए गम्भीर स्वर में कहा था कि ''आज विश्व के सामने दो रास्ते हैं- शान्ति अथवा सर्वनाश।'' इसलिए विश्व को नष्ट होने से बचाने के लिए निःशस्त्रीकरण अत्यन्त आवश्यक है। इस युग में राष्ट्र एक दूसरे के इतने निकट आ गए है कि किसी भी देश के साथ किया गया अन्याय एवं अत्याचार असहनीय हो जाता है इसलिए गुलामी, पराधीनता, अमानुष व्यवहार और अनाधिकार चेष्ठा इत्यादि सभी ऐसे काम निन्दनीय तथा अनैतिक समझे जाते हैं। इन सभी बातों पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य की सामाजिक भावना का क्षेत्र बहुत विस्तृत है।

5. आज सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में वे सभी गतिविधियां एवं क्रियाएं आ जाती हैं जिनका सम्बन्ध मानव जीवन के अनेक पहलुओं से होता है। इसलिए जो विषय इन विभिन्न क्रियाओं तथा पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं उन सभी का क्षेत्र ही सामाजिक विज्ञान का क्षेत्र है। सामाजिक विषयों में सर्वप्रथम इतिहास आता है और इतिहास में प्राचीन काल के मानव की आदि अवस्था से लेकर आज तक का लेखा-जोखा होता है।

नागरिक शास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य के वर्तमान जीवन और उन संस्थाओं से है जो मनुष्य के जीवन को नियमित, संगठित, सदाचारी बनाने में सहायक होती है।

अभ्यास के प्रश्न
(Study Questions)

1. सामाजिक विज्ञान से आपका क्या तात्पर्य है ? सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र पर चर्चा करें।

   (What do you mean by Social Science ? Discuss the scope of Social Science.)

2. स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले सामाजिक विज्ञान की प्रकृति क्या है ?

   (What is the nature of Social Science taught in schools ?)

3. ''सामाजिक विज्ञान एक नहीं लेकिन कई विषयों का एक संयोजन है।'' टिप्पणी करें।

   ("Social Science is not one but a combination of several subjects." Comment.)

4. सामाजिक विज्ञान क्या है ? संक्षेप में सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र की चर्चा करें।

   (What is Social Science ? Discuss briefly the scope of Social Science.)

5. सामाजिक विज्ञान के घटकों के बारे में बताएं।

   (Explain the components of Social Science.)

6. सामाजिक विज्ञान की परिभाषाएं देते हुए इसकी आधुनिक अवधारणा को स्पष्ट करें।

   (Clarify the modern concept of Social Science by giving its definitions.)

CHAPTER 2

विद्यालय स्तर पर सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण के लक्ष्य और उद्देश्य

(Aims and Objectives of Teaching Social Science at School Level)

उद्देश्य और लक्ष्य में भेद

(Difference between Aim and Objective)

प्राय: यह देखा गया है कि भावी शिक्षक अपने दैनिक जीवन में उद्देश्य और लक्ष्य में भेद नहीं करते और इन दोनों को एक दूसरे का पर्यायवाची मान लेते है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है और इन दोनों में पूर्ण और अंश का अन्तर (भेद) स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। उद्देश्य अपने में पूर्ण होता है और लक्ष्य केवल उसका अंश मात्र होता है। उद्देश्य का संकेत सदैव पूर्ण आदर्श स्थिति की ओर होता है जबकि अंश का संकेत अंश की ओर होता है। उद्देश्य सीमा रहित होता है और अंश की सीमा निश्चित होती है। लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है क्योंकि इसकी सीमा है परन्तु उद्देश्य की सीमा नहीं होती और इसकी प्राप्ति हेतु अनेक लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं और व्यक्ति इन लक्ष्यों की प्राप्ति करते हुए उद्देश्यों की ओर बढ़ता है। शिक्षा क्षेत्र में उद्देश्य और लक्ष्यों में यही भेद स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। इस बात को सरल और स्पष्ट उदाहरण के माध्यम से भी समझाया जा सकता है। मान लो सामाजिक विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य छात्र-छात्राओं को अच्छा नागरिक बनाना है। इसके लिए विद्यार्थियों का स्वस्थ होना, समय का पाबन्द होना, सत्य बोलना, सद्व्यवहार करना, दूसरों का आदर करना आदि यथा उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निर्धारित लक्ष्य हैं। यदि हम गहनता से विचार करें तो इनमें से कुछ लक्ष्यों को अवश्य ही प्राप्त किया जा सकता है परन्तु यह कभी भी नहीं कहा जा सकता कि व्यक्ति विशेष पूर्ण रूप से आदर्श नागरिक नहीं बन सकता। उद्देश्य और लक्ष्य में यही सबसे बड़ा भेद होता है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य निम्न हैं-

1. सामाजिक चेतना का विकास (Development of Social Conciousness)- आज का युग जागरूकता एवं सचेत रहने का युग है। यही कारण है कि कि सभी राष्ट्र स्वतन्त्र होकर विकास के पथ पर अग्रसर हैं। जनसाधारण में भी नई चेतना और नई स्फूर्ति आ रही है। आज का जागरुक मानव दैवी अधिकारों और दैवी शक्तियों में कदापि भी विश्वास के लिए तैयार नहीं है। वह अपने अधिकारों का ज्ञान रखता है और अधिकारों के ज्ञान के साथ-साथ वह कर्त्तव्य पालन की ओर भी धीमी गति से बढ़ रहा है। इसलिए आज की परिस्थितियों में यह आवश्यक हो जाता है कि छात्र-छात्राओं को ऐसे विषय की शिक्षा दें जिनसे उनको सद्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिले। नि:संदेह सामाजिक विषयों का शिक्षण छात्र-छात्राओं को सामाजिक कार्य में सक्रिय बनाता है और उनको सही रूप में अधिकारों और कर्त्तव्यों का ज्ञान भी होता है जिनसे

उनकी सामाजिक चेतना का विकास होता है। यही कारण है कि आज विद्यायल के छात्र-छात्राओं को कुशल नागरिक बनाने हेतु सामाजिक विज्ञान का शिक्षण देना अत्यन्त आवश्यक है।

2. सामाजिक जटिलताओं को समझने की क्षमता का विकास (To develop capacity to understand the complexities of the Society)-21वीं शताब्दी का युग सहज, सरल न होकर जटिलताओं का युग है। यही कारण है कि आज के युग के मनुष्य का सामाजिक जीवन बहुत जटिल हो गया है। आज का मनुष्य विभिन्न प्रकार की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थाओं में जुटा हुआ भी है। इन संस्थाओं के सही रूप का ज्ञान एक सफल एवं प्रगतिशील नागरिक के लिए आवश्यक है क्योंकि जब तक नागरिक यह नहीं जान लेता कि समाज की विभिन्न संस्थाओं से उसके सम्बन्ध किस प्रकार से सौहार्दपूर्ण हो सकते हैं और उनकी प्रगति में वह किस प्रकार सक्रियता से योगदान दे सकता है, तब तक वह कुशल और प्रगतिशील नागरिक की भूमिका निभाने में असमर्थ रहेगा। सामाजिक विज्ञान की शिक्षा विभिन्न संस्थाओं के सम्बन्धों को स्पष्ट करती है और इन संस्थाओं की जटिलताओं के समाधान करने हेतु और एक कुशल नागरिक का जीवन व्यतीत करने के लिए सामाजिक विज्ञान का शिक्षण बहुत ज़रूरी है।

3. सामूहिक जीवन की गुणवत्ता में विश्वास पैदा करना (To develop faith in Quality of Collective Life)-सामाजिक विज्ञान का मुख्य रूप से सम्बन्ध सामाजिक विज्ञान, सामाजिक व्यवहार, सामाजिक गुणों और सामाजिक प्रगति से है। इसकी शिक्षा से छात्र-छात्राएं सामूहिक जीवन की गुणवत्ता को सही रूप में और सही ढंग से समझने में सफल हो सकते हैं। वे इस बात को पूरी तरह समझ जाते हैं कि एक सब के लिए है और सब एक के लिए हैं अर्थात् मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति में और समूचे समाज की उन्नति में घनिष्ठ सम्बन्ध है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। वे सहयोग, ईमानदारी, प्रेम, भाईचारा, कर्त्तव्यनिष्ठा और सह-अस्तित्व के महत्त्व को समझने में समर्थ होंगे। सामाजिक विज्ञान के शिक्षण के अन्तर्गत छात्र-छात्राओं को इस विषय के व्यावहारिक रूप से परिचित कराना भी बहुत आवश्यक है, ऐसा कने से छात्र-छात्राएं बड़े होकर व्यक्तिगत स्वार्थों की परवाह किए बिना सामूहिक हितों के लिए कार्य करने का प्रयास करते हैं।

4. प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण का विकास (Development of democractic Attitude)-आज का युग प्रजातन्त्र का युग है। प्रजातान्त्रिक युग में जन-जर्नादन की आवाज़ ही शासन की आवाज़ होती है क्योंकि प्रजातन्त्र प्रणाली में सरकार का निर्माण जनता के द्वारा होता है। राष्ट्र की जनता ही प्रतिनिधियों का चयन करती है जो शासन की बागड़ोर को सम्भालते हैं। शासन की इस प्रणाली में नागरिकों की भूमिका बहुत अहं होती है। इसके विपरीत अगर नागरिक इस बात को ना समझें तो वह अपने अधिकारों का सदुपयोग नहीं करेगा और अपने वोट की कीमत न आंक सकें तो देश का भविष्य अवश्य अंधकारमय हो जाएगा और राष्ट्र की प्रगति में बाधा आ जाएगी। इसलिए प्रजातान्त्रिक

देश में शिक्षा पाठ्यक्रम में ऐसे विषय को विशेष स्थान देना चाहिए जो छात्र-छात्राओं को उनके अधिकार और कर्त्तव्यों का ज्ञान कराएं, उनमें अपने उत्तरदायित्वों को समझने की प्रवृत्ति को उत्पन्न करें, उनको सामाजिक हित और राष्ट्र प्रेम की भावना से ओत-प्रोत कर सके। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सामाजिक विज्ञान के विषय का अध्ययन करना बहुत आवश्यक है।

5. आदर्श नागरिक का प्रशिक्षण (Training of Ideal Citizenship)- विद्यालय में छात्र-छात्राओं को सामाजिक विज्ञान का शिक्षण इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर पढ़ाया जाता है कि उनमें आदर्श नागरिक बनने की योग्यता एवं क्षमता का विकास हो। छात्र-छात्राओं को इस आदर्श नागरिकता का पाठ विद्यालय में पढ़ाना ही सम्भव है। सामाजिक विज्ञान के विषय को पढ़ाने से नागरिकता के सैद्धान्तिक ज्ञान की प्राप्ति होती है। प्रारम्भ से ही बालकों में अच्छे नागरिक बनने की आदतों का विकास होने लगता है। बड़े होकर उनमें ठीक तथा सन्तुलित स्वतन्त्र निर्णय लेने की शक्ति का भी विकास होता है। वह अच्छे नागरिक बनने के लक्ष्य की ओर प्रेरित होता है। अच्छे नागरिक समाज और राष्ट्र के विकास में योगदान देने में समर्थ होते हैं।

6. स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास (Development of Healthy Attitude)- आज का सामाजिक जीवन भूतकालीन जीवन से भिन्न है। प्राचीन युग में संयुक्त परिवार प्रणाली की व्यवस्था पर ज़ोर दिया जाता था और परिवार के सभी सदस्य मिल-जुल कर अपने दु:खों और सुखों को आपस में बांटते थे। बालकों को प्रेम, सहानुभूति, कर्त्तव्यपालन तथा सहयोग एवं सहनशीलता की शिक्षा परिवार में ही मिल जाती थी परन्तु आज ऐसा नहीं है क्योंकि आज संयुक्त परिवारिक जीवन विघटित हो चुका है, घर के सभी सदस्य भौतिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपने-अपने व्यवसाय में बहुत व्यस्त रहते हैं और माता-पिता के पास इतना समय नहीं होता कि वे अपने बालकों के साथ रहकर उनको अच्छी बातें बता सकें और सामाजिक गुणों का विकास कर सकें। आज इस जटिल समाज में औपचारिक संस्थाओं की आवश्यकता को महसूस किया जा रहा है ताकि इनके द्वारा नागरिकों को जीवन, समाज और राष्ट्र के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण निर्माण का प्रशिक्षण दिया जा सके। सामाजिक विज्ञान का विषय स्वस्थ दृष्टिकोण के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकता है।

7. समानता की भावना का विकास (Development of the feeling of Equality)- आज चारों ओर दृष्टि दौड़ाएं तो हर क्षेत्र में असमानता देखने को मिलती है लेकिन समाज और राष्ट्र की प्रगति के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक असमानता को दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। इस बुराई को दूर करने के लिए सामाजिक विज्ञान की शिक्षा बहुत लाभप्रद है। इसके पढ़ने से हमारे छात्र-छात्राएं समाज के ढांचे को भली-भान्ति समझ लेते हैं। वे आपसी भेद-भाव में विश्वास नहीं करेंगे और समाज में फैली कुरीतियों, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विषमताओं को दूर करने का प्रयास करेंगे।

8. प्रगतिशील दृष्टिकोण का विकास (To develop Progressive Attitude)- समाज और राष्ट्र की सुदृढ़ता और उनके नव-निर्माण के लिए भावी नागरिकों के दृष्टिकोण को प्रगतिशील बनाना अत्यन्त आवश्यक होता है। ऐसा करने के लिए उनको जीवन में यह सिखाया जाए कि राष्ट्र के भविष्य के लिए उनका दृष्टिकोण सकारात्मक और आशावादी होना चाहिए। इसके लिए सामाजिक विज्ञान का विषय सामाजिक परिवर्तनों का ज्ञान करा के छात्र-छात्राओं को परिवर्तन की ओर अग्रसर कर सकता है। छात्र-छात्राएं ऐसे सभी परिवर्तनों में सहयोग दे सकते हैं जो समाज और राष्ट्र की प्रगति में सहायक हैं।

9. वर्तमान को समझना (To understand Present)-सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत केवल मात्र वर्तमान समस्याओं की ही चर्चा नहीं की जाती बल्कि भूतकालीन युग में मानव सम्बन्धों पर प्रभाव डालने वाली सभी घटनाओं का भी अध्ययन किया जाता है। इसलिए इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल तथा अन्य विषयों से सम्बन्धित सामग्री को लेकर सामूहिक रूप से एक जगह रख दिया जाता है जिसको हम सामाजिक विज्ञान की संज्ञा देते है। इससे छात्र-छात्राओं को अपने वातावरण से सम्बन्धित तत्वों को समझने में आसानी रहती है। इस प्रकार इस विषय को पढ़ाते समय इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि वर्तमान स्थिति तक आज का मानव किस प्रकार पहुंचा। भूतकाल में किस प्रकार की कठिनाइयां और परिस्थितियां थी जिनसे मनुष्य संघर्ष करके वर्तमान में पहुंचा। यह सब कुछ हमें सामाजिक विज्ञान के विषय के अध्ययन करने से ही पता चलता है। इस विषय के शिक्षण से आज के छात्र-छात्राएं अपने भविष्य की कल्पना आशावादी होकर कर सकते हैं और भविष्य को सुदृढ़, साकार बनाने में सहयोग दे सकते हैं।

10. स्वतन्त्र चिन्तन का विकास करना (To develop independent Tainking)-छात्र-छात्राओं में स्वतन्त्र चिन्तन, आत्म निर्भरता, सहनशीलता, साहस, मौलिकता, नवीन समस्याओं को सुलझाने की क्षमता, समाजोपयोगी कार्य करने की योग्यता और दूसरों पर किए गए अच्छे कार्यों की सराहना करने के लिए सामाजिक विज्ञान का शिक्षण बहुत आवश्यक है।

11. समस्याओं को सुलझाने हेतु दृष्टिकोण का विकास (Development of the problem solving Attitude)-सामाजिक विज्ञान की विषय-वस्तु विश्व-प्रेम, विश्व-बन्धुत्व और मानवता के भाव उत्पन्न करने में समर्थ होती है। इस विषय के अन्तर्गत छात्र-छात्राएं मानव की समस्याओं को कई पहलुओं से समझने का प्रयास करते हैं। खोजों से पता चलता है कि भूतकाल में मानव ने किस भौगोलिक परिस्थितियों में सामना किया और उनका किस प्रकार समाधान भी किया। इस विषय के अध्ययन से सभी छात्र-छात्राएं इतनी बात अवश्य समझ जाते हैं कि मानव जाति के सामूहिक प्रयासों से मनुष्य वातावरण तक पहुंचा है।

12. स्वाध्याय के लिए प्रोत्साहित करना (To encourage for self-study)-सामाजिक विज्ञान की शिक्षा इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए भी दी जाती है कि छात्र-छात्राएं इस विषय में रुचि दिखाते हुए वे भविष्य में अपने मस्तिष्क में अध्ययन करने की आदत डालें और स्वाध्याय के मार्ग पर प्रशस्त हो सकें।

13. जीवन मार्ग चयन करने में सहायक (Helps in selecting future career)-सामाजिक विज्ञान की शिक्षा भावी नागरिकों को व्यवसाय का चयन करने में सहायता करती है। इसका विस्तृत क्षेत्र होने से जीवन के विभिन्न महत्त्वपूर्ण पहलुओं का ज्ञान होता है। इस प्रकार छात्र-छात्राओं से ही विकास हो जाता है और वे अपने शिक्षा काल में ही भविष्य के व्यवसाय चयन करने में समर्थ हो जाते हैं।

14. व्यक्ति को राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेने के लिए प्रेरित करना (To motivate the individual to Participate in National Affair)-यह विषय देश के भावी नागरिकों को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे राष्ट्र कार्यों में सक्रिय होकर भाग लें। वे अपने आप को राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण अंग समझें। इसके अतिरिक्त इस विषय के अध्ययन करने से भावी नागरिकों में सहयोग, सहनशीलता, विवेक, रचनात्मकता, तर्क-वितर्क और निर्णय शक्ति जैसे गुणों का विकास होता है, जिससे वे राष्ट्र के नव-निर्माण में पूर्ण सहयोग दे सकते हैं।

विस्तार प्रोग्राम के निर्देशालय के अनुसार सामाजिक विज्ञान का उद्देश्य (The Aim of Social Science according to directorate of Extension programme)-ये उद्देश्य निम्न हैं-

1. ज्ञानात्मक उद्देश्य-ये इस प्रकार हैं-

(1) सामाजिक विज्ञान की परिभाषिक शब्दावली का ज्ञान।

(2) इस विषय के सिद्धान्त तथा नियमों से परिचय।

(3) सामाजिक संगठन की संस्थाओं के कार्यों का ज्ञान, स्थानीय स्तर, राज्य स्तर तथा राष्ट्रीय स्तर की शासन व्यवस्था का ज्ञान।

(4) विभिन्न तत्वों के सम्बन्धों का स्पष्ट ज्ञान।

2. प्रायोगिक उद्देश्य-विभिन्न सिद्धान्तों, नियमों, तथ्यों के ज्ञान का व्यवहारात्मक स्वरूप।

3. अन्य योग्यताओं का विकास-

(1) तर्क शक्ति का विकास।

(2) सामाजिकता।

(3) निर्णय शक्ति का विकास।

(4) समझने की शक्ति का विकास।

(5) अभिव्यक्ति की शक्ति का विकास।

(6) बोध शक्ति का विकास।

4. कौशल (Skills)-

(1) चित्र, मानचित्र, रेखाचित्र इत्यादि बनाने की योग्यता का विकास करना।

(2) सूचनाओं को एकत्रित करने की क्षमता।

(3) सामाजिक तथा आर्थिक पहलुओं को समझने की कुशलता का विकास।

(4) रिपोर्ट करना।

(5) सामाजिक कार्यों में भाग लेने की कुशलता का विकास।

5. अभिवृत्तियाँ (Attitudes)-

(1) व्यापक दृष्टिकोण।

(2) आलोचनात्मक प्रवृत्ति।

(3) सहिष्णुता।

(4) सहकारिता।

(5) प्रजातन्त्रात्मक जीवन मार्ग।

(6) मनोवेगों पर नियन्त्रण।

(7) सृजनात्मक नेतृत्व।

6. सौन्दर्यात्मक अनुभूति (Sense of Appreciation)-

(1) मानव की संस्कृति को समझना।

(2) मानव के पारस्परिक सम्बन्धों को समझना।

वीज़ले महोदय (Wesley) ने अपनी पुस्तक "Teaching of Social Studies" के उद्देश्य के बारे में जो लिखा है, निम्न है-

1. सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत आए हुए विचारों को समझने की शक्ति का विकास करना।
2. वाचन तथा अध्ययन की कुशलता की वृद्धि करना।
3. सुन्दर व्यक्तित्व का विकास।
4. वांछनीय आचरण का विकास।
5. सहकारिता का प्रशिक्षण।
6. मानव तथा राष्ट्रों के आपसी सहयोग को समझना।
7. उत्तरदायित्व ग्रहण करने की आदत।
8. उपयोगी कार्यों की तैयारी।
9. कुशल उत्पादक तथा उपभोक्ता बनना।
10. आलोचनात्मक प्रवृत्ति का विकास।
11. सभी जाति, वर्ग तथा समुदाय के प्रति आदर।
12. प्रजातन्त्र की मान्यता।
13. सामाजिक संस्थाओं के महत्त्व को समझना।
14. विश्व शान्ति की स्थापना में योगदान।

15. सौन्दर्यानुभूति की शक्ति का विकास।

16. बौद्धिक शक्ति का विकास।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण के लक्ष्य

(Objectives of Teaching Social Science)

सामाजिक विज्ञान शिक्षण के लक्ष्य निम्न हैं-

1. भौतिक एवं सामाजिक वातावरण का ज्ञान (Knowledge of Physical and Social Environment)-सामाजिक विज्ञान का मुख्य लक्ष्य यह है कि छात्रों में उनके भौतिक एवं सामाजिक वातावरण की सूझ-बूझ का विकास किया जाए। भौतिक एवं सामाजिक वातावरण का ज्ञान सुखमय जीवन के लिए बहुत जरूरी होता है क्योंकि इसी वातावरण में रहकर बालक अपने जीवन तथा व्यक्तित्व का विकास करता है। छात्रों के लिए यह जानना आवश्यक होता है कि उनके चारों ओर का वातावरण कैसा है और उसे किस प्रकार सुधारा जा सकता है ? सामाजिक विज्ञान छात्रों की इस प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति कर उन्हें सामाजिक और भौतिक वातावरण से परिचित कराता है। तात्कालिक भौतिक एवं सामाजिक वातावरण वह कच्ची सामग्री है जहां से छात्र बहुत कुछ सीखता है। भूगोल, इतिहास, राजनीति शास्त्र, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र और मानव शास्त्र की एकीकृत पाठ्य वस्तु से छात्र भौतिक एवं सामाजिक वातावरण को भली-भाँति समझ सकते हैं।

2. सामाजिक ज्ञान प्रदान करना (Providing Social knowledge)-सामाजिक विज्ञान हमें समाज का अध्ययन कराता है। छात्र समाज के रीति-रिवाज़ों, रहन-सहन, सभ्यता, संस्कृति तथा नियमों का ज्ञान सामाजिक विज्ञान के अध्ययन से प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के ज्ञान की सहायता से छात्र अपने भावी जीवन को सफल बना सकते हैं तथा अपने आप को समाज के नियमों के अनुसार ढालने का प्रयत्न करते हैं।

3. उचित व्यवहार का प्रशिक्षण (Training in desirable patters of Conduct)-सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का लक्ष्य छात्रों में ऐसे चरित्र का निर्माण करने में सहायता करना है जिससे वे उत्तम एवं उचित व्यवहार करना सीख सकें ताकि वे उत्तम नागरिक एवं समाजोपयोगी बन सकें। सामाजिक विज्ञान की पाठ्य वस्तु की शिक्षा यदि भली-भान्ति दी जाए तो इस दायित्व को पूरा किया जा सकता है।

4. उचित अभिवृत्तियों का विकास (Development of Right Attitudes)-सामाजिक विज्ञान का लक्ष्य छात्रों को उचित भावनाओं का विकास करना है। उत्तम व्यवहार के लिए उचित अभिवृत्तियों का विकास आवश्यक है। अभिवृत्तियां मानसिक एवं संवेगात्मक विकास से सम्बन्धित हैं। अध्यापक का कर्त्तव्य छात्रों की उचित अभिवृत्तियों का निर्माण करने में सहायता करना है। इसके लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक स्वयं आत्म अनुशासित, धैर्यशील तथा गौरव सम्पन्न हो। उपदेश की अपेक्षा उदाहरण का

प्रभाव अधिक अच्छा होता है। अत: अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों के सामने अपना आदर्श प्रस्तुत करे। सामाजिक विज्ञान छात्रों में सहयोग, सहनशीलता, सहानुभूति, भातृभाव, आत्म अनुशासन, आत्म-सम्मान आदि अभिवृत्तियों का विकास करता है।

5. उचित आदतों एवं कुशलताओं का विकास (Development of desirable habits and skills)-व्यक्ति में उचित आदतों एवं कुशलताओं का विकास करना भी सामाजिक विज्ञान का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। सामाजिक विज्ञान में हमें न केवल शुद्धता, स्वच्छता, गति और स्वतन्त्र अध्ययन की आदतों का निर्माण करना है परन्तु संकेत पुस्तकों और पाठ्य-पुस्तकों का भली-भान्ति उपयोग करने से लेकर गम्भीर एवं कठोरतम परिस्थितियों में सेवंगात्मक नियन्त्रण बनाए रखने की आदतों का भी निर्माण करना है। इसके अतिरिक्त सामाजिक विज्ञान शिक्षण के लक्ष्य में रेखाचित्र, मानचित्र, चार्ट, ग्राफ और मॉडल आदि बनाने में कौशलों का निर्माण करना भी सम्मिलित है।

6. लोकतन्त्रात्मक भावनाओं का विकास (Developing sense of Democratic Citizenship)-प्रजातन्त्र की सफलता के लिए छात्रों में अच्छे नागरिक गुणों का विकास करना सामाजिक विज्ञान का लक्ष्य है। इस विषय के द्वारा छात्रों में बहुत आसानी से लोकतन्त्रात्मक भावना विकसित की जा सकती है। लोकतन्त्र के नागरिक में इन क्षेत्रों को समझने की शक्ति होना आवश्यक है-(1) सामाजिक एवं भौतिक वातावरण, (2) सामाजिक समूह एवं उनके कार्य, (3) समाज की सभ्यता एवं संस्कृति, (4) व्यक्ति एवं समाज का सम्बन्ध, (5) आवश्यक पूर्ति के साधन, (6) व्यक्ति एवं राष्ट्रों के मध्य पारस्परिक निर्भरता।

7. अपनत्व की भावना का विकास (Development of Sense of Belongingness)-छात्रों में अपनत्व की भावना को विकसित करना सामाजिक विज्ञान का सातवां लक्ष्य है। छात्र अपने परिवार, अपने गाँव, अपनी जाति, अपने ज़िले, अपने प्रदेश, अपने राष्ट्र यहां तक कि सारे विश्व के प्रति अपनत्व की भावना का अनुभव करें। वे अनुभव करें कि सारा विश्व उनका है और वे सारे विश्व के हैं। अध्यापक छात्रों को मानव के सम्बन्धों का पूर्ण ज्ञान दें ताकि वे एक मानव की दूसरे मानव पर, एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र पर आपसी निर्भरता की आवश्यकता को समझें। इस प्रकार अन्तराष्ट्रीय सद्भावना तथा मानवता के प्रति आदर का प्रचार करने में मदद मिलती है। विभिन्न धर्मों, संस्थाओं एवं जातियों के रहन-सहन के प्रति सम्मान की भावना छात्रों के मन में जागृत करके उन्हें समस्याओं को समझने तथा उन्हें हल करने का रास्ता दिखाना।

8. विश्व शान्ति को बढ़ावा देना (To Promote World Peace)-विश्व शान्ति का विकास करने के लिए राष्ट्रों की पारस्परिक निर्भरता की समझ, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता है। विश्व को बढ़ावा देना सामाजिक विज्ञान शिक्षक का प्रमुख लक्ष्य है। आज संसार भर के राष्ट्रों के बीच रचनात्मक सहयोग अनिवार्य हो गया है। हमें सामान्य मानवता तथा विश्व नागरिकता के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। सामाजिक

विज्ञान का लक्ष्य छात्रों में सांसारिक सम्बन्धों को समझने की क्षमता का विकास करना है तथा उन्हें विश्व शान्ति बनाए रखने के लिए तैयार करना है।

9. छात्रों का समाजीकरण (Socialization of Pupils)-सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का लक्ष्य छात्रों का समाजीकरण करना है जिससे छात्र योग्य नागरिक बन कर समाज की भलाई में अपना योगदान दे सकें। समाजीकरण छात्रों में एक नया उत्साह जागृत करेगा जिससे उनमें साहस, आत्म-विश्वास, प्रसन्नता तथा सुख का विकास होगा। वे अच्छे मित्र और अच्छे पड़ोसी बनेंगे। छात्रों में विभिन्न वैयक्तिक एवं सामाजिक गुण सहनशीलता, सहयोग, सच्चाई, वफादारी, परोपकारिता, सृजनात्मक, चिन्तन, आलोचनात्मक निर्णय तथा न्यायप्रियता आदि विकसित होंगे।

10. नैतिक मूल्यों का विकास (Development of Moral Values)-छात्रों में नैतिक मूल्यों का विकास करना सामाजिक विज्ञान शिक्षण का प्रमुख लक्ष्य है। सामाजिक विज्ञान के शिक्षण द्वारा छात्रों को अनेक आदर्श व्यक्तियों के जीवन का ज्ञान होता है जिससे वे भी उन आदर्शों का अनुकरण करके अपने जीवन को आदर्श बनाने का प्रयास करता है। सामाजिक विज्ञान विषय के अन्तर्गत अनेक महान् सन्तों, महान पुरुषों, महात्माओं, ऋषियों, धर्म प्रचारकों आदि की जीवनियां पढ़ाई जाती हैं जिनसे छात्र नैतिक विचारों, कार्यों एवं व्यवहारों से परिचित हो जाते हैं।

11. सांस्कृतिक मूल्यों का विकास (Development of Cultural Values)-प्रत्येक देश एवं समाज की अपनी संस्कृति होती है, प्रत्येक देश और समाज अपनी-अपनी संस्कृति को बनाए रखना चाहते हैं। इसके लिए शिक्षा को माध्यम बनाया जाता है इसलिए सामाजिक विज्ञान का लक्ष्य छात्रों में सांस्कृतिक मूल्यों का विकास करना है। सामाजिक विज्ञान समाज एवं संस्कृति का अध्ययन करके हमें बतलाता है कि समाज की संस्कृति तथा सांस्कृतिक मूल्य क्या हैं, समाज की संस्कृति के स्त्रोत क्या हैं, इसमें कब और क्या परिवर्तन हुए, हमारी संस्कृति पर किन-किन संस्कृतियों का प्रभाव पड़ा, हमारी संस्कृति के आधार तत्त्व क्या हैं, आदि। संस्कृति के आधार तत्वों का ज्ञान प्राप्त करने एवं सांस्कृतिक मूल्यों का विकास करने के लिए सामाजिक विज्ञान का शिक्षण बहुत आवश्यक है।

12. विभिन्न विषयों का समन्वय करना (Co-Ordination by many subjects)-सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का लक्ष्य विभिन्न विषयों को समन्वित कर छात्रों के सामने प्रस्तुत करना है। विभिन्न विषयों द्वारा विभिन्न ज्ञान प्रदान करना अमनोवैज्ञानिक सिद्ध हो चुका है क्योंकि ज्ञान एक इकाई है। सामाजिक विज्ञान विभिन्न विषयों-भूगोल, इतिहास, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, मानव शास्त्र आदि को एक इकाई के रूप में छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

13. तर्क एवं चिन्तन शक्ति का विकास (Development of Thinking and Reasoning)-छात्रों में तर्क एवं चिन्तन शक्ति का विकास करना सामाजिक विज्ञान शिक्षण का लक्ष्य है। सामाजिक विज्ञान छात्रों के सामने कई ठोस तथ्य प्रस्तुत करता है। इन

तथ्यों से प्रेरित होकर छात्र उन तथ्यों के सम्बन्ध में चिन्तन एवं मनन करते हैं। इस प्रकार छात्रों में तर्क, चिन्तन एवं मनन करने की शक्ति का विकास होता है।

निष्कर्ष रूप में, सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का मुख्य लक्ष्य कुशल एवं योग्य नागरिक बनाना है जिससे छात्रों के जीवन में आने वाली समस्याओं और परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति का विकास हो सके। सामाजिक विज्ञान के द्वारा छात्रों के सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास होता है। उनमें अच्छे गुण, अच्छी आदतें, अच्छी अभिवृत्तियों आदि का विकास होता है।

अभ्यास के प्रश्न
(Study Questions)

1. सामाजिक विज्ञान पढ़ाने के उद्देश्यों और लक्ष्यों का वर्णन विस्तारपूर्वक कीजिए।
   (What are the aims and objectives of teaching Social Science ?)
2. सामाजिक विज्ञान पढ़ाने से बालक एक अच्छा नागरिक भी बनता है और मनुष्य भी। सिद्ध कीजिए।
   (Prove that teaching of social science makes the pupil a good citizen and a good man.)
3. युक्ति देकर सिद्ध करो कि माध्यमिक स्कूलों के सामाजिक विज्ञान की शिक्षा छात्रों में उचित दृष्टिकोण और मूल्य उत्पन्न करती है।
   (Give reasons to show that teaching of social science produces appropriate attitude and value in life.)
4. जहां तक सामाजिक विज्ञान का सम्बन्ध है, आप माध्यमिक स्कूलों के विद्यार्थियों में किस प्रकार के ज्ञान, कुशलताओं और सुझावों की आशा रखेंगे ? विस्तृत विवेचन करें।
   (So far as "Social Science is concerned, what types of knowledge, skills and attitude would you expect from pupils in secondary schools ? Describe in detail.)

ॐ ॐ ॐ

CHAPTER

3

सामाजिक विज्ञानों में वर्गीकरण और व्यवहार के उद्देश्य

(Taxonomy and Behavioural Objectives in Social Sciences)

ब्लूम के उद्देश्यों का वर्गीकरण

(Bloom's Taxonomy of Objectives)

प्रो॰ बी. एस. ब्लूम (Prof. B.S. Bloom) द्वारा निर्धारित सामाजिक विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों के साथ-साथ हमारे लिए व्यवहारपरक उद्देश्यों और उनका सामान्य उद्देश्य से क्या अन्तर है, इस बात को जानना भी आवश्यक है।

व्यवहारपरक उद्देश्य (Instructional Objectives)-अभिक्रम के उद्देश्यों की परिभाषा देते हुए व्यवहारपरक तरीका अपनाया जाता है। ध्यान देने की बात यह है कि व्यवहार (Behavioural) या सक्रियात्मक (Operational) शब्द पर्यायवाची हैं। इसलिए इनका प्रयोग एक दूसरे के लिए किया जा सकता है। उद्देश्य के संदर्भ में 'व्यवहारपरक' से अभिप्राय है-अनुदेशन के पश्चात् छात्र-छात्राओं में प्रगट होने वाले व्यवहार को वस्तुनिष्ठ (Objective) एवं स्पष्ट ढंग से अभिव्यक्त करना। प्राय: ऐसा होता है कि शिक्षण एवं अनुदेशन प्रक्रिया में उद्देश्य का निर्माण (प्रतिवादन) सामान्य रूप से ही करते हैं परन्तु व्यवहारपरक उद्देश्य के प्रतिपादन क्रिया को अधिक महत्त्वपूर्ण, सार्थक, सशक्त और उपयोगिता को अधिक सकारात्मक माना जाता है।

सारांश रूप में इसमें यह पूर्ण रूप से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए छात्र-छात्राओं में वांछनीय परिवर्तन होने की अपेक्षा रहती है। अत: वास्तविक रूप में ये परिवर्तन ही उद्देश्य की पूर्ति के सूचक होते हैं। यहां पर ध्यान देने की विशेष बात यह है कि छात्र-छात्राओं में होने वाले परिवर्तन सामाजिक विज्ञान शिक्षण के एक या अनेक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किए गए प्रयासों के प्रतिफल लाभ या उनके सूचक होते हैं क्योंकि उद्देश्यों की पूर्ण रूप से प्राप्ति कभी भी सम्भव नहीं होती। शिक्षक को सदैव अपने छात्र-छात्राओं में होने वाले व्यवहार परिवर्तनों की ओर सजग और सचेत रहना चाहिए।

सामान्य उद्देश्य और व्यवहारपरक उद्देश्यों में भेद

(Difference between General and Behavioural Objectives)

अक्सर ये देखा जाता है कि हमारे भावी शिक्षक सामान्य उद्देश्यों और व्यवहारपरक उद्देश्यों में जो अन्तर होता है वे उससे अवगत नहीं होते। लेकिन इनको इन दोनों के

अन्तर की स्पष्टता होनी चाहिए ताकि वे अपने शिक्षण को प्रभावपूर्ण, सशक्त और सार्थक बना सकें। सामान्य उद्देश्यों और व्यवहारपरक उद्देश्यों में आधारभूत यह परिवर्तन होता है कि सामान्य उद्देश्यों के लिए विस्तृत पदों को प्रयोग में लाते हैं और व्यवहारपरक उद्देश्यों को अभिव्यक्त करने हेतु विशेष एवं वस्तुनिष्ठ पद प्रयोग में लाते हैं। इसके अतिरिक्त 'सामान्य उद्देश्य' शिक्षण की दिशा को सामान्य रूप में ही निर्धारित कर देते हैं जिससे उनके अनुकूल आयोजित होने वाली शिक्षण प्रक्रिया से स्पष्ट मार्ग दर्शन नहीं हो पाता। लेकिन इसके विपरीत अगर ध्यान से देखा जाए तो व्यवहारपरक उद्देश्यों द्वारा छात्र-छात्राओं में अपेक्षित अधिगम व्यवहार उनकी परिस्थितिगत विशेषता एवं उनके परिणामों का उल्लेख होता है। अनुदेशन (शिक्षण) के द्वारा घटित व्यवहार परिवर्तन परिणामस्वरूप छात्र-छात्राएं किस प्रकार की क्रियाएं करने में सफल होते हैं, ऐसी जानकारी हमें 'व्यवहारपरक उद्देश्यों' के अध्ययन से ही सम्भव हो सकती है और इसकी पुष्टि व्यवहार परिवर्तन की क्रियाशीलता से ही हो सकती है।

ऊपरलिखित तथ्यों की स्पष्टता और सामान्य उद्देश्यों और व्यवहारिक उद्देश्य (व्यवहारपरक उद्देश्य) के भेद को स्पष्ट करने के लिए एक सुन्दर उदाहरण स्पष्ट है-यदि भूगोल पढ़ाने वाले अध्यापक से यह पूछ लिया जाए कि उसके विषय की शिक्षा का क्या उद्देश्य है तो स्वाभाविक है कि वह 'सामान्य उद्देश्य' की ही चर्चा कर पाएगा। जैसे भूगोल शिक्षण से छात्र-छात्राओं को अपने वातावरण की जानकारी देना, देश की भौगोलिक परिस्थितियों से अवगत करना, छात्रों में देश प्रेम की भावना का विकास आदि। यही सभी उद्देश्य भूगोल के सामान्य उद्देश्यों के अन्तर्गत आएंगे। इन उद्देश्यों को व्यवहारपरक दृष्टि से अभिव्यक्त करने के लिए यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि पूरे अनुदेशन प्रक्रिया के समाप्त होने पर छात्र-छात्राओं के व्यवहार में किस प्रकार के परिवर्तनों की झलक देखने को मिलेगी। उदाहरण के बाद भूगोल शिक्षण के पश्चात् छात्र-छात्राएं मानचित्र पर अपने देश या जिले के बारे में बता सकेगा, अपने प्रान्त की सीमा को रेखांकित कर सकेंगे आदि।

व्यवहारपरक उद्देश्यों के तत्त्व

(Elements of Behavioural or Operational Objectives)

व्यवहारपरक उद्देश्यों के मुख्य रूप से तीन तत्त्व होते हैं, जो निम्न हैं-

1. इसके अन्तर्गत शिक्षण के परिणामस्वरूप अपेक्षित व्यवहार जिससे व्यवहार में कार्य-कुशलता, अभिवृति, नवीन ज्ञान या धारणा स्पष्ट रूप से वर्णन होता है।

2. जिन दशाओं या संदर्भों में व्यवहार परिवर्तन हो सकेगा, उसका उचित रूप से उल्लेख।

3. जिस स्थिति में उत्पन्न या परिवर्तित व्यवहार (अभिव्यक्त व्यवहार) को मान्य कहा जाएगा। इसके लिए प्रयुक्त या प्रयोग में लाए जाने वाले निकष (Criterion) या मापदण्ड का संकेत दिया जाता है।

ब्लूम द्वारा उद्देश्यों का वर्गीकरण
(Blooms Taxonomy of Objectives)

शिक्षण के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों के निर्धारण का प्रयोजन छात्र-छात्राओं के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाने से होता है। इसलिए कक्षा शिक्षण के परिवर्तनों से शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है। उद्देश्य विशिष्ट, प्रत्यक्ष और व्यावहारिक हो सकते हैं। यही कारण है कि शिक्षक के लिए इनका बहुत महत्त्व होता है। शिक्षण-उद्देश्यों का प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध सीखने के उद्देश्य से होता है। प्रोफैसर बी. एस. ब्लूम ने सीखने के उद्देश्यों को तीन पक्षों में विभाजित किया है। ये तीनों पक्ष सीखने वाले से सम्बन्धित हैं अर्थात् छात्र-छात्राओं से सम्बन्धित हैं। सीखने के उद्देश्यों का सम्बन्ध छात्र-छात्राओं के व्यवहार परिवर्तन से होता है। व्यवहार परिवर्तन तीन प्रकार से होता है- (1) ज्ञानात्मक (2) भावात्मक (3) क्रियात्मक। ब्लूम के कथनानुसार सीखने के उद्देश्य भी तीन प्रकार के होते हैं जो निम्न हैं-

(1) ज्ञानात्मक उद्देश्य (Cognitive Objectives)

(2) भावात्मक उद्देश्य (Affective Objectives)

(3) क्रियात्मक उद्देश्य (Psychomotor Objectives)

(1) ज्ञानात्मक उद्देश्य (Cognitive Objectives)-ज्ञानात्मक उद्देश्यों का मुख्य रूप से सम्बन्ध सूचनाओं, ज्ञान तथा उद्देश्यों की पर्याप्त जानकारी से होता है। अधिकांश शैक्षिक क्रियाओं द्वारा इसी उद्देश्य की प्राप्ति की जाती है।

(2) भावात्मक उद्देश्य (Affective Objectives)-भावात्मक उद्देश्य का सम्बन्ध रुचियों के, अभिवृत्तियों तथा मूल्यों के विकास से होता है। यह शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होता है।

(3) क्रियात्मक उद्देश्य (Psychomotor Objectives)-क्रियात्मक उद्देश्य का सम्बन्ध छात्र-छात्राओं की शारीरिक क्रियाओं के प्रशिक्षण और उनमें कौशल के विकास करने से होता है। इसके अतिरिक्त इस उद्देश्य का सम्बन्ध औद्योगिक और व्यावसायिक प्रशिक्षण से होता है।

ब्लूम तथा उसके सहयोगियों ने शिकागो विश्वविद्यालय में इन तीनों पक्षों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। ज्ञानात्मक पक्ष ब्लूम ने (1956) में भावात्मक पक्ष ब्लूम, करथवाल और मसीआ (1964) में और क्रियात्मक पक्ष का सिम्पसन ने (1969) में वर्गीकरण प्रस्तुत किया था। इस वर्गीकरण की सहयता से शिक्षक अपने शिक्षण और सीखने के उद्देश्यों को सुगमता से निर्धारित कर सकता है। इन शिक्षण उद्देश्यों को लिखने के लिए कई विधियों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु सभी ने ब्लूम के वर्गीकरण की ही सहायता की है। ब्लूम ने स्वयं भी इस

वर्गीकरण का प्रयोग परीक्षण की रचना में यह जानने के लिए किया है कि विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में निर्णय लेने के प्रश्न का स्वरूप (Nature) किस प्रकार का है ? उसने परीक्षण को उद्देश्य केन्द्रित बनाने का प्रयत्न किया है।

प्रत्येक पक्ष के विस्तार क्रम को प्रस्तुत करते हुए आगे चलकर तालिका की सहायता से समझाया गया है। जैसे ज्ञानात्मक पक्ष का विस्तार ज्ञान से लेकर मूल्यांकन तक है। मूल्यांकन तक पहुंचने के लिए ज्ञान से संश्लेषण तक की क्षमताओं का विकास होना आवश्यक होता है। यह वर्गीकरण क्रमबद्धता से होता है जिसे चढ़ाव क्रम (Taxonomy) कहते हैं। इसके वर्गों से शैक्षिक उद्देश्यों के क्रम का ज्ञान होता है। शिक्षक अपने उद्देश्यों को निर्धारित करने के लिए इस क्रमबद्धता को ही अपनाता है। छात्र शिक्षक अपने शिक्षण नियोजन में ज्ञानात्मक पक्ष के उद्देश्यों का विशेष रूप से प्रयोग करता है। इसलिए ज्ञानात्मक पक्ष के उद्देश्यों, पाठ्य सामग्री तथा सीखने की उपलब्धियों का वर्णन विस्तार से किया गया है क्योंकि ज्ञानात्मक पक्ष का महत्त्व छात्र के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होता है।

ब्लूम द्वारा सुझाए गए शिक्षण उद्देश्यों के वर्गीकरण निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है-

शैक्षिक उद्देश्य का वर्गीकरण
(Taxonomy of Educational Objectives)

ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain)	भावात्मक पक्ष (Affective Domain)	क्रियात्मक पक्ष (Psychomotor Domain)
1. ज्ञान	ग्रहणता	उद्दीपन
Knowledge	Receiving	Impulsion
2. बोध	अनुक्रिया	कार्य करना
Comprehension	Response	Manipulation
3. प्रयोग	अनुमूलन (अनुप्रयोग)	नियन्त्रण
Application	Valuing (आंकलन)	Control
4. विश्लेषण	प्रत्ययीकरण	समायोजन
Analysis	Conceptualization	Co-ordination
5. संश्लेषण	व्यवस्थापन	स्वागीकरण
Synthesis	Organisation	Naturalization
6. मूल्यांकन	चरित्र निर्माण	आदत पड़ना और
Evaluation	Characterization	कौशल का निर्माण
		Habit Formation

ब्लूम के ज्ञानात्मक शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण से पहले हमारे लिए मुख्य रूप से उद्देश्यों के प्रकार के बारे में और उन दोनों उद्देश्यों के भेद के बारे में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। मुख्य रूप से उद्देश्यों के दो प्रकार हैं जो निम्न हैं-

1. शैक्षिक उद्देश्य (Educational Objectives)
2. शिक्षण उद्देश्य (Teaching Objectives)

शैक्षिक उद्देश्यों तथा शिक्षण उद्देश्यों में अन्तर

(Difference between Educational and Teaching Objectives)

इन दोनों में मुख्य अन्तर तो क्षेत्र का होता है। शैक्षिक उद्देश्य के क्षेत्र अधिक व्यापक हैं और शिक्षण उद्देश्य सीमित और संकुचित हैं। शैक्षिक उद्देश्य का आधार दर्शन शास्त्र और सामाजिक शास्त्र होता है परन्तु शिक्षण उद्देश्यों का आधार मनोविज्ञान होता है। शैक्षिक उद्देश्यों की अगर प्राप्ति होती है तो शिक्षण उद्देश्यों की भी प्राप्ति हो जाएगी क्योंकि शैक्षिक उद्देश्यों में शिक्षण उद्देश्य निहित होते हैं। दूसरी तरफ शिक्षण उद्देश्य साधन मात्र है जो शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होते हैं। शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति की अवधि सीमित नहीं होती जबकि शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति 40 मिनट के कालांश में भी सम्भव है। शैक्षिक उद्देश्य जैसे कि इसके नाम से पता चलता है ये समूचे शिक्षा से सम्बन्धित होते हैं और उद्देश्यों का सम्बन्ध विषय विशेष के शिक्षण से होता है।

शैक्षिक उद्देश्यों का सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है और शिक्षण उद्देश्यों का सम्बन्ध व्यक्ति के ज्ञान, कौशल और उसकी अभिरुचियों से होता है।

ज्ञानात्मक शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण (Taxonomy of Cognitive Education Objectives)-ब्लूम ने अपनी पुस्तक 'ज्ञानात्मक शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण (Taxonomy of Educational Objectives of Cognitive Domain) में ज्ञानात्मक पक्ष को व्यापक रूप में छः (6) वर्गों में विभाजित किया है-(1) ज्ञान (2) बोध (3) प्रयोग (4) विश्लेषण (5) संश्लेषण और (6) मूल्यांकन। प्रत्येक वर्ग के सीखने की क्रियाओं को पहचानने का प्रयत्न भी किया गया है जिनका व्यावहारिक रूप से अवलोकन और मूल्यांकन सम्भव है। इस पक्ष के सभी वर्गों की विशिष्ट सीखने की उपलब्धियों तथा पाठ्य वस्तु की प्रकृति को निम्नलिखित चार्ट में दर्शाया गया है-

वर्ग (Category)	सीखने की उपलब्धियां (Learning of Outcome)
1. ज्ञान (Knowledge)	विशिष्ट वस्तुओं का ज्ञान, साधनों का ज्ञान और सार्वभौमिक वस्तुओं का ज्ञान।

2. बोध (Comprehension)	अनुवाद करना, व्याख्या देना और उल्लेख करना।
3. प्रयोग (Application)	सामान्यीकरण करना, निदान करना और प्रयोग करना।
4. विश्लेषण (Analysis)	विश्लेषण करना, सम्बन्ध स्थापित करना और सिद्धान्त का विश्लेषण करना।
5. संश्लेषण (Synthesis)	अनोखा सम्प्रेषण करना, योजना का निर्माण करना और सम्बन्ध स्थापित करना।
6. मूल्यांकन (Evaluation)	बाहरी एवं आंतरिक निर्णय लेना।

शिक्षण के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों के निर्धारण में इन्हीं ज्ञानात्मक पक्ष के वर्गों की सहायता ली जाती है। वर्गों के शिक्षण तथा सीखने के उद्देश्यों के निर्धारण के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। इन वर्गों का अथवा उद्देश्यों का संक्षिप्त विवरण निम्न है-

1. ज्ञानात्मक उद्देश्य (Cognitive Objectives)-

(1) ज्ञान (Knowledge)-ज्ञान से छात्र-छात्राओं के प्रत्यास्मरण (Recall) और अभिज्ञान (Recognition) क्रियाओं को तथ्यों, शब्दों नियमों तथा सिद्धान्तों की सहायता से विकसित किया जाता है। छात्र-छात्राओं हेतु परम्पराओं, वर्गीकरण, मानदण्डों, नियमों तथा सिद्धान्तों के प्रत्यास्मरण तथा अभिज्ञान के लिए परिस्थितियां पैदा की जाती हैं। ज्ञान वर्ग के भी पाठ्य-सामग्री की दृष्टि से तीन स्तर होते हैं, जो निम्न हैं-

(क) विशिष्ट बातों का ज्ञान देना (तथ्य, शब्द आदि)।

(ख) उपायों तथा साधनों का ज्ञान देना।

(ग) सामान्यीकरण, नियमों तथा सिद्धान्तों का ज्ञान देना।

(2) बोध (Comprehension)-बोध के लिए ज्ञान का होना आवश्यक होता है। जिस पाठ्य-वस्तु (तथ्य, शब्द, उपाय, साधन, नियम तथा सिद्धान्तों) का ज्ञान प्राप्त किया जाता है अर्थात् प्रत्यास्मरण और अभिज्ञान की क्षमताओं का विकास हो चुका है उन्हीं का अपने शब्दों में अनुवाद करना, व्याख्या करना तथा उल्लेख करना आदि क्रियाएं बोध उद्देश्य के स्तर पर की जाती हैं। बोध में सम्बन्ध स्थापित करने पर बल नहीं दिया जाता है। बोध उद्देश्यों की क्रिया के भी तीन स्तर होते हैं-

(क) तथ्यों, शब्दों, नियमों, साधनों और सिद्धान्तों को अनुवाद करके अपने शब्दों में अभिव्यक्ति करना।

(ख)इसी पाठ्य-वस्तु (सामग्री की व्याख्या करना)।

(ग) इसी पाठ्य सामग्री की बाहरी गणना और उल्लेख करना।

(3) **प्रयोग (Application)**-प्रयोग के लिए ज्ञान तथा बोध होना आवश्यक है तभी छात्र प्रयोग स्तर की क्रियाओं में समर्थ हो सकता है। पाठ्य सामग्री को भी प्रयोग उद्देश्यों में तीन स्तर पर प्रस्तुत करते हैं-

(क) नियमों, साधनों, सिद्धान्तों में सामान्यीकरण करना (यह बाहरी गणना के निकट की क्रिया है)।

(ख) उनकी कमजोरियों को जानने के लिए निदान करना।

(ग) छात्र-छात्राओं द्वारा पाठ्य-सामग्री का प्रयोग करना (अर्थात् छात्र-छात्राएं इन शब्दों और नियमों को अपने कथनों में कर लेते हैं)।

(4) **विश्लेषण (Analysis)**-इसके लिए तीनों ही उद्देश्यों की प्राप्ति का होना आवश्यक है। इसमें पाठ्य सामग्री के नियमों, सिद्धान्तों, तथ्यों और प्रत्ययों को तीन स्तरों पर प्रस्तुत किया जाता है-

(क) उनको तत्वों का विश्लेषण करना।

(ख) उनके सम्बन्धों का विश्लेषण करना।

(ग) उनका व्यवस्थित सिद्धान्तों के रूप में विश्लेषण करना।

बोध तथा प्रयोग उद्देश्यों की अपेक्षा विश्लेषण उच्च स्तर का उद्देश्य होता है। इसमें पाठ्य सामग्री के बोध तथा प्रयोग के बजाए उसके तत्वों को अलग-अलग करना होता है।

(5) **संश्लेषण (Synthesis)**-इसको सृजनात्मक या रचनात्मक उद्देश्य भी कहा जाता है। इसमें विभिन्न तत्वों को एक नवीन रूप में व्यवस्थित किया जाता है। संश्लेषण के भी तीन स्तर होते हैं-

(क) विभिन्न तत्वों के संश्लेषण में सम्प्रेषण करना।

(ख) तत्वों के संश्लेषण से नवीन योजना प्रस्तावित करना।

(ग) तत्वों के अमूर्त सम्बन्धों का अवलोकन करना।

संश्लेषण में छात्रों को अनेक स्त्रोतों से तत्वों को निकालना होता है। विभिन्न तत्वों को मिलाकर 'नया ढाँचा' तैयार करना होता है। इससे सृजनात्मक क्षमताओं का विकास होता है।

(6) **मूल्यांकन (Evaluation)**-यह ज्ञानात्मक पक्ष का अन्तिम तथा सबसे उच्च उद्देश्य माना जाता है। इसमें पाठ्य वस्तु के नियमों, सिद्धान्तों तथा तथ्यों के सम्बन्ध में आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाता है। उनके सम्बन्ध में निर्णय लेने में आंतरिक तथा बाह्य मानदण्डों को प्रयुक्त किया जाता है। वास्तव में मूल्यांकन को नियमों, तथ्यों, प्रत्ययों तथा सिद्धान्तों की कसौटी का स्तर माना जाता है।

विद्यालय के शिक्षण विषयों की पाठ्य-वस्तु में शब्दावली, तथ्य, नियम, उपाय, साधन, विधियां, प्रत्यय, सिद्धान्त तथा सामान्यीकरण ही होते हैं। इतिहास की पाठ्य-वस्तु में तथ्य होते हैं। विज्ञान की पाठ्य वस्तु में नियम, विधियां तथा सिद्धान्त होते हैं। भाषा की पाठ्य वस्तु में शब्दावली, साधन, प्रत्यय, नियम होते हैं। इस प्रकार शिक्षण विषयों की सहायता से ज्ञान उद्देश्य से मूल्यांकन उद्देश्यों तक की प्राप्ति की जाती है और इस प्रकार ज्ञानात्मक पक्ष का विकास होता है।

2. अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को सीखने की उपलब्धियां (Outcomes of Learning Instructional Objectives)-इन उद्देश्यों की प्राप्ति से सीखने की उपलब्धियां भी अलग-अलग होती हैं-

(1) **तथ्यों की सूचना**-ज्ञान तथा बोध उद्देश्यों की प्राप्ति से होती है।

(2) **प्रत्ययों की अनुभूति**-बोध उद्देश्य से विश्लेषण उद्देश्य तक की प्राप्ति से सम्भव होती है।

(3) **सामान्यीकरण**-बोध उद्देश्य से संश्लेषण तक की प्राप्ति होती है।

(4) **समस्या समाधान**-प्रयोग उद्देश्य से मूल्यांकन उद्देश्य तक की प्राप्ति से होता है।

(5) सृजनात्मक चिन्तन का विकास विश्लेषण से मूल्यांकन उद्देश्यों तक की प्राप्ति से होता है।

(6) सिद्धान्तों तथा व्यवस्थित ज्ञान की क्षमताओं का विकास भी विश्लेषण से मूल्यांकन उद्देश्यों की प्राप्ति से होती है।

सीखने की उपलब्धियों के भी स्तर होते हैं जो विभिन्न शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति से विकसित होते हैं। शिक्षण उद्देश्य के दो प्रमुख आधार हैं-

(1) पाठ्यवस्तु का स्वरूप,

(2) छात्रों की आवश्यकताओं एवं उनके स्तर को समझने के लिए सीखने की उपलब्धियों का विशेष महत्व होता है। छात्रों के स्तर का निर्धारण सीखने की उपलब्धियों से किया जाता है जिसमें शिक्षण उद्देश्यों की जानकारी होना आवश्यक होता है। शिक्षक अपने शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण कर सकते हैं। अत: शिक्षण उद्देश्यों की जानकारी ज्ञात उद्देश्यों से लेकर संश्लेषण उद्देश्य तक होनी चाहिए।

सामाजिक विज्ञानों में व्यवहार के उद्देश्य
(Behavioural Objectives in Social Sciences)

किसी भी विषय की शिक्षण प्रक्रिया आरम्भ करने से पूर्व शैक्षिक उद्देश्यों का प्रतिपादन करना आवश्यक होता है। इन उद्देश्यों को सामान्य, विशिष्ट एवं व्यवहारपरक

ढंग से निरूपित किया जा सकता है। शिक्षा विधियों का अध्ययन करते समय प्राय: यह देखा जाता है कि इन विधियों में शिक्षा उद्देश्यों को स्पष्ट किया जाता है। वर्तमान में हम देखते हैं कि प्रशिक्षण, अनुदेशन (शिक्षण) और अधिगम के क्षेत्र में व्यवहारपरक उद्देश्यों के प्रतिपादन की परम्परा बहुत चर्चित है और इसको अपनाया भी जा रहा है।

अनुदेशन के निर्माण का दूसरा सोपान अनुदेशात्मक उद्देश्यों का प्रतिपादन करके उनको फिर व्यवहारिक रूप से लिखना होता है। उद्देश्यों को निर्धारित करने हेतु 'ब्लूम ने शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण' (Bloom's Taxonomy of Educational Objectives) की सहायता ली जाती है। अभिक्रमित अनुदेशन से ज्ञानात्मक शैक्षिक उद्देश्यों की आसानी से प्राप्ति की जा सकती है। इसके लिए ब्लूम का ज्ञानात्मक शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण का अनुसरण बहुत सहायक है। ज्ञानात्मक शिक्षण के उद्देश्यों को ब्लूम ने ज्ञान, बोध प्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण तथा मूल्यांकन की दृष्टि से विभाजित किया है। इन अनुदेशात्मक उद्देश्यों को इन्हीं वर्गों के आधार पर निर्धारित किया जाता है। बाद में फिर इन उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखा जाता है।

उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में प्रभावशाली ढंग से लिखने के लिए राबर्ट मेगर ने एक सशक्त अर्थपूर्ण नियोजित विधि का प्रतिपादन किया है जो अनुदेशन के उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने के लिए अधिक कारगर मानी जाती है, क्योंकि अभिक्रमित अनुदेशन प्रत्यय (concept) और मेगर विधि व्यवहारवादी मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है। राबर्ट मेगर विधि की शुरुआत (1962) में हुई और (1963) से अभिक्रमित अनुदेशन के प्रत्यय में व्यवहारिक उद्देश्यों को पर्याप्त महत्त्व दिया गया। उद्देश्यों के सन्दर्भ में मेगर का कथन है-

"**अनुदेशन**-उद्देश्य वे कथन होते हैं जिनमें उन शब्दों या संकेतों को सम्मिलित किया जाता है, जिनसे शैक्षिक लक्ष्यों का बोध होता है।" ("A statement of instructional objectives is a collection of words or symbols describing one or more educational intents."-**Robert Mager**)

अन्तिम व्यवहारों का स्पष्टता से वर्णन करने के लिए तथा छात्रों की क्रियाओं का उल्लेख करने हेतु कथन तैयार किये जाते हैं। इसके लिये तीन कार्यों का होना आवश्यक है-

(क) व्यावहारिक कार्य की पहचान करना।

(ख) व्यवहार में होने वाली परिस्थितियों को परिभाषित करना।

(ग) अपेक्षित निष्पति के लिये मानदण्डों को परिभाषित करना।

मेगर ने उद्देश्यों को व्यवहारिक रूप में लिखने के लिये कार्य सूचक क्रियाओं

(Action verbs) को विशेष महत्त्व दिया है। इन्होंने प्रत्येक वर्ग के लिये क्रियाओं की सूची तैयार की है जिनका उल्लेख "शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण" (Taxonomy of Educational Objectives) में किया गया है। उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने के लिये तीन तत्त्वों की सहायता ली गई है। ये तत्त्व निम्न हैं-

(1) पाठ्य-सामग्री के तत्त्व (Elements of Content or Topic)

(2) टैक्सोनामो के वर्ग के रूप में उद्देश्य (Objectives in term or Taxonomy Category)

(3) समुचित कार्य सूचक क्रिया (Appropiate Action Verbs)

इन तत्त्वों की सहायता से उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखा जाता है।

इस विधि का दोष यह है कि इसके मानव-अधिगम में भी मानसिक क्रियाओं को महत्त्व नहीं दिया जाता। इसलिए अब क्षेत्रीय महाविद्यालय मेगर विधि को अपनाया जाने लगा है, क्योंकि इसमें मानसिक क्रियाओं को विशेष महत्त्व दिया जाता है।

अभिक्रमित अनुदेशन के निर्माण एवं चयन हेतु व्यावहारिक उद्देश्यों का प्रतिपादन किया जाता है-

(क) पूर्व व्यवहार (Entering Behaviour)

(ख) अन्तिम व्यवहार (Terminal Behaviour)

(क) पूर्व व्यवहार (Entering Behaviour)-पूर्व व्यवहार में छात्र-छात्राओं के उन गुणों को सम्मिलित किया जाता है जिनकी अभिक्रमित-अनुदेशन के लिए पूर्व आवश्यकता (Pre-requisities) होती है। इन गुणों में छात्र-छात्राओं की निम्नलिखित विशेषताओं को सम्मिलित किया जाता है-

(1) शिक्षण के प्रारम्भ करने के लिए जिस ज्ञान तथा कौशल की आवश्यकता होती है, उस ज्ञान और कौशल का स्पष्ट रूप से उल्लेख होना चाहिए।

(2)अनुदेशन (शिक्षण) के लिए प्रवीणता व गुणात्मक स्तर की व्याख्या भी स्पष्ट रूप से होनी चाहिए। प्रवीणता स्तर की व्याख्या प्रामाणिक परीक्षण के रूप में करनी चाहिए।

(3)पूर्व आवश्यक योग्यताओं को परीक्षण के रूप में स्पष्ट करना चाहिए।

(4)पूर्व व्यवहारों के लिए छात्र-छात्राओं के प्रेरणा स्तर को भी महत्त्व देना चाहिए कि छात्र-छात्राओं को किस प्रकार की प्रेरणा की आवश्यकता है जिससे छात्र-छात्राएं शिक्षण की अध्ययन प्रक्रिया में रुचि ले सकें।

(5)छात्र-छात्राओं के सम्बन्ध में पूर्व सूचनायें जैसे-उनकी आयु, मानसिक स्तर, भाषा की जानकारी का स्तर आदि का एकत्रित कर लेना चाहिए।

(6) पूर्व व्यवहारों को लिखने हेतु उस जनसंख्या की परिभाषा करनी चाहिए जिसके लिए अनुदेशन का निर्माण किया जाएगा।

पूर्व-व्यवहारों को जानने हेतु पूर्व परीक्षण का निर्माण किया जाता है। इसके अतिरिक्त छात्र-छात्राओं को निदानात्मक परीक्षा संचयी आलेख, व्यक्तिगत अनुभव आदि पूर्व व्यवहार के स्रोत माने जाते हैं।

(ख) अन्तिम व्यवहार (Terminal Behaviour)-अन्तिम व्यवहार के अन्तर्गत छात्र-छात्राओं की उन क्रियाओं एवं गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है जो उद्देश्य प्राप्ति हेतु सहायक होती हैं। अन्तिम व्यवहार के लिये ज्ञानात्मक उद्देश्य को ही महत्त्व दिया जाता है। इन्हें अनुदेशन का प्रदा (output) माना जाता है। पूर्व व्यवहार की क्रियाओं के लिए अदा (input) शब्द का प्रयोग किया जाता है। अन्तिम व्यवहारों को उद्देश्यों, पाठ्य वस्तु तथा कार्य सूचक क्रियाओं की सहायता से लिखा जाता है। इनके मूल्यांकन के लिए अन्तिम परीक्षा या मानदण्ड परीक्षा को निर्मित किया जाता है।

अनुदेशनात्मक (व्यवहारपरक) उद्देश्यों की विशेषताएं
(Characteristics of Instructional (behavioural) Objectives)

जैसा कि पहले इस बात को स्पष्ट किया जा चुका है कि सामान्य उद्देश्यों और व्यवहारपरक उद्देश्य में भिन्नता अर्थात् भेद है। व्यावहारपरक उद्देश्यों में अधिगम (सीखने) के व्यवहार से सम्बन्धित क्रियाओं की व्याख्या होती है। अनुदेशात्मक उद्देश्यों (व्यवहारपरक उद्देश्यों) की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं-

1. अनुदेशानात्मक उद्देश्यों को ऐसे कथन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें प्रत्यात्मक (धारणा) की दृष्टि से पूर्ण स्पष्टता हो।

2. इन उद्देश्यों द्वारा संदर्भित व्यवहार का स्वरूप अवलोकनीय (observable) और मापनीय होता है इसीलिए इन्हें क्रियात्मक उद्देश्यों की संज्ञा भी दी जाती है।

3. इन उद्देश्यों के द्वारा छात्र-छात्राएं, शिक्षक और परीक्षक-तीनों को लाभ होता है। छात्र-छात्राओं को व्यवहार की परिधि, शिक्षक का पैरामीटर और परीक्षक को सीमाओं और उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

4. अधिगम (सीखना) की परिस्थितियों को अपने ठोस रूप में गठित करने की दृष्टि से व्यवहारपरक उद्देश्य बहुत लाभदायक है। इनके द्वारा अधिगम अनुक्रम (learning sequence) उत्पन्न (जनित) करना सहज और सुगम हो जाता है।

5. अभिक्रम (प्रोग्राम) के आधार पर जनित (उत्पन्न) व्यवहार के मूल्यांकन के लिए अपेक्षित निकष परख (Critesion Test) बनाने में भी व्यवहारपरक उद्देश्यों से

पर्याप्त सहायता मिल जाती है। इसलिये अभिक्रम (प्रोग्राम) एवं उसके लिए उचित निकष परख का निर्माण से पूर्व व्यवहारपरक उद्देश्य का स्पष्ट विवरण (ब्यौरा) देना आवश्यक होता है।

6. इन उद्देश्यों के माध्यम से शिक्षण एवं परीक्षण सम्बन्धी प्रभावी रचना कौशल (Strategies) का निर्धारण करना सहज और सरल हो जाता है। इसके साथ ही साथ शिक्षण, अधिगम तथा परीक्षण की परिस्थितियों में अपेक्षित तालमेल एवं सामंजस्य बनाए रखना सम्भव हो जाता है।

स्केफील्ड के अनुसार अनुदेशनात्मक (व्यावहारिक) उद्देश्यों की विशेषताएं निम्न हैं-

(1) इन उद्देश्यों को स्वरूप का विशिष्टीकरण हो जाता है।

(2) परीक्षण के प्रश्नों को बनाने में पर्याप्त रूप से सहायता मिलती है।

(3) शिक्षण और परीक्षण में समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने के निम्न लाभ हैं-

(1) इन उद्देश्यों से शिक्षण व सीखने (Teaching learning) की क्रियाएं सीमित तथा सुनिश्चित हो जाती हैं।

(2) इससे समुचित शिक्षण युक्तियों का चयन करके अपेक्षित सीखने से सम्बन्धित परिस्थितियों को उत्पन्न किया जा सकता है।

(3) इससे उद्देश्य केन्द्रित मानदण्ड परीक्षा का निर्माण किया जा सकता है।

(4) इससे परीक्षण को शिक्षण पर आधारित किया जा सकता है और उद्देश्यों की परिणाम में गणना की जा सकती है।

अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखना
(Writing Instructional Objectives in Behavioural Terms)

ब्लूम द्वारा प्रस्तुत उद्देश्यों के वर्गीकरण में शिक्षण क्रियाओं को विशिष्ट रूप में लिखने का संकेत नहीं है। शिक्षण या अनुदेशनात्मक उद्देश्यों से एक ही स्तर का बोध होता है। उद्देश्यों में कहीं भी यह स्पष्टता नहीं है कि अनुदेशन के पश्चात् छात्र किस प्रकार का कार्य करने में सक्षम हो जाएगा अर्थात् योग्यता प्राप्त कर लेगा। दूसरे अर्थों में छात्र-छात्राओं के अन्तिम व्यवहार (Terminal Behaviour) के बारे में कोई स्पष्टता नहीं है। इसलिये अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखना आवश्यक है ताकि उद्देश्यों की विशिष्टता शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिक सशक्त एवं सार्थक और उद्देश्यपूर्ण बना सके।

अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन (Expected Behaviour Modification)

2. व्यवहार में परिवर्तन लाने वाली पाठ्य सामग्री (Content by which the behaviour is to be modified)

अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप शब्दावली में लिखने के लिए मुख्य रूप से निम्न मूलभूत आधार हैं-

(1)अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की प्रकृति जिसके अन्तर्गत ज्ञान बोध आदि की चर्चा

(2)सीखने वाले (अधिगम कर्त्ता) के व्यवहार का पक्ष जिसके अन्तर्गत ज्ञानात्मक क्रियात्मक और मनोपेशीय क्षेत्रों की चर्चा।

(3)विषय-वस्तु (पाठ्य-वस्तु) के विशिष्ट प्रकरण की चर्चा।

अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की व्यावहारिक रूप से चर्चा और व्यावहारिक रूप में लिखने हेतु कई विधियों को अपनाया जा सकता है। परन्तु इनमें से निम्न प्रमुख हैं-

(क) राबर्ट मेगर विधि (Robert Mager's Method or Approach)

(ख) मिलर विधि (Miller Approach)

(ग) आर. सी. ई. एम. विधि (R.C.E.M. Approach)

(क) राबर्ट मेगर विधि (Robert Mager's Method or Approach)-

राबर्ट मेगर ने उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने के लिए ब्लूम के उद्देश्य वर्गीकरण को ही आधार माना है। प्रत्येक उद्देश्य को व्यावहारिक रूप में लिखने के लिए कार्य सूचक (Action Verbs) क्रिया की सहायता ली गई है। प्रत्येक उद्देश्य के लिए 'कार्य सूचक क्रियाओं की सूची' तैयार की गई है जिसकी सहायता से अध्यापक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिख सकता है। इन उद्देश्यों को लिखने के लिए राबर्ट मेगर के तीन पदों का सुझाव दिया है-

1. सर्वप्रथम अन्तिम या अन्त्य व्यवहार (Terminal Behaviour), इनको पैदा करना शिक्षण का लक्ष्य है। इसका तात्पर्य यह है कि उद्देश्य से यह स्पष्ट होना चाहिए कि सफल अनुदेशन के पश्चात् अधिगमकर्त्ता में क्या करने की योग्यता होगी।

2. उन महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों का निर्णय या वर्णन करना जिनके अन्तर्गत व्यवहार परिवर्तन की जा रही है।

3. उस मानदण्ड या स्तर का वर्णन व निर्धारण जहां तक अधिगमकर्त्ता की सफलता आशातित है।

मेगर ने केवल ज्ञानात्मक एवं भावनात्मक पक्ष के वर्गों के लिए विभिन्न कार्य

सूचकों का वर्णन किया है तथा प्रत्येक उद्देश्यों में अनेक क्रियाएं दी हैं जिनका पूर्ण विवरण नीचे दिया जा रहा है-

ज्ञानात्मक पक्ष से सम्बन्धित कार्यसूचक क्रियाएं
(Actions Verbs for Cognitive Domain)

उद्देश्य (Objectives)	कार्य-सूचक क्रियाएं (Action Verbs)
1. ज्ञान (Knowledge)	सूची देना (List), परिभाषा देना (Define), कथन देना (State), चयन करना (Select), पहचानना (Recognise), मापन करना (Measure), लिखना (Write), प्रत्यास्मरण करना (Recall), रेखांकित करना (Underline) आदि।
2. बोध (Comprehension)	व्याख्या करना (Explain), उदाहरण देकर (Illustrate), संकेत करना (indicate), प्रस्तुत करना (Present), प्रतिपादन करना (formulate), वर्गीकरण करना (classify), अनुवाद करना (Translate)।
3. प्रयोग (Application)	पूर्व कथन (Predict), जांच करना (Assess), पाना (Find), प्रयोग करना (Use), बनाना (Construct), प्रदर्शन करना (Demonstrate), उल्लेख करना (Explain)।
4. विश्लेषण (Analysis)	विश्लेषण करना (Analysis), निष्कर्ष निकालना (Conclude), पुष्टि करना (Justify), तुलना करना (Compare), भेद करना (Distinguish), आलोचना करना (Criticize), अलग करना (Separate)।
5. संश्लेषण (Synthesis)	तर्क करना (Argue), व्यवस्थित करना (Organize), सामान्यीकरण करना (Generalize), निष्कर्ष देना (Conclude), पुन: कथन करना (Predict), संक्षिप्त करना (Summarise)।
6. मूल्यांकन (Evaluation)	निर्णय लेना (Judge), मूल्यांकन करना (Evaluation), पहचानना (Identify), दूर करना (Avoid), बचाव करना (Defined), आलोचना करना (Criticize)।

राबर्ट मेगर ने भावात्मक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने के लिए विभिन्न उद्देश्यों के व्यावहारिक रूप के लिये कार्य-सूचक क्रियाओं (Action Verbs) की सूची प्रस्तुत की है, जो निम्नलिखित है-

भावात्मक उद्देश्यों के लिए कार्य सूचक क्रियाओं की सूची
(A list of Action verbs of Affective Objectives)

उद्देश्य (Objectives)	कार्य-सूचक क्रियाएं (Action Verbs)
1. आग्रहण या ध्यान आकर्षण (Responding)	सुनना (Listen), पसन्द करना (Prefer), आग्रहण (Receive), स्वीकार करना (Accept), चयन करना (Select), प्रत्यक्षीकरण करना (Perceive)।
2. अनुक्रिया (Reacting)	उत्तर देना (Answer), कथन करना (State), सूची बनाना (List), विकास करना (Develop), चयन करना (Select), लिखना (Write), आलेखन बनाना (Receive)।
3. आंकलन (Valuing)	चुनना (Choose), पूरा करना (Complete), भाग लेना (Participate), पहचानना (Recognise), संकेत करना (Point), विभेद करना (Distinguish), वृद्धि करना (Increase) निश्चय करना (Decide)।
4. संगठन (Organization)	पाना (Find), बनाना (Form), चयन करना (Select), व्यवस्थित करना (Organise), संश्लेषित करना (Synthesize), जोड़ना (Add), समन्वय करना (Co-ordinate) निश्चित करना (Develop)।
5. मूल्य-विशिष्टीकरण या मूल्य चरित्रीकरण (Value specification or value characterization)	स्वीकार करना (Accept), बदलना (Change), चारित्रीकरण (Characterization), सामना करना (Face), सिद्ध करना (Prove), पुष्टि करना (Judge), जांच करना (Verify), हल करना (Solve) आदि।

सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत नागरिक शास्त्र में भारतीय नागरिक के कर्त्तव्य के शिक्षण और सीखने के ज्ञानात्मक उद्देश्य होते हैं। भावात्मक उद्देश्य का भी व्यावहारिक रूप इस प्रकार है-

आग्रहण-उद्देश्यों के लिए-

* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्य को स्वीकार करते हैं।
* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्य को पसन्द करते हैं।
* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यों का चयन करते हैं।

प्रतिक्रिया-उद्देश्य के लिए-

* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यों को लिख सकते हैं।
* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यों की सूची बनाते हैं।
* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यों का आलेख करते हैं।

अनुमूलन-उद्देश्य के लिए-

* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यों को पहचानते हैं।
* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यों का निर्धारण करते हैं।
* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यो को स्वीकार करते हैं।

संप्रत्ययीकरण-उद्देश्य के लिए-

* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यों में सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।
* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यों को व्यवस्थित कर सकते हैं।
* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यों को सह-सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

मूल्य-चरित्रीकरण-उद्देश्य के लिए-

* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यों को विकसित करते हैं।
* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यों को स्वीकार करते हैं।
* छात्र भारतीय नागरिक के कर्त्तव्यों को दुहराते हैं।

उद्देश्यों को व्यवहारिक रूप में लिखने की परम्परा है, क्योंकि अनुदेशन से पहले मानदण्ड परीक्षा तैयार की जाती है। अत: उसकी रचना में व्यवहारिक उद्देश्यों के लिये, प्रश्नों का निर्माण किया जाता है। परन्तु पाठ-योजना में उद्देश्यों को 'भविष्य-काल' में लिखा जा सकता है।

राबर्ट मेगर विधि की सीमाएं
(Limitations of Robert Mager Method)

ऊपरवर्णित, अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यावहारिक शब्दावली में लिखने की मे विधि की कुछ सीमाएं निम्नलिखित हैं-

1. इस विधि में उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने के लिए मानसिक प्रक्रिया पर विचार करने के स्थान पर केवल कार्य-सूचक क्रियाओं को ही अधिक महत्त्व दि गया है।

2. मेगर ने उद्दीपन तथा अनुक्रिया से ही अधिगम को व्यक्त किया है। पर समस्त मानवी-अधिगम की उद्दीपन तथा अनुक्रिया से व्यक्त नहीं किया जा सकता है

3. मेगर विधि का प्रयोग क्रियात्मक-पक्ष के उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप लिखने के लिए नहीं किया जा सकता है।

4. जैसा कि पूर्व वर्णित तालिका से स्पष्ट है, मेगर ने ज्ञानात्मक पक्ष के उद्देश्यों के लिए जिन क्रियाओं का वर्गीकरण तथा निर्धारण किया है, उसमें कई क्रियाओं को कई उद्देश्य में सम्मिलित किया गया है। अत: एक-एक क्रिया को कई उद्देश्यों में प्रयोग करना उचित प्रतीत नहीं होता है। इतना ही नहीं क्रियाओं का प्रयोग ज्ञानात्मक तथा भावात्मक दोनों पक्षों के विभिन्न उद्देश्यों में किया गया है। इस प्रकार ज्ञानात्मक तथा भावात्मक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने के लिए अन्तर स्पष्ट नहीं किया जा सकता है जबकि उद्देश्यों का व्यावहारिक रूप अधिक विशिष्ट तथा सुनिश्चित माना जाता है।

(ख) मिलर विधि (Miller Approach)

राबर्ट बी॰ मिलर ने भी 1962 में इस विधि का विकास किया। मिलर ने क्रियात्मक पक्ष पर बल दिया है। मिलर के अनुसार एक स्पष्ट उद्देश्य निम्नलिखित रूप में लिखा जाना चाहिए।

(1)अध्यापक को सर्वप्रथम संकेतक (Indicator) का वर्णन करना चाहिए, जिससे क्रिया का संकेत मिले।

(2)दूसरे संकेतक अथवा उद्दीपन का विशेष वर्णन करना चाहिए जिससे अनुक्रिया हो सके।

(3)इसके पश्चात् उस नियन्त्रण का वर्णन किया जान चाहिए जिसको सक्रिय बनाना है।

(4)सम्पन्न करने वाली क्रिया को लिखना अथवा वर्णन करना होता है।

(5)अन्त में अध्यापक को चाहिए कि वह अनुक्रिया के संकेत की पर्याप्तता अथवा पृष्ठपोषण (Feed-back) को स्थान देना।

निम्नलिखित तालिका में क्रियात्मक उद्देश्यों से सम्बन्धित कार्य-सूचक क्रियाओं का वर्णन किया जा रहा है-

मनोपेशीय या क्रियात्मक पक्ष
(Psychomotor Domain)

उद्देश्य	कार्य-सूचक क्रियाएं
1. प्रत्यक्षीकरण (Perception)	चित्र बनाना (Sketch), निर्माण करना (Construct)।
2. व्यवस्था (Set)	बनाना (Make), प्रारूप तैयार करना (Design)।
3. निर्देशाल्य अनुक्रिया (Guided Response)	पहचानना (Recognize), व्यवस्थित करना (Fix)।
4. कार्य-प्रणाली (Mechanism)	सुधार करना (Mend), अभ्यास (Drill)।
5. जटिल प्रत्यक्ष अनुक्रिया (Complex Overt Response)	मिलाना (Connect), सृजन करना (Create), पता लगाना (Locate)।

मनोपेशीय पक्ष के उद्देश्य (Objectives of Psychomotor Domain)	उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखना (Writing objectives in behaviour aspect)
1. प्रत्यक्षीकरण	छात्र सौरमण्डल 'मॉडल' का निर्माण कर सकते हैं।
2.व्यवस्था	छात्र सौरमण्डल 'मॉडल' का प्रारूप तैयार कर सकते हैं।
3.निर्देशात्मक अनुक्रिया	छात्र सौरमण्डल 'मॉडल' के विभिन्न अवयवों को व्यवस्थित कर सकते हैं।
4.कार्य-प्रणाली	छात्र सौरमण्डल 'मॉडल' में सुधार कर सकते हैं।
5.जटिल प्रत्यक्ष अनुक्रिया	छात्र सौरमण्डल 'मॉडल' के सम्बन्धित अवयवों का पता लगाकर इनका सृजन कर सकते हैं।

यहां 'मॉडल' का तात्पर्य किसी वस्तुगत प्रतिमान से है।

(ग) आर॰ सी॰ ई॰ एम॰ विधि (R.C.E.M. Method)

इस विधि का विकास क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय (Regional College of Education, Mysore) द्वारा किया गया है और इसीलिए इसका यह नामकरण हुआ है। इस वि में मेगर विधि की कमियों को दूर करने का प्रयास किया गया है। इस विधि में भी क की टैक्सॉनोमी को ही आधार माना है।

मेगर विधि में प्रक्रिया (Process) के स्थान पर उत्पादन (Product) को अधि महत्त्व दिया जाता है तथा सीखने की उपलब्धियों की अधिक चर्चा की जाती है। जबकि आर॰ सी॰ ई॰ एम॰ विधि में उत्पादन (Product) के स्थान पर प्रक्रिया (Process) को अधिक महत्त्व दिया जाता है। मेगर ने (Mager) ने अधिगम को उद्दीपन तथा अनुक्रियाओं से व्यक्त किया है जबकि मानव अधिगम में मानव-प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण कार्य करती है, उद्दीपन तथा अनुक्रिया से समस्त मानव-अधिगम को व्यक्त नहीं किया जा सकता है। इस विधि में मानसिक क्रियाओं को भी महत्त्व दिया गया है। तथा इस का प्रयोग उद्देश्यों को लिखने में भी किया गया है।

ब्लूम ने ज्ञानात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों को छः वर्गों में विभाजित किया है, लेकिन इस विधि में छः उद्देश्यों में से अन्तिम तीन उद्देश्यों-विश्लेषण, संश्लेषण तथा मूल्यांकन को मिलाकर एक नाम दिया गया है-सृजनात्मकता। इस प्रकार ज्ञानात्मक पक्ष को छः वर्गों के स्थान पर चार वर्गों में विभाजित कर दिया गया है। इन चारों उद्देश्यों को मानसिक क्रियाओं के रूप में 17 भागों में वर्गीकरण किया गया है। इन्हीं मानसिक क्रियाओं को ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने में प्रयुक्त किया जाता है। इसमें ज्ञान उद्देश्य में दो, बोध उद्देश्य में सात, प्रयोग उद्देश्य में पांच तथा सृजनात्मक उद्देश्य में तीन मानसिक क्रियाओं का वर्णन किया है जिसका विस्तृत विवरण नीचे दी गई तालिका में दिया गया है-

उद्देश्य (Objectives)	मानसिक योग्यताएं (Mental Abilities)
1. ज्ञान (Knowledge)	(i) प्रत्यास्मरण करना (Recall)
	(ii) अभिज्ञान करना (Recognition)
2. बोध (Comprehension)	(i) सम्बन्ध देखना (See Relationship)
	(ii) उदाहरण देना (Cite Example)
	(iii) भेद करना (Discriminate)
	(iv) वर्गीकरण करना (Classify)
	(v) व्याख्या करना (Interpret)
3. प्रयोग (Application)	(vi) पुष्टि करना (Verify)
	(vii) सामान्यीकरण (Generalize)
	(i) तर्क करना (Reason)
	(ii) परिकल्पना का प्रतिपादन करना (Formulate Hypothesis)
	(iii) निष्कर्ष करना (Infer)
	(iv) पूर्व कथन करना (Predict)
4. सृजनात्मकता (Creativity)	(i) विश्लेषण करना (Analyse)
	(ii) संश्लेषण करना (Synthesize)
	(iii) मूल्यांकन करना (Evaluate)

इस विधि में उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने के लिए पहले उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। तत्पश्चात् मानसिक क्रियाओं को पाठ्य-वस्तु के तत्त्वों के साथ प्रयुक्त करके व्यावहारिक रूप में लिखा जाता है।

आर॰ सी॰ ई॰ एम॰ विधि के अनुसार उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने की रूप-रेखा (An outline for writing objectives according to R.C.E.M. Approach)

1. ज्ञान उद्देश्य-

(i)छात्र में शब्द, प्रक्रिया, नियम, सिद्धान्त, परिभाषा आदि को अभिज्ञान करने की क्षमता है।

(ii)छात्र में शब्द, प्रक्रिया, नियम सिद्धान्त, परिभाषा आदि की प्रत्यास्मरण करने की क्षमता है।

उदाहरण रूप में सामाजिक अध्ययन विषय के अन्तर्गत भूगोल में 'पवन' शीर्षक के लिये-

(1)छात्र-छात्राओं की पवन की परिभाषा के प्रत्यास्मरण करने की योग्यता है।

- ज्ञान उद्देश्य

(2)छात्र-छात्राओं में पवन और समीर में अन्तर करने की क्षमता है। **-बोध उद्देश्य**

(3)छात्र-छात्राओं में पवनों के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालने की क्षमता है।

-प्रयोग उद्देश्य

(4)छात्र-छात्राओं में पवनों के घटकों को विश्लेषण करने की योग्यता है।

-सृजनात्मक उद्देश्य

एक और उदाहरण भूगोल में जलवायु के शिक्षण के लिए ज्ञान और बोध उद्देश्य को व्यावहारिक रूप में निम्न ढंग से लिख सकते हैं-

ज्ञान उद्देश्यों के लिए-

- छात्र 'जलवायु' शब्द की परिभाषा दे सकते हैं।

बोध उद्देश्य के लिए-

- छात्र 'जलवायु' शब्द का उल्लेख कर सकते हैं।
- छात्र जलवायु का उदाहरण दे सकते हैं।

नागरिक शास्त्र के मौलिक अधिकारों के शिक्षण के ज्ञानात्मक और भावात्मक उद्देश्य होते हैं-भावात्मक उद्देश्यों का व्यावहारिक रूप इस प्रकार है-

आग्रहण उद्देश्यों के लिए-

- छात्र-छात्राएं मौलिक अधिकारों को स्वीकारते हैं।

प्रतिक्रिया उद्देश्यों के लिए-

- छात्र-छात्राएं मौलिक अधिकारों को लिख सकते हैं।

व्यवस्थापन उद्देश्य के लिए-

- छात्र-छात्राएं मौलिक अधिकारों में सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

इस प्रकार अन्य सामाजिक विषयों के शिक्षण-उद्देश्यों का निर्धारण करके और समुचित क्रियाओं का चयन करके व्यावहारिक रूप में लिख सकते हैं। जैसे कि इतिहास विषय में 'स्वतन्त्रता संग्राम' विषय के लिए-

- छात्र-छात्राओं में 'स्वतन्त्रता संग्राम' के सन् का प्रत्यास्मरण करने की क्षमता है।

  -ज्ञान उद्देश्य
- छात्र-छात्राओं में 'स्वतन्त्रता संग्राम' के कारणों की व्याख्या करने की क्षमता है।

  -बोध उद्देश्य
- छात्र-छात्राओं में 'स्वतन्त्रता संग्राम' की सफलता के सम्बन्ध में तर्क करने की योग्यता है।

  -प्रयोग उद्देश्य
- छात्र-छात्राओं में 'स्वतन्त्रता संग्राम' के तथ्यों का विश्लेषण करने की क्षमता है।

  -सृजनात्मक उद्देश्य

उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने की उपयोगिता
(Utility of Writing Objectives in Behavioural Terms)

उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने की उपयोगिताएं निम्न हैं-

1. उद्देश्यों को उदार (विस्तृत) रूप मिलता है।
2. शिक्षण और अधिगम में सन्तुलन बनाए रखा जा सकता है।
3. शिक्षण क्रियाओं को सीमित और सुनिश्चित किया जा सकता है।

4. शिक्षण के अनुभवों की विशेषताओं को निर्धारित किया जा सकता है और उनका मापन सम्भव होता है।
5. अनुदेशनात्मक सामग्री का उपयुक्त ढंग से चयन और प्रयोग किया जा सकता है।
6. विद्यार्थी और शिक्षक दोनों ही विभिन्न प्रकार के व्यवहारों में अन्तर स्थापित कर सकते हैं। ऐसा होने से वे शिक्षण व्यूह-रचना एवं शिक्षण-युक्तियों का चयन सही ढंग से कर लेते हैं।
7. परीक्षण प्रश्नों का चयन भी सुगमता से किया जा सकता है।

अभ्यास के प्रश्न
(Study Questions)

1. 'व्यवहारपरक उद्देश्य' से क्या तात्पर्य है ? इस प्रकार के उद्देश्यों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए इनके मुख्य पक्षों की व्याख्या कीजिए।

   (What is meant by 'Instructional Objectives' ? Give an example of such objectives. Explain its main aspects.)
2. ब्लूम की 'वर्गकीय कोटियों' का विवरण दीजिए। इनकी उपयोगिता समझाइए।

   (Describe the taxonomic categories of Bloom. Explain their utility.)
3. ब्लूम और उसके सहयोगियों द्वारा प्रस्तुत ज्ञानात्मक और भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों के वर्गीकरण का वर्णन कीजिए।

   (Describe the taxonomies of educational objectives in Cognitive and affective domains as given by Bloom and his associates.)
4. उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप से लिखने से क्या तात्पर्य है ? इसकी क्या आवश्यकता है ? उद्देश्यों को इस प्रकार लिखने से कौन-कौन से मुख्य उपागम हैं ?

   (What is meant by writing objectives in behavioural terms ? What is its need ? What are important approaches of writing objectives in such way ?)
5. ब्लूम द्वारा निर्धारित अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।

   (Explain the Instructional Objectives determined by Bloom.)
6. सामान्य उद्देश्यों और व्यावहारपरक उद्देश्यों में क्या अन्तर है ? व्यवहारपरक उद्देश्यों के कौन-से तत्त्व हैं ?

   (What is the difference between General Objectives and Behavioural Objectives ? What are the elements of Behavioural Objectives ?)

BHIWANI ... COLLEGE ... LIBRARY

CHAPTER

4 सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण के मूल्य (Values of Teaching Social Sciences)

सामाजिक विज्ञान शिक्षण के मूल्य
(Values of Teaching Social Sciences)

सामाजिक विज्ञान शिक्षण के मूल्यों की चर्चा करने से पहले हमें सामाजिक विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों और सामाजिक विज्ञान शिक्षण के मूल्यों के अन्तर को स्पष्ट रूप से समझना बहुत आवश्यक है। इन दोनों के अन्तर को स्पष्ट रूप से समझने के बाद ही हम सामाजिक विज्ञान शिक्षण के मूल्यों के स्वरूप को समझ सकते हैं।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों और मूल्यों में भेद
(Difference between the Aims and Values of Teaching Social Sciences)

प्राय: यह देखा जाता है कि हमारे भावी शिक्षक उद्देश्यों और मूल्यों में भेद नहीं करते और इन दोनों का एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग कर लेते हैं अर्थात् इनको एक दूसरे का पर्याय मान लेते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। इन दोनों में पर्याप्त रूप से अन्तर दिखाई पड़ता है। निम्न बातों पर हम पूरी तरह से ध्यान दें तो हमें उद्देश्य और मूल्य का अन्तर स्पष्ट हो जाएगा।

उद्देश्य एक सोचा-समझा अन्त है जो आदर्श स्थिति की ओर संकेत करता है और यह सीमा रहित होता है। परन्तु मूल्य उद्देश्य प्राप्ति से पहले होने वाले प्रतिफल और लाभ हैं जिन्हें व्यक्ति उद्देश्य प्राप्ति के लिए किए गए प्रयासों के परिणामस्वरूप प्राप्त करता है। उद्देश्य सीमित न होकर असीमित होते हैं। इसलिए इनकी प्राप्ति पूर्ण रूप से सम्भव नहीं होती जबकि मूल्य की प्राप्ति संभव है क्योंकि ये सीमित क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाते हैं। उद्देश्यों का आधार दर्शन शास्त्र है और मूल्यों का आधार व्यक्ति द्वारा दिए गए प्रयत्न और प्रयोग होते हैं। उद्देश्य आदर्श स्थिति से सम्बन्धित होने के कारण इसकी प्राप्ति बहुत कठिन होती है लेकिन मूल्यों की प्राप्ति सम्भव है क्योंकि ये शिक्षण के अन्तर्गत किए गए प्रयत्नों के परिणाम, प्रतिफल, लाभ या उपलब्धियां होती हैं।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण के मूल्य
(Value of Teaching Social Science)

सामाजिक विज्ञान का शिक्षण निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। प्रत्येक कुशल शिक्षक इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यथा शक्ति प्रयत्न करता है और

कारगर शिक्षण विधियों का यथा आवश्यकता प्रयोग करता है। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप उसे अवश्य ही कुछ लाभ अथवा मूल्यों की प्राप्ति होती है। उसको प्रतिफल अथवा उपलब्धि भी कहा जा सकता है। इस प्रकार उद्देश्य और मूल्य में भेद है और इस भेद को उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लो सामाजिक विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य नागरिक को चरित्रवान बनाना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु व्यक्ति में अनेक सद्गुणों का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे मूल्यों का शोषण न करना, सत्य बोलना, समय का पाबन्द होना, सहयोग, सहनशीलता, देश प्रेम, न्याय प्रियता, समानता और विश्व बन्धुत्व की भावना आदि। ये सभी गुण यथा उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं। गहनता से विचार करें तो शिक्षक अपने प्रयासों के द्वारा अपने छात्र-छात्राओं में उपरोक्त गुणों में से कुछ गुणों का विकास करने में सफल होता है। इन प्राप्त किए गुणों को मूल्यों की संज्ञा दी जा सकती है। इन कुछ गुणों की प्राप्ति से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि नागरिक चरित्रवान हो गया है। व्यक्ति एक जीवन में क्या अनेक जीवन पाकर भी पूरी तरह से चरित्रवान नागरिक नहीं बन सकता।

हम यहां पर सामाजिक विज्ञान शिक्षण के मूल्यों की चर्चा कर रहे हैं जो निम्न हैं-

1. सामाजिक शिक्षा (Social Learning)-एक समय ऐसा था कि बालकों को सामाजिक शिक्षा परिवार में रहते हुए मिल जाती थी लेकिन आज के जटिल युग में यह सम्भव नहीं है। आज यह दायित्व औपचारिक संस्था स्कूल के ऊपर आ गया है। स्कूल इस दायित्व का पालन निर्धारित पाठ्यक्रम के विषय सामाजिक विज्ञान के शिक्षण से कर रहा है। स्कूल के शिक्षक द्वारा दी गई सामाजिक विज्ञान की शिक्षा छात्र-छात्राओं में सामाजिक गुणों का विकास करती है जिससे हमारे विद्यार्थियों में सामाजिक चेतना का विकास होता है।

2. अनुभव से ज्ञान (Knowledge with Experience)-छात्र-छात्राओं को केवल सैद्धान्तिक ज्ञान तक सीमित न करके उनके उनको व्यावहारिक ज्ञान भी देना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा करने से ही वे देश की उपलब्धियों के लिए योगदान दे सकते हैं। इसलिए छात्र-छात्राओं को पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित न रखकर उनको सामाजिक विज्ञान शिक्षण के माध्यम से सामाजिक व्यवहार कुशलता की शिक्षा दी जाए। इससे वे जो भी ज्ञान प्राप्त करेंगे वो उनके अनुभवों पर आधारित होगा जिससे वे समाज की कुरीतियों और अन्ध-विश्वासों से बचे रहेंगे।

3. समस्याओं का समाधान करने की योग्यता का विकास (Development of the ability to solve problems)-छात्र-छात्राओं को केवल पुस्तकीय ज्ञान दिया जाता है तो वे समझने लगते हैं कि समस्याओं का समाधान भी पुस्तकों में निहित होगा। परन्तु जो विद्यार्थी सामाजिक अध्ययन की शिक्षा योजनाबद्ध तरीके से प्रयोजन विधि एवं

समस्यामूलक विधियों द्वारा प्राप्त करता है वह खोजी बनकर स्वयं समस्या का समा
खोजने के लिए प्रयासरत रहेगा। इस प्रकार के स्वतन्त्र प्रयास में विद्यार्थी से आ
निर्भरता और उत्तरदायित्व की भावना का विकास होगा। देश के भावी नागरिक
अनुभव करेंगे कि वे स्वयं किसी भी प्रकार की समस्या का समाधान करने के लिए स
हैं।

4. सहयोग का प्रशिक्षण (Training in Co-operation)-प्राय: विद्यालि
में छात्र-छात्राओं को विद्यालय की शिक्षा के कार्यों में सहयोग देने का अवसर बहुत
मिलता है। वे स्वार्थ से प्रेरित होकर अपनी व्यक्तिगत उपलब्धियों में अधिक रुचि रख
हैं। विद्यालय में सहयोग केवल खेल के मैदान तक ही सीमित होता है। यही कारण है
आज का मनुष्य स्वार्थ प्रिय होता जा रहा है। ऐसा दृष्टिकोण समाज व राष्ट्र की प्रगति
बाधक है। समाज और राष्ट्र की प्रगति के लिए नागरिकों में सहयोग की भावना का हो
अत्यन्त आवश्यक है। स्वार्थ प्रियता का दृष्टिकोण वांछनीय नहीं है। हो सकता है अती
में ऐसा दृष्टिकोण रहा हो परन्तु आज की परिस्थितियों में सहयोग की भावना का हो
बहुत आवश्यक है अन्यथा राष्ट्र का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। इस विद्यालय
छात्र-छात्राओं की विशेष रुचियों, प्राकृतिक प्रवृत्तियों और योग्यताओं को ध्यान में रख
हुए उन्हें व्यक्तिगत उन्नति के लिए प्रेरित करने के साथ-साथ सामाजिक अध्ययन विष
के माध्यम से व्यक्गित अति को नियन्त्रित करते हुए सहयोग की परिस्थिति को उत्पन्
करना चाहिए।

5. पिछड़े हुए और धीमी गति से चलने वाले छात्रों की सहायता (Help Dull and Backward Children)-आज की परिस्थितियों में सामाजिक अध्ययन का
विषय मन्द-बुद्धि और पिछड़े छात्र-छात्राओं के लिए बहुत सार्थक एवं उपयोगी है। वे
विज्ञान के विषयों का अध्ययन करके सफलता प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते और न ही
सामाजिक विज्ञान के विषयों का अलग-अलग से अध्ययन कर सकते। ऐसे छात्र-
छात्राओं के लिए सामाजिक अध्ययन का विषय बहुत सार्थक और उपयोगी सिद्ध होता
है।

6. समन्वय और लचक (Adjustability and Flexibility)-आज भौतिक युग विज्ञान और तकनीकी का युग है। पिछले 6 दशकों में वैज्ञानिक आविष्कारों और तकनीकी ने मानव के जीवन में क्रान्ति ला दी है। इन तीव्र गति के साथ होने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मानव के लिए यह समझना बहुत कठिन हो गया है कि उसका भावी जीवन किस प्रकार का होगा ? इसलिए छात्र-छात्राओं को शिक्षित करते हुए यह देखना बहुत ज़रूरी हो गया है कि आज से कम-से कम 15 वर्ष पश्चात् परिस्थितियां बहुत अनुकूल होंगी या प्रतिकूल होंगी। इसलिए भावी नागरिकों के दृष्टिकोण

में लचक और समन्वय की प्रवृत्ति का विकास करना बहुत आवश्यक हो गया है। ऐसा होने से विद्यार्थी स्वयं को परिस्थितियों के अनुकूल बदल सकेंगे और परिस्थितियों में समन्वय भी स्थापित कर सकेंगे। ऐसा करने के लिए सामाजिक अध्ययन का शिक्षण ही छात्र-छात्राओं की सहायता कर सकता है क्योंकि छात्र-छात्राएं इस बात को समझ लेंगे कि बदलती परिस्थितियों में उन्होंने किस प्रकार की भूमिका निभानी है।

7. चयन की कुशलता (Efficiency to Select)-परम्परागत पाठ्यक्रम छात्र-छात्राओं को सफल जीवनयापन करने की दृष्टि से विषय चयन का अवसर प्रदान नहीं करता था। लेकिन आज परिस्थितियां भूतकाल की अपेक्षा अधिक जटिल हैं। आज छात्र-छात्राओं के लिए बुद्धिमतापूर्वक पाठ्यक्रम और उससे सम्बन्धित पाठ्य क्रियाओं का चयन करना ज़रूरी हो गया है। विषयों के अध्ययन हेतु आज इस बात की आवश्यकता को अनुभव किया जा रहा है कि किन-किन बातों का अध्ययन आवश्यक और किन-किन को छोड़ दिया जाए। इन सब बातों का निर्णय करने हेतु सामाजिक अध्ययन छात्र-छात्राओं की पर्याप्त अवसर जुटाने का भी कार्य करता है।

8. विचार और तर्क शक्ति का विकास (Development of Thinking and Reasoning Power)-सामाजिक अध्ययन विषय का बहुत-सा सैद्धान्तिक और व्यवहारिक ज्ञान का सम्बन्ध अनेक सामाजिक शास्त्रों भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र आदि से होता है। इस विषय के द्वारा हम छात्र-छात्राओं को युगान्तर में मानव के विकास की सूझ-बूझ की जानकारी देते हैं। हम यह भी बताते हैं कि मानव ने किस प्रकार अपने वातावरण को नियन्त्रित करना सीखा और किस प्रकार उसका जीवन प्रभावित हुआ और भूत में विभिन्न संस्थाओं का किस प्रकार से विकास हुआ और बदलते समय की मांग को देखते हुए इन संस्थाओं में क्या-क्या परिवर्तन हुए। इन सब तथ्यों की जानकारी आज के छात्र-छात्राओं सोचने और मनन करने के लिए विवश कर देती है और सोचने और मनन करने से ही तर्क-वितर्क की शक्ति का विकास होता है। मानव सभ्य समाज में इन शक्तियों के आधार पर ही निर्णय लिए जाते हैं और यथा आवश्यकता समस्याओं का समाधान किया जाता है। हमारे प्रजातान्त्रिक आदर्श इस बात की मांग करते हैं कि हमारे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के मामलों में नागरिक को न केवल भाग लेने के लिए प्रेरित करें बल्कि उनको इन मामलों में अपनी राय देने का भी अवसर मिले। सामाजिक अध्ययन का विषय और इससे सम्बन्धित ज्ञान हमारे भावी नागरिकों को आधुनिक समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रेरित करता है।

9. दायित्व की भावना का विकास (Development of sense of Responsibilities)-राष्ट्र की प्रगति के लिए प्रत्येक नागरिक को अपने दायित्व का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। समाज में बहुत से तत्व ऐसे होते हैं जो अपने दायित्वों का पालन

न करके बल्कि इसके विपरीत असामाजिक व्यवहार करते हैं और वे दूसरों को सहयोग प्रदान नहीं करते। हो सकता है कि उनको यह सब कुछ अज्ञानतावश करना रहा हो और एक अच्छे नागरिक के गुणों से अनभिज्ञ हों। परन्तु भविष्य के लिए सामाजिक विज्ञान के शिक्षण से भावी नागरिकों को उनके दायित्वों से भली-भांति परिचित कराया जा सकता है जिससे प्रत्येक नागरिक यह समझ सके कि व्यक्तिगत रूप से राष्ट्र निर्माण में उसकी क्या भूमिका हो सकती है और वह किस प्रकार राष्ट्र प्रगति में योगदान दे सकता है।

10.अन्तर्राष्ट्रीय सूझ-बूझ (International Understanding)-आज के समय की मांग यह है कि हमारे छात्र-छात्राओं का दृष्टिकोण उदार हो। वे केवल राष्ट्र स्तर तक सीमित न होकर वे विश्व-स्तर पर सोच-विचार करें। आज के मानव के सम्बन्धों का दायरा समाज विशेष या राष्ट्र विशेष तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह विश्व का नागरिक बन चुका है। इसलिए विद्यालय स्तर की निम्न कक्षा के स्तर से ही छात्र-छात्राओं को विश्व-बन्धुत्व की भावना के महत्त्व से परिचित करा देना चाहिए ताकि वे बड़े होकर मानवतावादी दृष्टि को अपनाने का प्रयास करें। यह सब कुछ सामाजिक विज्ञान शिक्षण के द्वारा सम्भव हो सकता है। इसलिए सामाजिक विज्ञान का शिक्षण पहली कक्षा से ही प्रारम्भ कर देना श्रेयस्कर होगा।

निष्कर्ष में हमारे लिए इस बात को समझना बहुत आवश्यक है कि भारत देश में हमने उच्च जीवन स्तर के लिए अभी थोड़े समय पहले ही संघर्ष करना प्रारम्भ किया है। यही कारण है कि न तो सामाजिक, आर्थिक व शैक्षणिक उद्देश्यों का स्पष्टीकरण हुआ है न ही भावी नागरिकों की आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिया गया है। अगर हम भविष्य में इसी प्रकार संघर्ष के लिए प्रयासरत रहेंगे और भावी नागरिकों में सामाजिक कौशलों का विकास करेंगे तो अवश्य ही हम प्रगति के पथ पर अग्रसर होंगे और समस्याओं से छुटकारा पा सकेंगे।

अभ्यास के प्रश्न
(Study Questions)

1. मूल्यों और लक्ष्यों के बीच में क्या अंतर है ? स्पष्ट करें।

   (What is the difference between Values and Aims ? Explain.)
2. सामाजिक विज्ञान के शिक्षण के मूल्यों पर विस्तार पूर्वक चर्चा करें।

   (Discuss in detail the values of teaching Social Science.)

CHAPTER 5

सामाजिक विज्ञान
(Social Science)

सामाजिक विज्ञान का विषय के भीतर और अन्य विषयों के साथ संबंध एवं इतिहास, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र, भूगोल, समाज शास्त्र, गणित, प्राकृतिक विज्ञान और मनोविज्ञान के साथ सामाजिक विज्ञानों के सह-संबंध
(Relationship of Social Science with Other Subjects and Within the Subject & Correlation of Social Science with History, Economics, Civics, Geography, Sociology, Mathematics, Natural Science and Psychology)

सह-संबंध/संबंध अर्थ एवं परिभाषाएं
(Meaning and Definitions of Correlation/Relation)

आधुनिक समय में सामाजिक विज्ञान का विषय अन्य विषयों की तुलना में अधिक महत्त्व रखता है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष रूप से समाज के अध्ययन से जुड़ा हुआ है। जिस प्रकार कोई एक विषय मानवीय संबंधों की सही तस्वीर नहीं पेश कर सकता, ठीक उसी तरह सामाजिक विज्ञान भी स्वतंत्र रुप से समाज और मानवीय संबंधों का सही वर्णन नहीं पेश कर सकता। वैसे भी सामाजिक विज्ञान अपनी अध्ययन सामग्री सामाजिक विज्ञान के विभिन्न विषयों से प्राप्त करता है। निश्चित रुप से इस विषय का संबंध अन्य विषयों से है। अग्रलिखित परिभाषाएं सह-संबंध या संबंध के अर्थों को स्पष्ट करने में सहायक हैं :

एच. सी बर्नाड (H.C. Barnard) के शब्दों में, ''सह-संबंध स्कूल के विभिन्न विषयों का जहां तक हो सके एक-दूसरे से संबंध स्थापित करने का प्रयास करता है।'' (Correlation tries to make the various school subjects relate to one another as far as possible.)

राज कुमार खन्ना (Raj Kumar Khanna) के अनुसार, ''सह-संबंध/संबंध का अर्थ दो या दो से अधिक तथ्यों में पाए जाने वाले संबंधों से है। जहां तक शैक्षिक विषयों के साथ संबंधों का प्रश्न है तो इसका अर्थ दो या दो से अधिक विषयों के बीच आपसी संबंध है।'' (Correlation/relation means bond between two or more than two facts. As far as educational subjects are concerned-then it means correlation between two or more than two subjects.)

बैंजामिन डमविल (Benjamin Dumwille) के शब्दों में, ''एक विषय को दूसरे विषय के अधीन करने से सिद्धान्त या साधारण सह-संबंध के नाम का वर्णन किया

जाता है।" (The principle of subordinating one subject to another's usually referred to under the name or correlation.)

सह-संबंध/संबंध की किस्में
(Types of Correlation/Relation)

सह-संबंध/संबंध की किस्मों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:

1. समतल सह-संबंध (Horizontal Correlation)-समतल सह-संबंध से अभिप्राय है अन्य विषयों के साथ समानान्तर संबंध। सामाजिक विज्ञान का दूसरे विषयों, जैसे-भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, गणित आदि के साथ संबंध समतल सह-संबंध कहलाता है।

2. लम्ब रूप सह-संबंध (Vertical Correlation)-सामाजिक विज्ञान का अपनी विभिन्न शाखाओं से आपसी संबंध को लम्ब रूप सह-संबंध कहते हैं। इसमें एक कक्षा के ज्ञान को दूसरी कक्षा के ज्ञान के साथ जोड़ा जाता है।

3. जिंदगी के साथ सह-संबंध (Correlation with Life)-वह संबंध जो मनुष्य की जिंदगी के साथ संबंध दर्शाता है अर्थात् जीवन केंद्रित हो, वह जिंदगी के साथ सह-संबंध कहलाता है। सामाजिक विज्ञान में मानवीय समाज और जीवन के बारे में व्यापक चर्चा की जाती है।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर कहा जा सकता है कि सह-संबंध की कई किस्में हैं और यह संबंध संबंधित विषय की आवश्यकतानुसार दूसरे विषयों के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है।

सामाजिक विज्ञान की सामग्री विशेषत: समाज से संबंधित है। शिक्षा में ऐसा कोई भी विषय नहीं जो समाज से संबंधित न हो क्योंकि प्रत्येक विषय के अस्तित्व के पीछे मुख्य उद्देश्य ऐसे समाज का निर्माण करना है जिसमें प्रत्येक नागरिक समाज/देश की आवश्यकताओं को जानता हो, उसकी पूर्ति में अपना योगदान दें, साथ ही वह समाज में स्वयं को अच्छी प्रकार से समायोजित कर सके। इस विषय के अस्तित्व में सामाजिक विज्ञान के विभिन्न विषयों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अतिरिक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी के व्यावहारिक पक्ष को भी विषय में व्यापक स्थान दिया गया है।

सामाजिक विज्ञान, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, समाज का अध्ययन है। समाज विकास और उससे संबंधित क्रियाएं अनेक क्षेत्रों से संबंधित होती हैं, जैसे सामाजिक, आर्थिक, भौतिक, प्राकृतिक एवं भाषा विज्ञान के साथ। यदि ऐसा कहा जाए कि यह सभी समाज और उसके साथ संबंधित क्रियाओं के साथ संबंध रखते हैं तो अधिक उचित होगा। सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में ऐसा कोई भी विषय नहीं जो इसके

साथ संबंधित न हो। इससे यह बात स्पष्ट होता है कि सामाजिक विज्ञान का प्रत्येक विषय के साथ निकट का संबंध है। इन संबंधों के बारे में नीचे विस्तृत चर्चा की जा रही है।

सामाजिक विज्ञान और इतिहास
(Social Science and History)

सामाजिक विज्ञान और इतिहास में अटूट संबंध है। इतिहास मानवीय समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि यह ऐसा विषय है, जो सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक निरंतर रूप से मनुष्य के साथ चल रहा है। इस धरती पर जो भी घटना घटित होती है, वह इतिहास से जुड़ जाती है। किसी देश और समाज आदि के साथ इसका गहरा संबंध होता है। इस कारण सामाजिक विज्ञान के साथ इसका निकट का संबंध है। सामाजिक विज्ञान का इतिहास से संबंध स्थापित करने से पहले हम इतिहास का अर्थ जानने का प्रयास करेंगे। इस संबंध में **हेनरी पिरेन (Henery Pirenne)** कहते हैं, "इतिहास समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों और प्राप्तियों का अध्ययन है।" (History, in its broadest sense, is everything that ever happened.) सामाजिक विज्ञान के महाकोष (Encyclopaedia of Social Science) अनुसार, इतिहास मानवता में परिवर्तनों का अध्ययन है। (History is the study of change in humanity.) इस प्रकार इतिहास भूतकाल की घटनाओं का अध्ययन है और सामाजिक विज्ञान में इसको अधिक महत्त्व दिया जाता है क्योंकि मनुष्य के भूतकाल से ही वर्तमान में उसका विकास करके भविष्य को सुरक्षित किया जा सकता है। सामाजिक विज्ञान और इतिहास के बीच संबंधों को स्पष्ट करने में अग्रलिखित कारक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं :

(i) मनुष्य की उत्पत्ति और विकास का अध्ययन (Study of Origin and Evolution of Human): सामाजिक विज्ञान में मनुष्य की उत्पत्ति और उसके विकास के बारे में व्यापक अध्ययन किया जाता है। मनुष्य की उत्पत्ति कब हुई, वह गुफाओं से घरों तक कैसे पहुंचा, ये कुछ ऐसे मुद्दे हैं, जिनका सामाजिक विज्ञान में विचार किया जाता है। सामाजिक विज्ञान यह सामग्री इतिहास से प्राप्त करता है।

(ii) सभ्यता के विकास की कहानी (Study of Development of Civilization): विश्व की विभिन्न प्रकार की सभ्यताओं की कहानी सामाजिक विज्ञान के विषय में विचारधीन होती है। मिस्र की सभ्यता हो या सिंधु घाटी की सभ्यता, इन सभी का अध्ययन इसमें किया जाता है। इनका अध्ययन करवाने के पीछे मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को सभ्यता और संस्कृति की जानकारी देना है। यह सामग्री भी सामाजिक विज्ञान इतिहास से प्राप्त करता है।

(iii) स्वतन्त्रता संग्राम के संघर्ष का अध्ययन (Study of Struggle for Freedom): भारत अंग्रेजों की गुलामी से 15 अगस्त, 1947 ई. को आज़ाद हुआ इसके लिए स्वतंत्रता सैनानियों को बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा थ सामाजिक विज्ञान में इसको शामिल करने का मुख्य उद्देश्य देश के भावी नागरिकों को स्वतंत्रता का महत्त्व बताना है। इतिहास में इसका व्यापक अध्ययन किया जाता है। इसमें वह सामग्री, जो प्रत्येक मनुष्य के लिए जाननी आवश्यक है, को सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाता है।

(iv) समाज के विकास का अध्ययन (Study of Development of Society): सामाजिक विज्ञान सामाजिक विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। इससे विद्यार्थियों को यह जानकारी प्राप्त हो जाती है कि आधुनिक समाज, जिसमें वे रह रहे हैं, का विकास कैसे हुआ। इतिहास विषय में इस पर व्यापक विचार किया जाता है। इसके महत्त्वपूर्ण तत्वों को सामाजिक विज्ञान में शामिल किया जाता है।

(v) राज्यों की उत्पत्ति और विकास का अध्ययन (Study of Origin and Evolution of States): सामाजिक विज्ञान में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य की उत्पत्ति और विकास पर व्यापक अध्ययन किया जाता है। विभिन्न कालों में स्थापित राजतांत्रिक और लोकतांत्रिक सरकारों के बारे में विद्यार्थियों को साधारण जानकारी दी जाती है। सामाजिक विज्ञान इससे संबंधित अध्ययन सामग्री इतिहास से प्राप्त करता है।

(vi) धर्मों और साहित्यक विकास का अध्ययन (Study of Religions and Literary Development): विभिन्न धर्मों, गुरुओं, पीरों आदि की शिक्षाओं को सामाजिक विज्ञान में व्यापक स्थान दिया जाता है। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों में धार्मिक सहनशीलता के गुणों का संचार करना है, अर्थात विद्यार्थी चाहे किसी भी जाति या धर्म से संबंधित हों, वे सभी धर्मों का सम्मान करें। इसके अतिरिक्त साहित्यक विकास को भी सामाजिक विज्ञान में व्यापक स्थान दिया जाता है। विद्यार्थियों को क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय साहित्य के बारे में भी जानकारी इसमें दी जाती है। सामाजिक विज्ञान प्रत्यक्ष रूप से यह सामग्री इतिहास से प्राप्त करता है क्योंकि यह इसके महत्त्वपूर्ण उप-विषयों में से है।

(vii) नैतिक मूल्य (Moral Values): सामाजिक विज्ञान के माध्यम द्वारा विद्यार्थियों में सच्चाई, ईमानदारी, पवित्रता, प्यार आदि नैतिक मूल्यों का संचार किया जाता है। इससे विद्यार्थियों का नैतिक पक्ष काफी सुदृढ़ होता है। उदाहरणत: बच्चे धर्म-गुरुओं के जीवन और शिक्षाओं के माध्यम से व्यापक स्तर पर नैतिक मूल्य प्राप्त करते हैं। सामाजिक विज्ञान यह विषय भी इतिहास से प्राप्त करता है।

(viii) महापुरुषों की जीवनियों का अध्ययन (Study of Eminent Personalities): सामाजिक विज्ञान में महापुरुषों की जीवनियों का भी अध्ययन किया जाता है, जैसे महात्मा गांधी, भगत सिंह, राजगुरु, चंद्र शेखर आज़ाद, लाल लाजपत राय, जवाहर लाल नेहरु, सरदार पटेल आदि। इनका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को देश सेवा के लिए प्रेरित करना है। इतिहास में इनके बारे में व्यापक अध्ययन किया जाता है। इनकी प्रभावशाली बातों को सामाजिक विज्ञान में शामिल करके साधारण नागरिकों को देश-सेवा के लिए तैयार किया जाता है।

सामाजिक विज्ञान और अर्थशास्त्र
(Social Sciences and Economics)

भूगोल की तरह अर्थशास्त्र भी सामाजिक विज्ञान के साथ निकट संबंध रखता है। मनुष्य का आर्थिक क्रियाओं के साथ नज़दीकी संबंध है। अगर ऐसा कहा जाए कि आर्थिक विकास ही विकसित समाज की नींव रखता है तो यह अनुचित नहीं होगा। दोनों के बीच संबंध स्थापित करने से पहले यह जान लेना अनिवार्य है कि अर्थशास्त्र क्या है ? इस संबंध मे विभिन्न विद्वानों ने अपने अनुसार परिभाषाएं दी हैं। **मार्शल** (Marshall) कहते हैं, "जीवन की साधारण कार्य-प्रणाली में मानवता का अध्ययन ही अर्थशास्त्र है। यह उस व्यक्तिगत और सामाजिक कार्य की जांच करता है, जिसका भौतिक सुविधाओं के साधनों की प्राप्ति और उपयोग से निकट का संबंध है।" (Economics is a study of mankind in the ordinary business of life. It examines that part of individual and social action which is most closely connected with the attainment and with the use of the material requisited of well being.)

अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान को व्यापक सामग्री प्रदान करता है। मनुष्य तथा समाज की जो क्रियाएं आर्थिकता के साथ जुड़ी होती हैं, उसको सामाजिक विज्ञान में शामिल किया जाता है। सामाजिक विज्ञान विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसमें अर्थशास्त्र के महत्त्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता। विद्यालय स्तर पर पढ़ाया जाने वाला अर्थशास्त्र (सामाजिक विज्ञान) विद्यार्थियों को व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करता है। सामाजिक विज्ञान और अर्थशास्त्र के बीच की पुष्टि अग्रलिखित तथ्यों से होती है -

(i) मानवीय क्रियाओं का अध्ययन (Study of Human Activities): सामाजिक विज्ञान अर्थशास्त्र से वही सामग्री प्राप्त करता है जिसका संबंध मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं के साथ होता है। यह सैद्धांतिकता के स्थान पर व्यावहारिकता को अधिक महत्त्व देता है।

(ii) समाज की क्रियाओं का अध्ययन (Study of Activities of Society): मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं के अतिरिक्त यह समाज की विभिन्न प्रकार की आर्थिक

क्रियाओं का भी अध्ययन करता है। किसी देश/राष्ट्र की कुल आय/उत्पादन/खर्च आदि के बारे में सामाजिक विज्ञान में व्यापक स्तर पर चर्चा की जाती है। इसके अतिरिक्त किसी समाज की आर्थिकता के विकास में कृषि, उद्योग या अन्य प्रकार के व्यवसायों की क्या-क्या भूमिका है, इसके बारे में भी इस विषय के अंतर्गत व्यापक चर्चा की जाती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र की वे शाखाएं जो समाज के साथ जुड़ी होती हैं, उसका अध्ययन सामाजिक विज्ञान में किया जाता है।

(iii) आर्थिक नियमों का अध्ययन (Study of Economic Laws): राष्ट्र समाज का विकास निश्चित नियमों के अधीन होता है। बिना नियमों के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। अर्थशास्त्र से संबंधित साधारण नियम कौन से हैं, इसके बारे में सामाजिक विज्ञान में चर्चा की जाती है। क्योंकि अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु में मनुष्य को विशेष महत्त्व दिया जाता है, इसलिए उनके लिए नियमों को जानना अनिवार्य है।

(iv) सीमित साधनों का अध्ययन (Study of Limited Resources): धरती पर उपलब्ध प्राकृतिक और अप्राकृतिक साधन सीमित मात्रा में हैं, परन्तु इसकी तुलना में मनुष्य की आवश्यकताएं असीमित हैं। अर्थशास्त्र के माध्यम से यह बताया जाता है कि मनुष्य की असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार सीमित साधनों द्वारा की जा सकती है। इसके महत्त्व को देखते हुए यह अनिवार्य हो जाता है कि देश/समाज के प्रत्येक नागरिक को सीमित साधनों का ज्ञान हो। इसलिए इसे सामाजिक विज्ञान का अंग बनाया गया है। संक्षेप में यह सामग्री भी अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान को प्रदान करता है।

सामाजिक विज्ञान और नागरिक शास्त्र
(Social Sciences and Civics)

सामाजिक विज्ञान और नागरिक शास्त्र के बीच गहरा संबंध है। नागरिक शास्त्र उत्तम नागरिकता के विकास में प्रभावशाली भूमिका निभाता है। इसलिए इसे सामाजिक विज्ञान का अभिन्न अंग बनाया गया है। वैसे नागरिक शास्त्र अपने-आप में कोई स्वतंत्र विषय नहीं है, बल्कि यह राजनीति शास्त्र (Political Science) की वह सामग्री है जो समाज और मनुष्य से संबंधित है, इसे अलग करके नागरिक शास्त्र का विषय बनाया गया है। नागरिक शास्त्र प्रत्यक्ष रूप से नागरिकों से संबंध रखती है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोष (Oxford Dictionary) में नागरिक शास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा है, "नागरिक शास्त्र ऐसा विज्ञान है जो उत्तम सामाजिक जीवन का अध्ययन करता है।" (Civics is the science which studies the best possible social life.) इसी तरह डी. एस. मुल्ले (D.S Mulley) का कहना है, "नागरिक शास्त्र जीवन और नागरिक की भूमिका का अध्ययन है।" (Civics is the study of the life and role of a citizen.) इस प्रकार नागरिक शास्त्र व्यक्ति के विशेष पक्ष, अर्थात् राजनैतिक पक्ष का अध्ययन करता

है और सामाजिक विज्ञान में ऐसे पक्ष को प्रमुखता प्रदान की गई है, क्योंकि इसके अध्ययन के बाद कोई भी नागरिक समाज के प्रति जागरुक हो सकता है। सामाजिक विज्ञान और नागरिक शास्त्र के बीच संबंध अग्रलिखित कारकों के कारण हैं -

(i) भारतीय संविधान और सरकारों का अध्ययन (Study of Indian Constitution and Various Types of Governments): सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत विद्यार्थियों को बताया जाता है कि संविधान क्या होता है और भारतीय संविधान लोगों के लिए क्या व्यवस्था करता है। इसके अतिरिक्त उनको स्थानीय सरकारों से लेकर केन्द्रीय सरकारों की बनावट और कार्यों के बारे में बताया जाता है। यह विद्यार्थियों को भारतीय संविधान और विभिन्न प्रकार की सरकारों के बारे में जानकारी देकर उनको राजनैतिक तौर पर जागरुक करते हैं।

(ii) लोकतांत्रिक ढांचे का अध्ययन (Study of Democratic Structure): आधुनिक समय में समस्त संसार में लोकतंत्र का बोलबाला है। विद्यार्थियों को बताया जाता है कि लोकतांत्रीय व्यवस्था में शक्ति लोगों के हाथ में होती हैं। इसके अतिरिक्त उनके अंदर लोकतांत्रिक मूल्यों (न्याय, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व, परस्पर सहयोग, समानता) का संचार भी किया जाता है। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को भविष्य में आदर्श नागरिक के रूप में स्थापित करना है। इस प्रकार नागरिक शास्त्र महत्त्वपूर्ण सामग्री सामाजिक विज्ञान को देता है।

(iii) अधिकारों और कर्त्तव्यों का अध्ययन (Study of Rights and Duties): सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत विद्यार्थियों को यह बताया जाता है कि उनके राष्ट्र के प्रति क्या-क्या कर्त्तव्य हैं और उन कर्त्तव्यों के बदले उन्हें क्या-क्या अधिकार प्राप्त हैं। इसके माध्यम से विद्यार्थियों को बताया जाता है कि भारतीय संविधान देश के प्रत्येक नागरिक को दस मौलिक कर्त्तव्य और छः मौलिक अधिकार प्रदान करता है। यह विषय नागरिक/राजनीति शास्त्र का मुख्य विषय है जो कि सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत भी विचाराधीन है।

(iv) सामुदायिक सहभागिता का अध्ययन (Study of Community Participation): सामुदायिक सहभागिता से अभिप्राय साधारण लोगों की राजनीति में सहभागिता से है। साधारण लोग राजनीति में क्यों रुचि लेते हैं ? वे वोट के अधिकार का प्रयोग क्यों करते हैं ? ये ऐसे प्रश्न हैं, जिसका उत्तर सामाजिक विज्ञान देता है। यह विद्यार्थियों को इस योग्य बनाता है कि वे समाज के जागरुक नागरिक बन कर अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकें। नागरिक शास्त्र में सामुदायिक/राजनैतिक सहभागिता को विशेष तौर पर चर्चा में लाया जाता है। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान और नागरिक शास्त्र के बीच संबंध स्पष्ट होते हैं।

(v) समकालीन विषयों का अध्ययन (Study of Contemporary Issues): सामाजिक विज्ञान में समकालीन विषयों पर व्यापक चर्चा की जाती है। उदाहरणत: भारत के संबंध में वातावरण, आर्थिक और सामाजिक विकास के विषयों पर इसमें व्यापक अध्ययन किया जाता है। वातावरण की संभाल, पंचवर्षीय योजनाएं और सामाजिक एकता आदि विषयों को व्यापक स्तर पर पाठ्यक्रम में शामिल किया जाता है। सामाजिक विज्ञान यह सामग्री नागरिक शास्त्र से प्राप्त करता है।

(vi) राष्ट्रीय एकता और अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना (National Unity and International Understanding): देश नागरिकों में देश भक्ति की भावना का संचार करने और संकीर्ण विचारधारा को समाप्त करने जैसे विषय सामाजिक विज्ञान में विशेष रुप से चर्चा में लाए जाते हैं ताकि क्षेत्रवाद को पीछे छोड़ते हुए राष्ट्रीय एकता का संचार करके राष्ट्र को विकासशील से विकसित रूप में परिवर्तित किया जा सकें।

राष्ट्रीय एकता के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना और शांति स्थापित करने के उद्देश्य से विभिन्न देशों की आम बातों को इसमें विशेष स्थान दिया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित अन्य ऐजंसियाँ इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। सामाजिक विज्ञान के माध्यम से विद्यार्थियों को इसके बारे में व्यापक जानकारी देकर उनकी सोच में सकारात्मक परिवर्तन लाने के प्रयास किए जाते हैं।

सामाजिक विज्ञान और भूगोल
(Social Science and Geography)

यह एक सर्वव्यापी तथ्य है कि सामाजिक विज्ञान और भूगोल के बीच में निकट संबंध है, क्योंकि यह विषय भूगोल से व्यापक सामग्री प्राप्त करता है। इनके बीच संबंध स्थापित करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि भूगोल की परिभाषा क्या है ? इस संबंध में **पीटर हैगेट** (Peter Heggett) का कहना है, "भूगोल वह विज्ञान है, जो धरती पर मानवीय वातावरण के वातावरणीय तत्वों (Ecological system) और क्षेत्रों (Regions) के स्थानीय तत्वों (Spatial system) की संरचनाओं (Structures) और आपसी क्रियाओं (Interaction) का अध्ययन करता है।" प्रसिद्ध भू-वैज्ञानिक **ब्रोएक** (Broek) का कहना है, "मानवीय संसार के रूप में पृथ्वी तल की विभिन्नता का क्रमबद्ध ज्ञान भूगोल है।" इस प्रकार भूगोल भू-अध्ययन (Geo-study) के साथ-साथ वातावरण आदि का अध्ययन करता है जिसका मनुष्य के साथ निकट का संबंध है। भूगोल के उन तत्वों को सामाजिक विज्ञान में शामिल किया जाता है, जो प्रत्येक नागरिक के लिए अनिवार्य होते हैं। भूगोल में भौगोलिक ढ़ांचा महासागरीय स्थिति, प्राकृतिक वातावरण का मानवीय जीवन के साथ संबंध, यातायात के साधन, जल साधन आदि के

बारे में व्यापक चर्चा की जाती है। यह वह तत्व है जो मानवीय समाज के लिए आवश्यक है। इसलिए यह सामग्री सामाजिक विज्ञान में शामिल की गई है। मानवीय जीवन में भूगोल की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह विषय हमें मानव और उसके रहने के स्थान (धरती) के बारे में बताता है। इसके अतिरिक्त जलवायु वातावरण, जंगल, पशुधन, खनिज पदार्थ आदि के बारे में भी व्यापक अध्ययन किया जाता है। यह सारी सामग्री सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत आती है।

वास्तव में सामाजिक विज्ञान की बहुत सारी शाखाओं का अध्ययन भूगोल के ज्ञान के बिना संभव नहीं। सामाजिक विज्ञान विभिन्न देशों के लोगों के रहने की परिस्थिति, जीवन ढंग, व्यवसाय, जीवन स्तर आदि का अध्ययन करता है। ये सभी भौगोलिक विशेषताओं से संबंधित हैं। प्रत्येक देश की भौगोलिक स्थिति लोगों के रहन-सहन पर प्रभाव डालती है। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान समाज और मनुष्य के आपसी संबंधों का अध्ययन है जोकि भूगोल विषय के बिना अधूरा है। सामाजिक विज्ञान और भूगोल के बीच के संबंधों को दो प्रकार से जान सकते हैं -

(i) आकस्मिक सह-संबंध (Incidental Correlation): सामाजिक विज्ञान का शिक्षक जब उप-विषय के संकल्प को समझाने या कुछ तथ्यों को स्पष्ट करने के लिए स्वाभाविक रूप से भौगोलिक तथ्यों का वर्णन कर देता है, जैसे-भूतकाल में जितने भी विदेशी आक्रमण हुए हैं, वे उत्तर-पश्चिमी सीमाओं से हुए हैं, परिणामस्वरुप उत्तरी भारत के लोगों की जनसंख्या में कमी आई है। इस उदाहरण में अप्रत्यक्ष रूप से यह बताया गया है कि भारत के उत्तर-पश्चिमी की भौगोलिक स्थिति आक्रमणकारियों को निमंत्रण देने के लिए सही है। इस प्रकार शिक्षक शिक्षण के दौरान स्वत: ही भूगोल विषय के तत्त्वों का प्रयोग कर लेता है।

(ii) योजनात्मक सह-संबंध (Planned Correlation): जब सामाजिक विज्ञान का शिक्षक शिक्षण के दौरान बिन्दुओं की स्पष्टता के भौगोलिक तथ्यों का प्रयोग योजना के अधीन करता है तो इसे योजनात्मक सह-संबंध कहा जाता है। जैसे पानीपत की तीसरी लड़ाई (1761 ई.) में मराठों की हार के पीछे भौगोलिक परिस्थितियां उत्तरदायी थी। शिक्षक मानचित्र का प्रयोग करते हुए विद्यार्थियों को बताएगा कि मराठे पश्चिमी भारत के रहने वाले थे और उनकी जलवायु और जीवन परिस्थितियां उत्तरी भारत के मुकाबले व्यापक अंतर रखती थी और इसके लिए भूमध्य रेखा और कर्क रेखा जिम्मेवार थीं। इस प्रकार शिक्षक सीधे रूप से तथ्यों की स्पष्टता के लिए भूगोल का प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त राजनैतिक विभाजन, प्रदेशों की जलवायु आदि की स्पष्टता भी भूगोल के माध्यम से ही होती हैं। योजना के तहत अग्रलिखित पक्षों का अध्ययन किया जाता है-

- **भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन (Study of Geographical Conditions)**-भूगोल के मुख्य रूप से भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है। संसार का महाद्वीपों में विभाजन, महासागर, सागर आदि की मानवीय समाज में भूमिका आदि के बारे में व्यापक चर्चा की जाती है। सामाजिक विज्ञान यह महत्त्वपूर्ण सामग्री भूगोल से प्राप्त करता है। इस प्रकार दोनों के बीच गहरे संबंधों की पुष्टि होती है।

- **प्राकृतिक वातावरण का अध्ययन (Study of Natural Environment)** प्राकृतिक वातावरण का विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ने वाले प्रभावों का व्यापक अध्ययन भूगोल में किया जाता है। किसी क्षेत्र की जलवायु का लोगों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसके बारे में भी चर्चा इस विषय में की जाती है। जलवायु किसी भी क्षेत्र के वातावरण को प्रभावित करती है, उदाहरणत: उत्तर भारत की जलवायु पश्चिमी भारत की तुलना में गर्म/सर्द है। इसका कारण इनकी भूमध्य रेखा से दूरी है। इसके बारे में विद्यार्थियों को सामाजिक विज्ञान के माध्यम से व्यापक जानकारी दी जाती है। सामाजिक विज्ञान यह सारी सामग्री भूगोल से प्राप्त करता है।

- **प्राकृतिक संसाधनों का अध्ययन (Study of Natural Resources)**-देश के विभिन्न क्षेत्रों में मौजूद प्राकृतिक संसाधनों के बारे में व्यापक जानकारी भूगोल से उपलब्ध करवाई जाती है। खनिज पदार्थ, कोयले की खानें, पैट्रोलियम आदि के बारे में देश के प्रत्येक नागरिक को पता होना चाहिए क्योंकि ये सीमित मात्रा में हैं और इनका योग्य ढंग से प्रयोग किया जाना आवश्यक है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा के द्वारा साधारण लोगों को जागरुक किया जाए। इस लिए भूगोल से यह सामग्री सामाजिक विज्ञान में लाई गई है। संक्षेप में सामाजिक विज्ञान भूगोल से प्राकृतिक संसाधनों के बारे में व्यापक सामग्री प्राप्त करता है।

- **यातायात और संचार के साधन (Means of Transportation and Communication)**-सामाजिक विज्ञान में यातायात के साधनों (सड़कें, रेल, हवाई) के बारे में व्यापक अध्ययन किया जाता है। इसमें विद्यार्थियों को यह बताया जाता है कि कैसे देश में सड़कों और रेलों का जाल बिछा हुआ है और साथ ही देश और विदेश के बीच किस प्रकार हवाई यातायात का प्रबंध किया गया है। इसके अतिरिक्त संचार के विभिन्न साधनों के बारे में भी इसमें अध्ययन किया जाता है। सामाजिक विज्ञान यह सारी जानकारी भूगोल से प्राप्त करता है।

- **लोगों के बीच परस्पर निर्भरता (Interdependence among People)**-सामाजिक विज्ञान में लोगों के बीच परस्पर निर्भरता पर भी विचार किया जाता है। क्षेत्रीय और भौगोलिक विभिन्नता के कारण एक क्षेत्र, दूसरे क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह स्थिति अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों के

मध्य भी है। सामाजिक विज्ञान ऐसे मूल्यों का विकास करता है जिसके साथ स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लोगों के बीच बनी आपसी निर्भरता को संयुक्त प्रयत्नों/सहयोग के साथ पूरा किया जाए।

सामाजिक विज्ञान और समाज शास्त्र
(Social Science and Sociology)

सामाजिक विज्ञान, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, समाज का अध्ययन है। जबकि समाज-शास्त्र प्रत्यक्ष रूप से समाज का अध्ययन है, "जो भी विषय शिक्षण प्रक्रिया के दौरान अध्ययन करवाए जाते हैं, वे समाज के साथ ही संबंधित होते हैं और समाज शास्त्र मुख्य रूप से समाज का ही अध्ययन है अर्थात् इसमें मनुष्य के सामाजिक जीवन का अध्ययन किया जाता है।" ("Those subjects which are considered or studied in education, they are related to the society. Sociology is main study of society, means this includes social life of man in which his political, social, economical and cultural aspects are present") समाज -शास्त्र को परिभाषा देते हुए प्रसिद्ध विद्वान **मैकाइवर और पेज** (MacIver and Page) ने कहा है, "समाज-शास्त्र सामाजिक संबंधों का अध्ययन है, इन संबंधों के जाल को हम समाज कहते हैं।" ("Sociology is about social relationship ; the network of relationship we call society.") **जार्ज सिमल** (George Simmel) ने कहा है, "समाज-शास्त्र ऐसा विज्ञान है, जो बाह्य रूप से मनुष्य के आपसी संबंधों का अध्ययन करता है।" (Sociology is the science that studies the external forms of human interrelations.) इस प्रकार समाज शास्त्र में मनुष्य की सामाजिक क्रियाओं का व्यापक अध्ययन किया जाता है। इसकी महत्त्वपूर्ण सामग्री को सामाजिक विज्ञान में शामिल किया जाता है ताकि विद्यार्थियों को समाज के बारे में सकारात्मक रुप में जानकारी दी जा सके। दोनों विषयों के आपसी संबंधों को अग्रलिखित कारक स्वयं सिद्ध करते हैं -

(i) सामाजिक बनावट का अध्ययन (Study of Social Set-up): सामाजिक विज्ञान समाज की बनावट के बारे में व्यापक करता है। प्राचीन काल की तुलना में आधुनिक काल में कौन-कौन से परिवर्तन आए हैं, इसके पीछे क्या कारण थे, इस सब प्रश्नों के उत्तर सामाजिक विज्ञान में दिया जाता है। समाज में स्थापित जाति व्यवस्था के बारे में भी इसमें चर्चा की जाती है। सामाजिक विज्ञान प्रत्यक्ष रूप से यह सामग्री समाज शास्त्र से प्राप्त करता है, क्योंकि उसमें सामाजिक बनावट को मुख्य विषय के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

(ii) सामाजिक संबंधों का अध्ययन (Study of Social Relationship): सामाजिक संबंधों में तीव्रता से आ रहे परिवर्तन, संयुक्त परिवार (Joint family) के

स्थान पर एकल परिवार (Single family) का बढ़ता प्रभाव आदि विषयों पर मुख्य से सामाजिक विज्ञान में विचार किया जाता है। इस प्रकार के परिवर्तनों के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों के बारे में जानकारी प्रदान करके विद्यार्थियों को नई सामाजिक परिस्थिति में समायोजित करने के लिए तैयार किया जाता है।

(iii) सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन (Study of Social Mobility): सामाजिक विज्ञान में सामाजिक गतिशीलता के बारे में व्यापक स्तर पर अध्ययन किया जाता है। इसके माध्यम से विद्यार्थियों को यह बताया जाता है कि समाज कभी भी स्थिर नहीं रहता। कल का समाज, आज की तुलना में कम विकसित था और भविष्य का समाज निश्चित रूप में आज की तुलना में अधिक विकसित होगा। इस गतिशीलता के लिए उत्तरदायी कारणों पर व्यापक स्तर पर चर्चा की जाती है। समाज-शास्त्रियों की दृष्टि से ही सबसे पहले सामाजिक गतिशीलता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया था। इस प्रकार यह शाखा भी सामाजिक विज्ञान में समाज-शास्त्र से ली गई है।

(iv) रीति-रिवाजों/संस्कृति का अध्ययन (Study of Customs/culture): सामाजिक विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में रीति-रिवाज और संस्कृति के बारे में विस्तृत अध्ययन किया जाता है। किसी क्षेत्र या विशेष समय के दौरान लोगों के क्या रीति रिवाज थे या उनकी संस्कृति कैसी थी इसके बारे में भी चर्चा की जाती है। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को देश के रीति-रिवाजों/संस्कृति के आम तत्त्वों के बारे में ज्ञान देना है। क्योंकि यह विषय, समाज से प्रत्यक्ष रुप से संबंधित है, इसलिए यह स्वाभाविक है कि यह समाज-शास्त्र का अभिन्न अंग है।

(v) सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन (Study of social institutions): सामाजिक विज्ञान में विभिन्न प्रकार की सामाजिक संस्थाओं के बारे में व्यापक रुप में चर्चा की जाती है। इन संस्थाओं का मानवीय समाज से गहरा संबंध है। अगर यह कहा जाए कि समाज की सही तस्वीर प्रस्तुत करने में ये सामाजिक संस्थाएं (परिवार, पड़ोस, सामाजिक क्लब समाज कल्याण संस्थाएं) महत्त्वपूर्ण योगदान डालती हैं, तो अधिक उचित होगा।

सामाजिक विज्ञान और गणित
(Social Science and Mathematics)

सामाजिक विज्ञान के विभिन्न उप-विषयों में गणित का व्यापक उपयोग होता है। इस लिए हम कह सकते हैं कि सामाजिक विज्ञान अपने विकास में गणित का सहारा लेता है। गणित अंक और स्थान का विज्ञान है। भूगोल और अर्थशास्त्र के अंतर्गत गणित का व्यापक प्रयोग किया जाता है।

गणित के ज्ञान के बिना भूगोल और अर्थशास्त्र का अध्ययन प्रभावशाली ढंग से नहीं किया जा सकता। उपज, आयात-निर्यात क्रय/विक्रय, जनसंख्या आदि के साथ संबंधित बातों का अध्ययन गणित के ज्ञान के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में गणित का व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाता है। अर्थशास्त्र आर्थिक क्रियाओं से संबंधित है। इसलिए इसमें संख्यात्मक (Quantitative) पक्ष का अध्ययन किया जाता है। अर्थशास्त्र द्वारा जितने भी सिद्धान्त/नियम बनाए जाते हैं, उसमें गणित की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके अतिरिक्त आंकड़ों का विश्लेषण भी गणित के आधार पर ही किया जाता है।

इतिहास और नागरिक शास्त्र में भी गणित का व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाता है। इतिहास तिथियों और घटनाओं का क्रमबद्ध अध्ययन करता है। तिथि के ज्ञान के बिना किसी घटना या ऐतिहासिक तथ्य का कोई महत्त्व नहीं। पानीपत की पहली लड़ाई और दूसरी लड़ाई कब हुई ? अकबर का शासन काल कब तक रहा ? ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनका संबंध गणित से है। इसके अतिरिक्त अगर विद्यार्थियों को यह बताते हुए कि आज़ादी की पहली लड़ाई 1857 ई. में हुई और प्रश्न पूछा जाए कि आज़ादी की पहली लड़ाई आज से कितने वर्ष पहले हुई थी ? तो निश्चित रूप से बच्चों के लिए गणित का ज्ञान आवश्यक है। इसी तरह नागरिक शास्त्र में ग्राम पंचायत के सदस्यों की गिनती, आय/व्यय, लोक सभा/राज्य सभा के सदस्यों की आय, चुनाव के समय उम्मीदवारों को मिली वोटें आदि गणित की तरफ संकेत करते हैं।

इस प्रकार सामाजिक विज्ञान में ग्राफ, चार्ट, नक्शे, क्षेत्रफल, जनसंख्या, आर्थिक उतार-चढ़ाव, विभाजन आदि के अध्ययन में गणित का व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामाजिक विज्ञान और गणित के बीच व्यापक संबंध पाया जाता है।

सामाजिक विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान
(Social Science and Natural Science)

सामाजिक विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान के मध्य काफी निकटता स्थापित की जाती है। भूगोल, जो कि सामाजिक विज्ञान की महत्त्वपूर्ण शाखा है को समझने के लिए विज्ञान की जानकारी आवश्यक है क्योंकि इसमें बहुत सारी बातें वैज्ञानिक सिद्धान्तों/नियमों पर आधारित है। प्राकृतिक भूगोल में जलवायु, पृथ्वी की दैनिक व वार्षिक गति, वनस्पति ज्वालामुखी, खनिज-पदार्थ, भूकम्प, मिट्टी आदि के अध्ययन के लिए विज्ञान के साथ संबंध स्थापित करना पड़ता है। विज्ञान की जानकारी से भौगोलिक तथ्यों को आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है।

वैज्ञानिकों ने इतिहास और प्राकृतिक विज्ञान के बीच निकटता स्पष्ट की है। प्रसिद्ध विद्वान कालिंगवुड (R.G. Collingwood) ने इसके बारे में लिखा है, "प्राकृतिक

विज्ञान पूर्ण रूप से ज्ञान नहीं है, अपनी उत्पत्ति के लिए इसे दूसरों के ज्ञान पर निर्भर पड़ता है। जिसे एक प्रकार का ऐतिहासिक ज्ञान कहा जा सकता है।" मानवीय इतिहास के निर्माण और उसकी किस्मत को निर्धारित करने में प्रकृति ने विशेष भूमिका निभाई और मनुष्य की क्रियाएं प्राकृतिक वातावरण से प्रभावित होती है। हमारे देश में हिमालय पर्वत तथा बहुत-सी नदियों ने मानवीय इतिहास के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वॉल्श (W.H. Walsh) ने भी स्पष्ट लिखा है कि मनुष्य के कार्यों और उसकी प्राप्तियों पर सबसे ज्यादा प्रभाव प्राकृतिक घटनाओं का ही पड़ता है। मराठों को आक्रमणकारी और मुगलों को लुटेरा बनाने में वहां की जलवायु ने अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। उदाहरणतः नेपोलियन अंतिम युद्ध (वाटरलू, 1815) में एक कमज़ोर सेना से इसलिए हार गया क्योंकि युद्ध के समय वहाँ भारी वर्षा हो गई थी। इस संबंध में प्रसिद्ध जर्मन हर्डर (Harder) का मत है कि प्राकृतिक विज्ञान और इतिहास में घनिष्ट संबंध है। उनके शब्दों में "मानव के विकास में प्राकृतिक परिस्थितियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि समस्त संसार एक शरीर है। प्रकृति का ज्ञान भी इतिहास की ही तरह है। मनुष्य का चाँद पर पहुँचना भी एक ऐतिहासिक तथ्य है।" इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक विज्ञान में हम प्राकृतिक विज्ञान और उसके प्रभावों के बारे में विस्तृत अध्ययन करते हैं।

मनोविज्ञान के साथ सामाजिक विज्ञानों के सह-संबंध

(Correlation of Social Sciences with Psychology)

मनुष्य जब पैदा होता है तो वह केवल जैविक प्राणी होता है, परन्तु जल्द ही वह एक सामाजिक प्राणी बनने लग जाता है। जैविक प्राणी से सामाजिक प्राणी में बदलाव उसमें समाजीकरण व शिक्षा की प्रक्रिया के द्वारा होता है। शिक्षा समाज की एक पीढ़ी द्वारा अपने से निचली पीढ़ी को अपने ज्ञान के हस्तांतरण का प्रयास है। इस विचार से शिक्षा एक संस्था के रूप में काम करती है, जो व्यक्ति विशेष को समाज से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा समाज की संस्कृति की निरंतरता को बनाए रखती है।

साइकोलॉजी या मनोविज्ञान में मानव कार्यों और व्यवहार (mental function) वैज्ञानिक अध्ययन (behaviour) शामिल है कभी-कभी यह प्रतीकात्मक (symbol) व्याख्या (interpretation) और जटिल विश्लेषण (critical analysis) पर भी निर्भर करता है, हालाँकि ये परम्पराओं और अन्य सामाजिक विज्ञान (social science) जैसे समाजशास्त्र (sociology) तुलना में कम स्पष्ट हैं। मनोवैज्ञानिक ऐसी घटनाओं का धारणा (perception), अनुभूति (cognition), भावना (emotion), व्यक्तित्व (personality), व्यवहार (behaviour), और पारस्परिक संबंध (interpersonal relationships) के रूप में अध्ययन करते हैं। कुछ विशेष रूप से गहरे मनोवैज्ञानिक

(depth psychologists), अचेत मस्तिष्क (unconscious mind) का भी अध्ययन करते हैं।

मनोवैज्ञानिक ज्ञान मानव क्रिया (human activity) के भिन्न क्षेत्रों पर लागू होता है, जिसमें दैनिक जीवन के मुद्दे शामिल हैं जैसे परिवार, शिक्षा (education) और रोज़गार और मानसिक स्वास्थ्य (mental health), मनोविज्ञानवेत्ता व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार में मानसिक कार्य की भूमिका को समझने का प्रयास करते हैं, जबकि इसके तहत आने वाले शरीर कार्यिकी (physiological) तथा तंत्रिका (neurological) प्रक्रियाओं पर भी कार्य करते हैं। मनोविज्ञान में अध्ययन और अनुप्रयोग के कई क्षेत्र भी शामिल हैं जैसे मानव विकास (human development), खेल (sports), स्वास्थ्य (health), उद्योग (industry), मीडिया (media) और कानून (law), मनोविज्ञान में प्राकृतिक विज्ञान (natural sciences), सामाजिक विज्ञान और मानविकी (humanities) के अनुसंधान भी शामिल हैं।

शैक्षिक मनोविज्ञान (Educational psychology) में शैक्षिक हस्तक्षेप की प्रभावशीलता, शिक्षण के मनोविज्ञान और विद्यालयों के संगठनों के सामाजिक के सामाजिक मनोविज्ञान (social psychology) का अध्ययन किया जाता है। बाल मनोवैज्ञानिकों जैसे लेव वयगोटस्की (Lev Vygotsky), जीन पिआगेत (Jean Piaget) और जेरोम ब्रूनर (Jerome Burner) का कार्य शिक्षण (teaching) तरीकों और शैक्षिक प्रथाओं के निर्माण में बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। शैक्षिक मनोविज्ञान को अक्सर अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में शामिल किया जाता है।

सामाजिक मनोविज्ञान (social psychology) सामाजिक व्यवहार और मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है, जिसमें इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि लोग कैसे एक-दूसरे के बारे में सोचते हैं और एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। सामाजिक मनोवैज्ञानिक विशेष रूप से इस बात में रूचि लेते हैं, के लोग सामाजिक स्थिति के लिए कैसे प्रतिक्रिया करते हैं। वे ऐसे विषयों को एक व्यक्ति के व्यवहार पर दूसरों के प्रभावों के रूप में अध्ययन करते हैं। सामाजिक अनुभूति (social cognition) में सामाजिगक और संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के तत्व संग्लित हो जाते हैं ताकि इस बात को समझा जा सके के लोग कैसे सामाजिक जानकारियों को याद रखते हैं, उन पर प्रतिक्रिया करते हैं और उन्हें विकृत करते हैं। समूह गतिशीलता (group dynamics) का अध्ययन नेतृत्व, संचार और वे घटनाएँ जो कम से कम सूक्ष्मदर्शीय (microsocial) स्तर पर विकसित होती हैं, के अनुकूलन की क्षमता और प्रकृति के बारे में जानकारी प्रकट करता है। हाल ही वर्षों में, कई सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने अंतर्निहित (implicit) उपायों, मध्यस्थ (mediational) मॉडलों और व्यवहार के लेखांकन में व्यक्तियों और समाज की अंतर क्रिया पर बहुत अधिक रूचि दर्शायी है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986

शिक्षा का सामाजिक आधार और कार्य बच्चे का चहुँमुखी विकास है और यह
सच है कि अंत में पूर्ण रूप से विकसित यह बच्चा अपने समाज का ही अंग बनता।
उसकी सारी विकसित क्षमताओं का उपयोग समाज में ही होता है। बच्चों का
समाज में ही होता है तो उसे जीना भी समाज में और समाज के लिए ही है। इसलिए
पग-पग पर समाज के साथ एक तालमेल बनाकर रहना होता है। उसे समाज के
रिवाज सीखने होते हैं ताकि वह अपने समाज का सक्रिय सदस्य बन सके। इस
शिक्षा वास्तव में बच्चे के समाजीकरण की प्रक्रिया माना गया है। शिक्षा एक प्रक्रिया
और एक सामाजिक कार्य है जो कोई समाज अपने हित के लिए करत है।

* शिक्षा की प्रक्रिया के विभिन्न अंग निरंतर ही समाज के स्वरूप से प्रभावित
रहते हैं।

* शिक्षा की प्रक्रिया पर खर्च होने वाला खर्च समाज से ही आता है।

* शिक्षा की प्रक्रिया के तीनों अंग क्रमश: शिक्षक तथा पाठ्यक्रम, समाज का
अंग है।

* शिक्षा के स्वरूप में आने वाले परिवर्तन भी समाज की बदलती जरूरतों
निर्भर करते हैं।

अभ्यास के प्रश्न
(Study Questions)

1. संक्षेप नोट लिखें:
   (Write short note :)
   (i) सामाजिक विज्ञान और भूगोल
   (Social Science and Geography)
   (ii) सामाजिक विज्ञान और इतिहास
   (Social Science and History)
   (iii) सह-संबंध का अर्थ
   (Meaning of Co-relation)
   (iv) सामाजिक विज्ञान और अर्थशास्त्र
   (Social Science and Economics)
   (v) सामाजिक विज्ञान और गणित
   (Social Science and Mathematics)

ଓ ଓ ଓ

इकाई - 2
(Unit – 2)

शिक्षा विज्ञान और पाठ योजना और विषय-वस्तु तथा उसका शैक्षणिक विश्लेषण
(Pedagogy & Lesson Planning and Contents and its Pedagogical Analysis)

1. सामाजिक विज्ञानों की शब्दावली को समझना : सामाजिक संरचना, सामाजिक स्तरीकरण, समुदाय, राज्य, क्षेत्र और बाजार
   (Understanding Terminology of Social Sciences : Social Structure, Social Stratification, Community, State, Region & Market)
2. शैक्षणिक विश्लेषण का अर्थ, महत्व और इसके चरण
   (Meaning, Importance and Steps of Pedagogical Analysis)
3. निम्न विषयों पर शैक्षणिक विश्लेषण : भारत का संविधान, भारत का आकार, स्थिति और भौतिक विशेषताएं, भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन, जनसंख्या, समकालीन विश्व में लोकतंत्र, आपदा प्रबंधन, और फ्रांसीसी क्रांति
   (Pedagogical Analysis on the following Topics : Constitution of India ; Size, Location and Physical Features of India ; Indian Freedom Movement ; Population; Democracy in the Contemporary World ; Disaster Management and French Revolution)
4. सामाजिक विज्ञानों में पाठ योजना : आवश्यकता और महत्व, मूल तत्व और इसकी तैयारी
   (Lesson Planning in Social Sciences: Need & Importance, Basic Elements & its Preparation)

सामाजिक विज्ञानों की शब्दावली को समझना : सामाजिक संरचना, सामाजिक स्तरीकरण, समुदाय, राज्य, क्षेत्र और बाजार

CHAPTER 1

(Understanding Terminology of Social Sciences : Social Structure, Social Stratification, Community, State, Region & Market)

परिचय (Introduction)–मानविकी वे शैक्षणिक विषय हैं जिनमें प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों के मुख्यत: अनुभवजन्य दृष्टिकोणों के विपरीत, मुख्य रूप से विश्लेषणात्मक, आलोचनात्मक या काल्पनिक विधियों का इस्तेमाल कर मानवीय स्थिति का अध्ययन किया जाता है, हालांकि इन्हें अक्सर सामाजिक विज्ञान (सोशल साइंस) के रूप में माना जाता है। परंपरागत रूप से इतिहास के अध्ययन को मानविकी का एक भाग माना गया है। आधुनिक शिक्षा पद्धति में इतिहास को कभी-कभी सामाजिक विज्ञान के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। सामाजिक विज्ञानों की प्रमुख शब्दावलियों का वर्णन इस प्रकार है-

सामाजिक संरचना (Social Structure) : हर्बट स्पेंसर ने सामाजिक संरचना की तुलना मानव शरीर से की। उनका कहना था कि जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंग होते हैं वे सभी शारीरिक बनावट को बनाये रखते हैं उसी प्रकार समाज के भी विभिन्न अंग होते हैं जो समाज की बनावट को बनाये रखते हैं।

रेडिक्लफ ब्राउन का मत था कि जब कभी हम सामाजिक संरचना का उल्लेख करते हैं तो सामाजिक संरचना से हमारा अभिप्राय एक व्यवस्था से होता है जिसमें उस व्यवस्था व संरचना के विभिन्न तत्व एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। तत्वों के इस समीकरण और व्यवस्थित पद्धति को ही संरचना कहा जा सकता है। सामाजिक संरचना के संदर्भ में व्यक्ति को उस संरचना की इकाई मानते हैं। व्यक्ति सामाजिक संरचना में एक स्थान पर बने होते हैं। उनका एक व्यवस्था में स्थान ग्रहण करना एक सामाजिक प्रक्रिया के तहत होता है जिसके अंतगर्त कुछ प्रतिमानों के कारण उन्हें वह स्थान मिला होता है। इस प्रकार सामाजिक संरचना व्यक्ति का एक व्यवस्थित रूप है जिसमें उनके सामाजिक संबंध किसी खास संस्थात्मक मूल्यों से नियंत्रित होते हैं। अगर हम परिवार के बनावट की बात करें तो उस परिवार में रहने वाले लोगों की बात करेंगे जो लोग उस परिवार के

थे जिन्होंने सामाजिक संरचना के कुछ स्थायी तत्वों की बात की जिससे व्यक्ति के व्यवहार भी नियंत्रित होते हैं और उनके व्यवहार को नियंत्रित करने का एक संस्थात्मक आधार मिलता है।

टालसटाय पारसंस का कहना था कि सामाजिक व्यवस्था के द्वारा समाज की बनावट को समझा जा सकता है। उनका विचार था कि किसी भी सामाजिक संरचना को समझने के लिए उस समाज के मूल्यों का तथा उसके संस्थात्मक स्वरूप को समझना आवश्यक है। उनके अनुसार किसी भी सामाजिक व्यवस्था को चार प्रमुख सामाजिक कार्य स्थायी रूप से निष्पादित करने पड़ते हैं-

(क) अनुकूलन : इसके अनुसार भौतिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करना होता है।

(ख) लक्ष्य उपलब्धि : समाज में व्यक्ति व समूह के बीच लक्ष्य निर्धारित करना तथा उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए काम करना सम्मिलित होता है।

(ग) प्रतिमान अनुरक्षण : कार्यों को संपादित करने के लिए उत्साहवर्धन करना सम्मिलित होता है।

(घ) एकीकरण : आंतरिक सम्बन्ध स्थापित कर एकीकृत करना भी उस समाज का कर्त्तव्य हो जाता है।

इन सभी कार्यों को अच्छी तरह संपादित करने के लिए उपसमूह होते हैं। जिन उपसमूह को सामाजिक व्यवस्था से जुड़कर काम करना होता है और ये सभी कार्य एक संस्थात्मक तरीके से निष्पादित बातें हैं। अनुकूलन का कार्य निष्पादित होता है आर्थिक व्यवस्था के द्वारा जो सामाजिक व्यवस्था के अंग या महत्वपूर्ण इकाई के रूप में कार्य करता है। इसी प्रकार लक्ष्य उपलब्धि का कार्य राजनैतिक व्यवस्था से होता है जो सामाजिक व्यवस्था के एक अंग या महत्वपूर्ण इकाई के रूप में यह कार्य करता है। प्रतिमान अनुरक्षण के कार्य का निष्पादन स्वजन अर्थात् नातेदारी द्वारा होता है। एकीकरण का कार्य सांस्कृतिक व्यवस्था तथा सामुदायिक संगठन के द्वारा निष्पादित होता है।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सामाजिक संरचना की अवधारणा को एक महत्वपूर्ण अवधारणा तथा सिद्धान्त से जोड़कर देखा जा सकता है। सामाजिक संरचना की अवधारणा को संघर्ष के सिद्धान्त से जोड़कर भी देखा जाता है।

सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification) : सामाजिक स्तरीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्तियों के समूहों को उनकी प्रतिष्ठा, संपत्ति और शक्ति की मात्रा के सापेक्ष पदानुक्रम में विभिन्न श्रेणियों में उच्च से निम्न रूप में स्तरीकृत किया जाता है।

कुछ संबंधों से जुड़े होते हैं। उस परिवार के हर सदस्य को एक खास भूमिका को करना पड़ता है। इस प्रकार एक संगठन में सभी व्यक्तियों को अपनी-अपनी भू अदा करने के लिए एक-दूसरे से जुड़ा होना आवश्यक है।

एड एफ नाडेल ने भी संरचना शब्द की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए इस व्यवस्थित समग्र के अंग से जोड़कर देखा है जिसमें उस व्यवस्था से सभी तत्व प दूसरे से जुड़े होते हैं। उनके अनुसार समाज में तीन तत्व सदैव मौजूद रहते हैं-

(क) मानव समूह

(ख) संस्थात्मक प्रतिमान (पैटर्न) - जिसके कारण किसी समूह के सदस्य प दूसरे से अंत: संबंध के कारण संपर्क में आते हैं।

(ग) इन अंत: संबंधों का संस्थात्मक स्वरूप ये सभी प्रतिमान व नियम व्यक्ति स्थिति और भूमिका को निर्धारित करते हैं। सामाजिक संरचना की व्याख्या करते हुए कु समाजशास्त्रियों ने इनके स्थायी संबंधों की बात को भी महत्व दिया है। उनका मानना कि किसी भी बनावट से हमारा तात्पर्य उस बनावट को बनाने वाले उन अंगों से है स्थायी रूप से उस बनावट को बनाये रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

इस विचार को प्रकट करते हुए **हैरी एम जानसन** ने भूमिका तथा उपसमूह के संरचनात्मक सबंध की परस्पर आत्मनिर्भरता की बात पर बल दिया है। प्रतिमानों के स्वरूप की चर्चा करते हुए उन्होंने निम्न प्रतिमानों का उल्लेख किया है :

(क) प्रतिमान जो क्रियाओं के अपेक्षित भूमिका का वर्णन करते हैं जिसमें परिवार की भूमिका को सकारात्मक माना जाता है और इस प्रकार पिता का अपने पुत्र के प्रति वफादारी दिखाना इसका एक उदाहरण है।

(ख) दूसरे प्रतिमान को नियंत्रात्मक प्रतिमान कहा जा सकता है जिसके कारण प्रतिमान द्वारा व्यक्ति के व्यवहार नियंत्रित होते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामाजिक संरचना की व्याख्या करते हुए अधिकांश समाजशास्त्रियों ने तीन सैद्धान्तिक पक्षों को उजागर किया है।

पहली श्रेणी में हम उन सैद्धान्तिक विचार की बात कर सकते हैं जिसमें सामाजिक संरचना का एक ऐसा स्वरूप होता है जिसे देखा व परखा जा सकता है।

दूसरी श्रेणी में उन समाजशास्त्रीय रचनाओं की बात की जाती है जिसमें समाज की बनावट का अमूर्त स्वरूप होता है जिसे देखा व परखा नहीं जा सकता है।

तीसरी प्रकार के विचार को कुछ समाजशास्त्रियों ने सैद्धान्तिक रूप से उभारा है जिसमें सामाजिक संरचना के संबंधों को स्थायित्व मिलता है। संबंधों को एक वास्तविक आधार मिलता है। **रैडक्लिफ ब्राउन** तथा **एस एफ नाडेल** दोनों इस विचार के हिमायती

वर्ग स्तरीकरण विश्व भर में मौजूद है और उनके पैदा होने के अनेक कारण है
पूंजीपति और श्रमिक वर्ग औद्योगीकरण की देन है, धन की विभिन्न अवस्थाएं
मध्यम और गरीब वर्ग को जन्म देती हैं।

सामाजिक स्तरीकरण को परिभाषित करते हुए **बर्जर तथा बर्जर** का कहना था
सामाजिक स्तरीकरण से समाज में व्यक्ति की एक दूसरे से भिन्न पहचान होती है
सामाजिक वर्गीकरण के सिद्धान्त पर उस समाज में टिका होता है। सामाजिक स्तरीकरण
लोगों को श्रेणीबद्ध करने की प्रक्रिया है। व्यक्ति जिन विभिन्न श्रेणियों में बँटे होते हैं उन्हें
स्तर कहते हैं।

किंगस्ले डेविस ने कहा है जब हम जाति, वर्ग तथा सामाजिक स्तरीकरण की बात
सोचते हैं तो हमारे मस्तिष्क में उन समूहों का ध्यान आता है जिसके सदस्य समाज में
अपना एक स्थान रखते हैं। उसके आधार पर उन्हें कुछ प्रतिष्ठा मिली होती है। इसके
आधार पर एक समूह की स्थिति दूसरे समूह से वैधानिक दृष्टि से अलग मानी जाती है
और वह सामाजिक स्तरीकरण का आधार बन जाती है। जब हम वर्ग पर आधारित
समाज की बात करते हैं तो यह कहा जा सकता है कि वर्ग-विहीन समाज की कल्पना
नहीं की जा सकती है। यह कहा जाता है कि जनजातीय समाज में कोई वर्ग नहीं होता।
उनका सामाजिक संगठन उम्र, लिंग तथा नातेदारी पर आधारित होता है परंतु वह समाज
में जब जटिल हो जाता है और कुछ लोग संपत्ति अधिक कमाकर अपना स्थान ऊंचा बना
लेते हैं तो उस समाज में भी स्तरीकरण की प्रणाली दृष्टिगोचर होने लगती है।

टाम बाटमोर का कहना था समाज में वर्ग तथा श्रेणी का बँटवारा सत्ता और
प्रतिष्ठा के आधार पर क्रमबद्ध स्वरूप किसी भी समाज का सार्वभौमिक कारण है जिसमें
सभी सामाजिक वैज्ञानिकों को प्रभावित किया है।

पेंगुयिन शब्दकोष ने सामाजिक स्तरीकरण की परिभाषा देते हुए कहा है कि जब
लोगों को असमानता के कुछ पहलुओं को ध्यान में रखकर श्रेणीबद्ध किया जाता है तो
इस प्रकार की सामाजिक विभिन्नता को सामाजिक स्तरीकरण कहा जाता है। इस प्रकार
यह कहा जा सकता है कि सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया कोई अमूर्त अवधारणा नहीं
है वरन् यह एक वास्तविक सामाजिक स्थिति है जिसके कुछ ऐसे लक्षण हैं जो एक
व्यक्ति, समूह, समाज, संस्कृति के लोगों को दूसरे व्यक्ति, समूह, समाज तथा संस्कृति
से अलग कर उन्हें एक ऊँची तथा निम्न श्रेणी सोपान के अंतर्गत सामाजिक स्थान देते हैं।

सामाजिक स्तरीकरण के मापदंड व आधार (Criteria and the Basis of Social stratification) : सामाजिक स्तरीकरण के मापदंड व आधार सभी समाज में
अलग-अलग होते हैं परंतु फिर भी यहाँ कुछ मापदंडों के आधार पर स्तरीकरण की

प्रक्रिया को एक सार्वभौमिक अवधारणा के रूप में समझने की कोशिश की गयी है।
स्तरीकरण के संदर्भ में निम्न उपागम की चर्चा की जाती है-

(क) प्रतिष्ठात्मक उपागम (Reputational Approach)

(ख) आत्मनिष्ठ उपागम (Subjective Approach)

(ग) वस्तुनिष्ठ उपागम (Objective Approach)

ब्रूम तथा सेल्जनिक ने उपर्युक्त लिखे तीनों उपागम के द्वारा स्तरीकरण को
समझाया है। उनका यह मानना था कि स्तरीकरण का अध्ययन इन तीनों उपागम को एक
विधि मानकर किया जा सकता है।

प्रतिष्ठात्मक उपागम में स्तरीकरण का अध्ययन करते हुए यह पूछा जा सकता है
कि लोग अपने आप को कैसे वर्गीकृत करते हैं ? क्या मापदंड प्रयोग में लाते हैं ? अपनी
स्थिति का आंकलन करने के लिए, उन श्रेणी को वो कैसे देखते हैं और उन मापदंड को
कैसे क्रमबद्ध करते हैं ?

आत्मनिष्ठ उपागम में भी लोगों से यह पूछा जाता है कि वो अपने आपको दूसरे
व्यक्ति या समूह की तुलना में स्वयं को या जिस समूह के हिस्से हैं उसे दूसरे के मुकाबले
कैसे आंकलन करते हैं। समाजशास्त्र में यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि आप किस वर्ग
से संबंधित हैं और प्रश्न के जवाब के आधार पर शोधकर्ता उस जवाब का आत्मनिष्ठ
तरीके से विश्लेषण कर यह जानने की कोशिश कर सकता है कि समाज में वह व्यक्ति,
समूह अपने आप को कौन सा स्थान देते हैं।

वस्तुनिष्ठ उपागम में शोधकर्ता निरीक्षण के द्वारा वस्तुनिष्ठ तरीके से यह तय करने
की कोशिश करता है कि उस व्यक्ति का क्या स्थान है। **कार्ल मार्क्स** ने इस वस्तुनिष्ठ
तरीके का इस्तेमाल कर यह आंकलन करने की कोशिश की, कि उत्पादन की प्रक्रिया में
जिस व्यक्ति की जो भूमिका होती है उसके आधार पर उसके वर्ग स्थान का आंकलन
किया जा सकता है।

मार्क्स के अलावा जर्मनी के समाजशास्त्र **मैक्स वैबर** ने भी तीन मापदंडों को
महत्वपूर्ण मानते हुए उसे एक प्रमुख आधार मानकर समाज का स्तरीकरण किया-

(क) आर्थिक संपत्ति तथा आर्थिक लाभ के अवसर पर नियंत्रण

(ख) राजनैतिक सत्ता के ऊपर नियंत्रण

(ग) सामाजिक स्थान व प्रतिष्ठा के ऊपर नियंत्रण

मैक्स वैबर का यह मानना था कि उपर्युक्त तीनों आधार को एक दूसरे से अलग
करके देखना शायद संभव न हो इसलिए इन तीनों के सम्मिलित स्वरूप को मिलाकर
देखना चाहिए ताकि व्यक्ति के स्थान का सही आंकलन किया जा सके। निस्संदेह इन

तीनों आधारों का अपना विशिष्ट स्थान है और ये सभी अलग-अलग तरीके से व्यक्ति के व्यवहार तथा स्थान में निर्धारक तत्व के रूप में देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्रियों में इस बात को लेकर मतभेद हो सकता है कि स्तरीकरण का अध्ययन कैसे किया जाए ? परंतु सामाजिक स्तरीकरण एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है, इस बात को सभी स्वीकार करते हैं और इसे सभी मानते हैं कि प्रत्येक समाज में एक व्यक्ति या समूह को ऊँचा व नीचा स्थान देकर उसकी स्थिति का मूल्यांकन अवश्य किया जाता है। सभी समाज स्तरीकृत समाज हैं। परंतु ये सभी स्तरीकृत समाज एक दूसरे से काफी अलग हो सकते हैं क्योंकि उन सभी में स्तरीकरण का मापदंड अलग हो सकता है।

सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था की विभिन्न विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है परंतु प्रत्येक समाज में ये विशेषताएं विभिन्न प्रकार से कार्य करती हैं और इसके कारण उनकी क्रियात्मक क्षमताओं का अध्ययन भी उन समाजों की विशिष्ट परिस्थिति के संदर्भ में ही करना उचित होगा। उनकी विशेषताओं में सामाजिक वर्ग, प्रजाति, लिंग, जन्म तथा उम्र को आधार बनाकर अध्ययन किया गया है। ये सभी तत्व अपना खास महत्व उस समाज में रखते हैं। उदाहरण के लिए यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में जन्म से ही जाति को कुछ विशिष्ट स्थान मिल जाते हैं। अगर एक व्यक्ति का जन्म ब्राह्मण परिवार में होता है तो उसका सामाजिक स्थान ऊँचा हो जाता है। उसी प्रकार अगर उसका जन्म निम्न जाति के हरिजन परिवार में होता है तो उसका स्थान नीचा माना जाता है। इसी प्रकार स्त्री का स्थान पुरुषों के अपेक्षाकृत निम्न स्तर का माना जाता है। जबकि जनजातीय समाज में उम्र के अनुसार लोगों को उच्च स्थान मिले होते हैं और वहाँ स्त्री का निम्न स्थान नहीं होता है। इसलिए एक तत्व अगर किसी समाज में स्तरीकरण के मुख्य आधार बन जाते हैं तो वही तत्व दूसरे समाज में ज्यादा महत्व नहीं रखते। परंतु इन सब के बावजूद भी सामाजिक स्तरीकरण के कुछ ऐसे आधारभूत तत्व हैं जिन्हें संरचनात्मक आधार कहा जा सकता है। ये तत्व समाज के सार्वभौमिक तथा विशिष्ट तत्व माने जाते हैं। इन आधारभूत तत्वों के बारे में समाजशास्त्रियों में एक आम सहमति भी पायी जाती है। इसलिए सभी समाजशास्त्रियों ने स्तरीकरण के इन स्वरूपों तथा आधार का विशेष रूप से उल्लेख भी किया है। ये मुख्य आधारभूत तत्व हैं -

(1) वर्ग पर आधारित स्तरीकरण (Class as the Basis of Stratification)

(2) जाति पर आधारित स्तरीकरण (Caste as the Basis of Stratification)

(3) शक्ति पर आधारित स्तरीकरण (Power as the Basis of Statification)

वर्ग पर आधारित स्तरीकरण : समाजशास्त्रियों ने वर्ग को सामाजिक स्तरीकरण का एक प्रमुख आधार माना है। इसके साथ जुड़े सैद्धान्तिक दृष्टिकोण के प्रतिपादकों में

कार्ल मार्क्स का नाम विशेष रूप से लिया जाता है परंतु उनके साथ ही **मैक्स वैबर** का नाम भी उल्लेखनीय है, क्योंकि उन्होंने भी वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका का वर्णन किया है। इन दोनों समाजशास्त्रियों के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण एक दूसरे से काफी अलग हैं। अगर कोई समानता इनके अध्ययन में है तो सिर्फ यह कि दोनों ने पूंजीवादी समाज के संदर्भ में औद्योगिक समाज के स्वरूपों का अध्ययन किया है। मार्क्स ने वर्ग की व्याख्या आर्थिक संदर्भ में की है। वे मानते हैं कि आज तक मानव सभ्यता का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है। अपनी छोटी सी पुस्तक **कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो** में उन्होंने दो वर्गों की महत्वपूर्ण भूमिका का वर्णन किया है। ये दो वर्ग हैं-

(क) बुर्जुआ या पूंजीपति वर्ग (Bourgeoisie or Capitalist)

(ख) प्रोलेटैरिएट या मजदूर वर्ग (Proletrat or Worker)

उन्होंने वर्ग का वर्णन उत्पादन के साधनों पर उनके अधिकार के संदर्भ में किया है। उनकी यह मान्यता थी कि उत्पादन के साधनों में परिवर्तन के साथ-साथ दो वर्ग सदैव बने रहते हैं-एक वर्ग तो वह होता है जिसे उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण होता है और दूसरा वह जो इसके स्वामित्व से वंचित रहता है। औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में औद्योगिक समाज में दो वर्ग स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं, एक वर्ग पूंजीपति वर्ग कहलाता है तो दूसरा मजदूर वर्ग। आर्थिक परिस्थितियां एक दूसरे के प्रतिकूल होती हैं। जहाँ पूजीपति वर्ग उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार जमा लेने की वजह से शोषक वर्ग की भूमिका निभाता है तो वही दूसरी और मजदूर वर्ग होता है जो उत्पादन के साधनों से वंचित रहता है तथा उसका शोषण पूंजीपति वर्ग करता है। इन दोनों की स्थिति परस्पर एक दूसरे के विपरीत होती हैं और इन दोनों के परस्पर विरोधी आर्थिक स्वार्थ के कारण इन दोनों में निरंतर संघर्ष की स्थिति बनी होती है। वास्तव में पूंजीवादी व्यवस्था में इन दोनों वर्गों के बीच आर्थिक स्वार्थ के भिन्न होते हैं। वर्ग चेतना पर आधारित वर्ग संघर्ष की अवधारणा के द्वारा **कार्ल मार्क्स** ने सामाजिक क्रान्ति की बात की है। स्तरीकरण के नजरिये से देखा जाये तो पूंजीपति वर्ग तथा मजदूर वर्ग दोनों के सामाजिक स्तर परस्पर अलग-अलग हैं। पूंजीपति वर्ग अपने अउाप को ऊँचा मानकर सदैव अपनी स्थिति मजबूत करता है वहीं दूसरी ओर मजदूर वर्ग अपने स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए हमेशा अपनी स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए पूंजीपति द्वारा कमो गये मुनाफे में अपना हिस्सा माँगता है।

वेबर ने भी समाज में वर्ग के आधार पर आर्थिक स्तर पर मतभेद देखा। वेबर का कहना था कि वर्गों के उन्नति के अवसर परस्पर अलग-अलग होते हैं। जहाँ मार्क्स ने मुख्य रूप से दो वर्गों की बात की है वहीं वेबर ने निम्न चार वर्गों की बात की है-

(क) धनी वर्ग

(ख) बुद्धिजीवी, प्रशासकीय तथा प्रबंधन वर्ग

(ग) परंपरागत व्यापारी वर्ग

(घ) मजदूर वर्ग

वेबर ने सामाजिक स्तरीकरण के संदर्भ में वर्ग के साथ-साथ एक और विशे को प्रमुख बताया, जो था सामाजिक सम्मान या सामाजिक स्थिति। इसलिए वेबर ने के स्थान पर स्थिति समूह (Status group) शब्द का प्रयोग किया है। वर्ग एक बंद स न होकर ज्यादा खुला समूह है। **वेबर** के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ग पूर्णतया एक आर्थिक इकाई न मानकर उसे औद्योगिक समाज से जोड़कर देखा जा चाहिए।

टी एच मार्शल ने भी स्थिति समूह की व्याख्या व्यक्तिगत स्थिति के आधार पर की है। व्यवसाय की भिन्नता को ध्यान में रखकर भी स्थिति समूह का विवेचन किया जा है। कुछ समाजशास्त्रियों ने सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility) का अध्ययन उनके व्यवसायिक स्थिति को ध्यान में रखकर किया है।

वि पैरेटो के अनुसार अभिजात्य वर्ग (Elite group) की दो श्रेणियों का वर्णन किया जा सकता है जो निम्न हैं-

(क) शासक अभिजात्य वर्ग (Governing Elite)

(ख) शासित अभिजात्य वर्ग (Non-governing Elite)

शासक अभिजात्य वर्ग की सामाजिक स्थिति गैर अभिजात्य वर्ग के सामाजिक स्थिति से बिल्कुल भिन्न होता है। एक का सामाजिक स्तरीकरण में स्थान ऊँचा होता है जबकि दूसरे का नीचा। परंतु **पैरेटो** का मानना था कि दोनों की स्थिति में सदैव बदलाव आता रहता है। उन्होंने चक्रीय सिद्धान्त के रूप में इसका वर्णन किया है। आज जो शासक अभिजात्य वर्ग है उनकी स्थिति मजबूत है पर सदैव उसकी स्थिति मजबूत नहीं रहेगी क्योंकि जो वर्ग सत्ता में नहीं आ पाते हैं वे सत्ता में बने रहने वालों के ऊपर पूरी निगरानी रखते हैं और उनके कमजोर होते ही उन पर हावी हो जाते हैं। उनके सिद्धान्त को 'अभिजात्य वर्ग का चक्रण सिद्धान्त' (Circulation of Elite) कहा जाता है।

जाति पर आधारित स्तरीकरण : जाति पर आधारित स्तरीकरण को सामाजिक स्थिति को समझने का ही एक तत्व माना जाता है। जब स्थिति पूर्णतः पूर्व निर्धारित हो जाती है, जिससे व्यक्ति जहाँ जन्म लेता है उससे उसकी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन लाना सर्वथा असंभव हो तो ऐसी स्थिति में वर्ग जाति का रूप ले लेता है।

मेकाईवर तथा पेज के इस कथन का समर्थन करते हुए **किंगस्ले डेविस** का यह मानना था कि जाति के आधार पर जब स्तरीकरण के स्वरूप की बात की जाती है तो दो

प्रकार की स्थितियों का सहज रूप से स्मरण हो आता है और ये दोनों स्थितियां हैं-प्रदत्त स्थिति (Ascribed Status) तथा अर्जित स्थिति (Achieved Status)। स्तरीकरण के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि जाति शब्द के द्वारा जो स्थिति बनती है उसे प्रदत्त स्थिति कहा जाता है क्योंकि इसके आधार पर गतिशीलता नहीं होती है और इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसके आधार पर गतिशीलता नहीं होती है और इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता जबकि वर्ग से जो स्थिति व्यक्ति को मिलती है उसे बदला जा सकता है और इसलिए वर्ग में ज्यादा लचीलापन होता है। इसलिए जाति की व्याख्या करते हुए समाजशास्त्र इसे बंद समूह की संज्ञा देते हैं जहाँ व्यक्ति की स्थिति स्थायी रूप से निश्चित होती है।

किंग्सले डेविस ने जाति की व्याख्या करते हुए यह माना है कि जाति के द्वारा असमानता विरासत के रूप में मिलती है। इस प्रकार उनका मानना था कि दो प्रकार की सामाजिक व्यवस्था की बात की जा सकती है। एक वह असमानता जो उत्तराधिकार में जाति के द्वारा मिलती है और दूसरा वह जो समानता के आधार पर समान अवसर से जुड़ी होती है और दूसरे में व्यक्ति वह स्थिति प्राप्त करता है जो उसके पिता की हो भी सकती है या नहीं भी। व्यक्ति मेहनत कर अपने पिता की स्थिति से अपने आप को और भी ऊपर उठाने की संभावना पैदा करता है। जाति पर आधारित समाज की निम्न विशेषताओं का उल्लेख करना यहाँ उचित है-

(1) जाति में सदस्यता वंशानुक्रम पर निर्भर करती है। बचपन से ही जन्म के बाद उसे वह स्थान मिल जाता है।

(2) इस प्रकार की विरासत में मिली सदस्यता निर्धारित तथा स्थायी होती है क्योंकि व्यक्ति चाहकर भी इसे छोड़ नहीं सकता है।

(3) यहाँ विवाह के लिए उसके पास अंतर्विवाही (Endogammy) विकल्प के अलावा और कोई दूसरा विकल्प नहीं होता।

(4) खाने-पीने में उसकी पसंद सीमित होती है अर्थात् किसी और के हाथ का बना खाना वह खा नहीं सकता।

(5) जाति द्वारा उसे जो पहचान व नाम मिलता है उसे वह चाहकर भी नहीं बदल सकता।

(6) जाति के लोग परंपरागत पेशे से बँधे होते हैं।

(7) प्रत्येक जाति की अपनी प्रतिष्ठा व सम्मान होता है जो उस जाति से स्थापित होती है।

(8) जाति के आधार पर न केवल भोजन, बल्कि स्थान भी पवित्र तथा
जैसी धारणा से जुड़े होते हैं।

(9) जाति के लोग भी उप जाति के आधार पर बंटे होते हैं। ब्राह्मण जाति में
उप-जाति होती हैं जिनकी सामाजिक स्थिति एक जैसी नहीं होती।

जहाँ तक वर्ग और जाति पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण का प्रश्न है
मान्यता है कि जाति तथा वर्ग को लेकर जो पहले संकीर्ण दृष्टिकोण था उसमें
बदलाव आया है। आज जाति का जो स्वरूप हमें देखने को मिलता है उसमें
बदलाव आया है। **के एम शर्मा** का कहना है कि वर्ग पर आधारित अंतर, जाति में
मात्रा में पाया जाता है। गाँव में रहने वाले लोग कभी-कभी भारतीय वर्ग संरचना
प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए उनका मत था कि जाति और वर्ग को एक दूसरे
विरोधी स्वरूप नहीं समझना चाहिए। ये दोनों भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अविच्छ
पहलू हैं और इन दोनों के बीच गहरा संबंध है जिसके निरंतरता और परिवर्तित स्व
का अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

जाति और वर्ग के बीच में संबंध की व्याख्या करते हुए **योगेन्द्र सिंह** ने कहा है कि
जाति तथा वर्ग भारतीय समाज के संरचनात्मक तत्व का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। वर्ग
जाति के ढांचे के अंतर्गत ही कार्य करते हैं।

एम एन श्रीनिवास ने भी इस बात पर ज्यादा बल दिया है कि जाति तथा वर्ग के
बीच के संबंध को केवल ग्रामीण तथा शहरी समाज और शिक्षा से जुड़े सुविधाओं को
प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए। इसमें नौकरशाही, मजदूर युनियन,
राजनीतिक दलों, शहरीकरण तथा आर्थिक विकास के क्षेत्र में भी देखा जाना चाहिए तभी
इसके परिवर्तित स्वरूप तथा निरंतरता को समझा जा सकता है। आज आधुनिकीकरण
की प्रक्रिया में जाति का आधुनिक स्वरूप एक समिति के रूप में उभरने लगा है और
जाति अपने आप को परंपरागत संरचनाओं तथा सांस्कृतिक तत्वों तक ही सीमित रहने के
बजाय आधुनिक युग के नये उभरते समूह तथा समितियों का भी अभिन्न अंग बनती जा
रही है और इस प्रकार नये संबंध विकसित हो रहे हैं और जाति तथा वर्ग के आपसी
संबंध काफी गहरे हो गये हैं इसलिए इनके इस सम्मिलित स्वरूप की पहचान को नये
तरीके से अध्ययन करने की जरूरत है।

समुदाय (Community) : एक निश्चित भू-भाग में निवास करने वाले सामाजिक/आर्थिक/सांस्कृतिक अथवा धार्मिक समूह जो सभी सदस्यों के सहयोग से अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करते हैं, समुदाय कहा जाता है। समुदाय का अर्थ - समुदाय को अंग्रेज़ी भाषा में Community कहते हैं जो "Com" तथा "Munis" दो शब्दों से मिलकर बनता है। Com का अर्थ है - एक साथ तथा "Munis" का अर्थ है "सेवा

करना"। इस प्रकार कम्युनिटी अथवा समुदाय का अर्थ व्यक्तियों के उस समूह से है जिसमें वे रहते हैं अथवा समुदाय दो या दो व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो एकता अथवा समुदायिक भावना के जागृत हो जाने से किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में सामान्य जीवन की सामान्य नियमों द्वारा व्यतीत करने के लिए स्वत: ही विकसित हो जाती है। इस प्रकार समुदाय के निर्माण एवं स्थायित्व की दृष्टि से दो या दो से अधिक व्यक्ति, निश्चित भौगोलिक क्षेत्र समुदायिक भावना सामान्य जीवन तथा नियमों आदि तत्वों का होना परम आवश्यक है। समुदाय का क्षेत्र छोटा से छोटा भी हो सकता है और बड़े से बड़ा भी। सामान्यता: समुदाय का क्षेत्र उसके समुदायों की आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक समानताओं पर निर्भर करता है। अत: एक गाँव, नगर अथवा राष्ट्र में दो या दो से अधिक जितने भी व्यक्ति एकता के सूत्र में बढ़कर सामान्य उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सामान्य जीवन व्यतीत करते हो, सभी मिलकर एक समुदाय का निर्माण करते हैं।

राज्य (State) : राज्य उस संगठित इकाई को कहते हैं जो एक शासन (सरकार) के अधीन हो। राज्य संप्रभुता सम्पन्न (Sovereign) हो सकते हैं। इसके अलावा किसी शासकीय इकाई या उसके किसी प्रभाग को भी 'राज्य' कहते हैं, जैसे भारत के प्रदेशों को भी 'राज्य' कहते हैं। राज्य आधुनिक विश्व की अनिवार्य सच्चाई है। दुनिया के अधिकांश लोग किसी-न-किसी राज्य के नागरिक हैं। जो लोग किसी राज्य के नागरिक नहीं है, उनके लिए वर्तमान विश्व व्यवस्था में अपना अस्तित्व बचाये रखना काफी कठिन है। वास्तव में, 'राज्य' शब्द का उपयोग तीन अलग-अलग तरीके से किया जा सकता है। पहला, इसे एक ऐतिहासिक सत्ता माना जा सकता है, दूसरा इसे एक दार्शनिक विचार अर्थात् मानवीय समाज के स्थाई रूप के तौर पर देखा जा सकता है, और तीसरा, इसे एक आधुनिक परिघटना के रूप में देखा जा सकता है।

भारतीय राजनीतिक चिन्तन में राज्य के सात अंग गिनाये जाते हैं-राजा या स्वामी, मंत्री या अमात्य, सुहृद, देश, कोष, दुर्ग और सेना।

मैकियावेली की राज्य की अवधारणा :

कई राजनीतिक दार्शनिकों की मान्यता है कि सबसे पहले **निकोलो मैकियावेली** के लेखन में आधुनिक अर्थों में राज्य के प्रयोग को देखा जा सकता है। 1532 में प्रकाशित अपनी विख्यात **रचना द प्रिंस** में उन्होंने 'स्टेटों' (या राज्य) शब्द का प्रयोग भू-क्षेत्रीय सम्प्रभु सरकार का वर्णन करने के लिए किया। मैकियावेली की एक अन्य रचना 'द **डिस्कोर्सिज़**' की विषय-वस्तु अलग है, लेकिन बुनियादी वैचारिक आधार उसका भी द प्रिंस जैसा ही है। मैकियावेली के अनुसार राजशाही में केवल प्रिंस ही स्वाधीन है, पर गणराज्य में हर व्यक्ति प्रिंस है। उसे अपनी सुरक्षा, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति बचाने के लिए वैसे ही कौशल अपनाने का अधिकार है। मैकियावेली के अनुसार गणराज्य में प्रिंस जैसी

ख़ूबियों को सामूहिक रूप से विकसित करने की ज़रूरत है, और ये ख़ूबियाँ मित्रता और परोपकार जैसे पारम्परिक सद्‌गुणों के आधार पर नहीं विकसित हो सकतीं। मैकियावेली मानते थे कि राजशाही के मुकाबले गणराज्य अधिक दक्षता से काम कर सकेगा, उसकी प्रतिरक्षा की अधिक क्षमता होगी और वह युद्ध के द्वारा अपनी सीमाओं का अधिक कुशलता से विस्तार कर सकेगा। मैकियावेली के अनुसार यह सब करने की प्रक्रिया से ही शक्तिशाली, अदम्य और आत्म-निर्भर व्यक्तियों की रचना हो सकेगी।

ऐसे गणराज्यों को निरंकुशता में बदलने से कैसे रोका जा सकेगा ? मैकियावेली इसके लिए दो शर्तें पेश करते हैं : हर गणराज्य को टिके रहने के लिए ऐसा प्रबंध करना होगा जिसमें हर व्यक्ति दूसरे के साथ सृजनात्मक ढंग से होड़ कर सके, किसी एक व्यक्ति को इतनी शक्ति अर्जित करने से रोकना होगा कि वह दूसरों पर प्रभुत्व न जमा सके। उच्च-कुलीन अभिजनों या व्यापारिक प्रभुवर्ग और आम जनता के बीच प्रभुत्व को लेकर संघर्ष होता रहेगा जिनके गर्भ से गणराज्य को नयी ऊर्जा मिलेगी और अच्छे कानून का जन्म होगा, बशर्ते बेहतर राजनीतिक संस्थाओं के जरिये उन संघर्षों को काबू में रखा जा सके। कानून ऐसे होने चाहिए जिनकी जानकारी लोगों के सामने साफ कर सके कि गणराज्य में वे क्या-क्या बेखटके कर सकते हैं, और क्या करने पर उन्हें दण्ड भोगना होगा। आर्थिक समृद्धि की इजाजत होनी चाहिए, पर निजी स्तर पर अत्यधिक सम्पत्ति अर्जित करने पर कानूनन रोक होनी चाहिए। **फ्लोरेंस** की प्रतिरक्षा करने के अपने अनुभव के आधार पर मैकियावेली ने निष्कर्ष निकाला था कि गणराज्य को आक्रमणों से बचाने के लिए नागरिकों की सेना होना चाहिए।

क्वेंटिन स्किनर मानते थे कि मैकियावेली ने जब राज्य की चर्चा की तो वे एक प्रिंस के राज्य की बात कर रहे थे। युरोपीय आधुनिकता के शुरुआती दौर में चर्च और राजा दोनों के पास ही राजनीतिक शक्ति होती थी और दोनों के पास अपनी-अपनी सेनाएँ भी होती थीं। इससे चर्च और राजा के बीच युद्ध की भी सम्भावना बनी रहती थी। 1648 में तीस वर्षीय युद्ध के बाद वेस्टफ़ेलिया की संधि हुई। इसने चर्च की शक्ति कम की और राजा को उसके अपने क्षेत्र में प्राधिकार दिया। इसने अंतराष्ट्रीय स्तर पर सम्प्रभु राज्यों के अस्तित्व को स्वीकार किया।

हॉब्स की राज्य की अवधारणा :

दार्शनिक स्तर पर समाज के लिए राज्य की अनिवार्यता स्थापित करने का श्रेय सत्रहवीं सदी के विचारक **थॉमस हॉब्स और उनकी रचना लेवायथन** को जाता है। हॉब्स इस भौतिकवादी और आनंदवादी विचार के प्रतिपादक थे कि मनुष्य का उद्देश्य अधिकतम आनंद और कम से कम पीड़ा भोगना है। अगर दूसरे के आनंद में मनुष्य को सुख मिल सकता है, तो हॉब्स के अनुसार वह परोपकार के लिए भी सक्षम है। लेकिन,

अगर संसाधन कम हुए या किसी किस्म का भय हुआ, तो मनुष्य आत्मकेन्द्रित और तात्कालिक आग्रहों के अधीन हो कर परोपकार को मुल्तवी कर देगा। ऐसी स्थिति में उसे अपने ऊपर किसी सरकार का नियंत्रण चाहिए, वरना वह अपने सुख को अधिकतम और दुःख को न्यूनतम करने का अबाध प्रयास करते हुए सभ्यता और संस्कृति से हीन प्राकृतिक अवस्था में पहुंच जायेगा। जो कुछ उसके पास है, उसे खोने के डर से मनुष्य शक्ति के एक मुकाम से दूसरे मुकाम तक पहुँचने की कोशिशों में लगा रहेगा जिसका अंत केवल उसकी मृत्यु से ही हो सकेगा। अगर मज़बूत राज्य ने उसकी इन कोशिशों को संयमित न किया तो मानव जाति प्राकृतिक अवस्था में पहुंच जायेगी जहाँ हर व्यक्ति दूसरे के दुश्मन के रूप में परस्पर विनाशकारी गतिविधियों में लगा होगा। मनुष्य को नियंत्रित करने वाला यही परम शक्तिशाली और सर्वव्यापी राज्य हॉब्स के शब्दों में लेवायथन है। तर्कों की यह शृंखला हॉब्स को दिखाती है कि मनुष्य एक सामाजिक समझौते के तहत एक समाज रचता है जिसमें हर कोई अपना हित साधना चाहता है और इसीलिए दूसरों से करार करता है कि वह किसी दूसरे के हित पर चोट नहीं करेगा बशर्ते बदले में उसके हित पर चोट न की जाए। हॉब्स का विचार था कि इस समझौते का उल्लंघन न हो, इसलिए एक सम्प्रभु सत्ता की ज़रूरत पड़ेगी ताकि सार्वजनिक शांति और सुरक्षा की गारंटी की जा सके। यह सम्प्रभु केवल ताकत के डर से ही अपनी सत्ता लागू नहीं करेगा। हॉब्स ने लेवायथन के दूसरे अध्याय 'ऑफ द कॉमनवेल्थ' में कई तरह के सम्भव संवैधानिक रूपों की चर्चा की है। लेकिन, सिद्धान्ततः हॉब्स अविभाजित सत्ता के पक्ष में नज़र आते हैं। इसके लिए उन्हें राजशाहीनुमा सत्ता की वकालत करने में भी कोई हर्ज नहीं लगता।

हॉब्स की निगाह में यह सम्प्रभु निरंकुश नहीं होगा क्योंकि स्वयं को कायम रखने लायक परिस्थितियां सुनिश्चित करने के लिए उसे अपनी प्रजा को एक हद तक (आतंरिक खतरे और बाह्य अशांति से उसे सुरक्षित रखने के उद्देश्यों के मुताबिक) आज़ादी भी देनी होगी। हॉब्स का विचार था कि धर्म निजी मामला है, पर उसके सार्वजनिक पहलुओं को पूरी तरह राज्य के मुखिया के फ़ैसले पर छोड़ देना चाहिए। राज्य का मुखिया ही चर्च का मुखिया होना चाहिए। बाइबिल जिन मामलों में स्पष्ट निर्देश नहीं देती, वहाँ राज्य के मुखिया का निर्देश अंतिम समझा जाना चाहिए।

हॉब्स का मतलब साफ़ था कि ज़रूरी नहीं कि राज्य की सम्प्रभुता का प्रतीक कोई व्यक्ति ही हो। वह किसी सभा और किसी संसद की सम्प्रभुता भी हो सकती है। इस लिहाज़ से हॉब्स के सिद्धांत में संसदीय सम्प्रभुता के लिए भी गुंजाइश है। हॉब्स द्वारा पेश किये गये राज्य संबंधी सिद्धांत ने बाद के युरोपीय चिंतकों को प्रभावित करना जारी रखा।

हॉब्स की राज्य की यह व्याख्या **मैक्स वेबर** की उस व्याख्या से बहुत प्रभावित है जो उन्होंने अपनी रचना '**दि प्रोफ़ेशन ऐंड वोकेशन ऑफ़ पॉलिटिक्स**' में पेश की थी। इसमें वेबर ने आधुनिक राज्य के तीन पहलू बताये थे : उसकी भू-क्षेत्रीयता, हिंसा करने का उसका अधिकार और वैधता। वेबर का तर्क था कि अगर किसी सुनिश्चित भू-भाग में रहने वाले समाज में कोई संस्था हिंसा का डर दिखा कर लोगों से किन्हीं नियम-कानूनों का पालन नहीं करायेगी तो अराजकता फैल जाएगी। वेबर ने इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश भी की है कि आखिर लोग राज्य की बात क्यों मानते हैं ? वेबर का सूत्र का जवाब यह है कि हिंसा का डर दिखाने के साथ-साथ राज्य अपने प्रभुत्व को वैध साबित करने की कवायद भी करता है ताकि आज्ञापालन का अहिंसक औचित्य प्रमाणित किया जा सके।

क्षेत्र (Region) : सामाजिक विज्ञानों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसमें हम न केवल वैज्ञानिक व्यवहार, अन्तवैयक्तिक व्यवहार अपितु समूह व्यवहार का भी अध्ययन करते हैं। सामाजिक विज्ञानों का क्षेत्र व्यवहार के सभी पक्षों के साथ-साथ उससे सम्बन्धित समस्याओं का भी अध्ययन करता है।

लैपियर और फार्न्सवर्थ का कहना है कि, "सामाजिक मनोविज्ञान, सामाजिक विज्ञान के सामान्य क्षेत्र के अन्तगर्त एक विशेषीकृत विज्ञान है, और उसके क्षेत्र को सुनिश्चित रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि ज्ञान में वृद्धि होने के साथ-साथ उसमें भी परिवर्तन होगा ही। एक समय विशेष में जिन समस्याओं का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान करता है, उन्हीं के आधार पर इसके अध्ययन के सामान्य क्षेत्र को सम्भवत: सबसे अच्छी तरह उजागर किया जा सकता है।"

वर्ष 1908 में **मैकडूगल** ने 'सोशल साइकोलॉजी' नामक पुस्तक लिखी थी, तभी से यह माना जाता है कि इसका इतिहास प्रारम्भ हुआ है। स्पष्ट है कि इसका एक विज्ञान के रूप में इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है, फिर भी देखा गया है कि इसके क्षेत्र में न केवल तीव्र वृद्धि हुई है अपितु विविध बदलाव भी आए हैं। इसके क्षेत्र के अन्तगर्त मनोविज्ञान की दूसरी विशिष्ट शाखाओं जैसे विकासात्मक मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान, तुलनात्मक मनोविज्ञान, शिक्षा मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान इत्यादि की भी बहुत सी सामग्रियाँ समाहित हैं। साथ ही, अन्य सामाजिक विज्ञानों विशेषकर समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र और अर्थशास्त्र इत्यादि की भी कुछ सामग्रियाँ इसमें सम्बन्धित हैं।

बाजार (Market) : बाजार वह स्थान है जहाँ क्रेता और विक्रेता अपनी वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय और विक्रय करने के लिए आते हैं।

बाजार की संरचना : एक उद्योग में सक्रिय कंपनियों की संख्या, उनके बीच प्रतिस्पर्धा स्थिति और उनके उत्पाद की प्रकृति को संदर्भित करती है।

बाजार के प्रकार : बाजार के निम्नलिखित चार प्रकार हैं :

1. **पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition)** : बाजार की उस स्थिति को दर्शाता है जिसमें खरीददार और विक्रेता की मौजूदगी बड़ी संख्या में होती है।

2. **एकाधिकार (Monopoly)** : एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है, जिसमें एक ही विक्रेता प्रभुत्व होता है और उसका कीमत पर पूरा नियंत्रण होता है।

3. **एकाधिकार प्रतियोगिता (Monopolistic Competition)** : बाजार की उस स्थिति को दर्शाता है, जिसमें कई कंपनियां होती हैं जो निकट से संबंधित किंतु अलग-अलग उत्पाद बेचती हैं।

4. **अल्पाधिकार** : बाजार में वह संरचना है जिसमे वस्तु के कुछ बड़े विक्रेता होते हैं और बड़ी संख्या में क्रेता होते हैं।

अभ्यास के प्रश्न
(Study Questions)

1. निम्नलिखित विषयों मे से किसी दो पर लघु नोट लिखें-
   (Write short notes on any two of the following topics :)
   - सामाजिक संरचना
   - सामाजिक स्तरीकरण
   - समुदाय
   - राज्य
   - क्षेत्र
   - बाजार

ଓଓଓ

CHAPTER 2

शैक्षणिक विश्लेषण का अर्थ, म[illegible] और इसके च[illegible]

(Meaning, Importance and Steps [illegible] Pedagogical Analy[illegible])

शैक्षणिक विश्लेषण का अर्थ (Meaning of Pedagogical Analy[illegible]) शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में अध्यापक ज्ञान का एक पूर्ण स्रोत है जिसे वह अलग-अ[illegible] स्रोतों के द्वारा अपने छात्रों को प्रदान करता है, इसलिए पैडागोगी (Pedagogy) श[illegible] प्रयोग इस प्रक्रिया के लिए किया गया है जिसका अर्थ है शिक्षण का विज्ञान (Sci[illegible] of Teaching) विज्ञान तथा पैडागोगी (Pedagogy) दोनों ही शब्दों का प्रयोग [illegible] क्रमबद्ध शिक्षण प्रक्रिया के साथ किया जाता है, क्योंकि शिक्षण-अधिगम प्रक्रि[illegible] महत्वपूर्ण बनाने के लिए क्रमबद्धता का होना अति-अनिवार्य है। यही प्रक्रिया विश्ले[illegible] (Analysis) के लिए भी की जा सकती है। विश्लेषण में भी विषय-सामग्री को अल[illegible] अलग भागों में बांटकर छात्रों तक पहुंचाया जाता है। यदि छात्र वास्तविक तौर [illegible] विषय-वस्तु का पूरा ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें इस प्रक्रिया को अपनाना हो[illegible]

यह माना जा सकता है कि शैक्षणिक विश्लेषण (Pedagogical Analysis) श[illegible] दो शब्दों का जोड़, पैडागोगी+विश्लेषण (Pedagogy + Analysis), जिसका अर्थ [illegible] पाठ्य-सामग्री को क्रमबद्ध रूप से शिक्षण के द्वारा छात्रों तक पहुंचाना।

हम अपने दैनिक जीवन में विज्ञान का प्रयोग जीवन को समृद्ध बनाने व चीज़ों को और अधिक सरल व कार्य-योग्य बनाने के लिए करते हैं। परिणामस्वरूप हम अप[illegible] समय और ऊर्जा की बचत कर सकते हैं और कम अदा (Input) द्वारा अधिक प्रद[illegible] (Output) प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए कोई भी चीज़ अध्यापक के अध्ययन में सहायक सिद्ध हो सकती है, उसी प्रकार विज्ञान भी हमारी दिनचर्या के किसी भी काम को करने में हमारी मदद करता है। इस प्रकार शैक्षणिक विश्लेषण एक अध्यापक द्वारा इसलिए प्रयोग किया जाता है ताकि जहां तक सम्भव हो सके अपने शिक्षण को थोड़े से प्रयास द्वारा अधिक प्रभावशाली बना सके और अच्छे शैक्षणिक परिणाम प्राप्त कर सके। शैक्षणिक विश्लेषण चार स्तम्भों पर आधारित है जो आपस में अंत:संबंधित हैं और शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए एक-दूसरे पर निर्भर हैं।

परिभाषाएं (Definitions) : वैबस्टर (Webster) शब्दकोष के अनुसार, "पैडागोगी एक कला व शिक्षण तरीकों में अनुदेशन देना, शिक्षण का विज्ञान कहलाता है।"

("Pedagogy is an art or science of teaching, especially instructions in teaching method.")

आक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार, "पैडागोगी शिक्षण तरीकों का अध्ययन है।" (Pedagogy is the study of teaching methods) **दीपक शर्मा** (Deepak Sharma) के अनुसार, "पैडागोगी शिक्षण का विज्ञान है, जिसे शिक्षण तरीकों में प्रयोग किया जाता है।" ("Pedagogy is the science of teaching, which is used for instructions in teaching methods.")

इस प्रकार पैडागोग (Pedagogue) एक व्यक्ति के पास ज्ञान को दर्शाता है।

शैक्षणिक विश्लेषण का महत्व (Importance of Pedagogical Analysis) :

शिक्षण विश्लेषण की सामाजिक विज्ञान अध्यापक के लिए उपयोगिता निम्नलिखित रूप से है।

1. **विषय-सामग्री की स्पष्टता** (Clarity of Subject-Matter) : सामाजिक विज्ञान अध्यापक के लिए शिक्षण विश्लेषण का होना अति अनिवार्य है, क्योंकि इससे अध्यापक को विषय-सामग्री की स्पष्टता का ज्ञान होता है, यदि अध्यापक को विषय-सामग्री का पूर्ण ज्ञान है तो वह इसे अपने छात्रों तक स्थानान्तरण कर सकता है।

2. **उद्देश्यों की स्पष्टता** (Clarity of Aims) : यह प्रत्येक अध्यापक का कर्तव्य है कि वह कक्षा में कुछ उद्देश्यों को लेकर जाए जिससे वह अपनी शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली बना सके। यह प्रक्रिया अध्यापक को उसके सूक्ष्म शिक्षण के दौरान से ही सिखाई जाती है। यदि एक अध्यापक को कक्षा में जाने का उद्देश्य नहीं पता तो उसका शिक्षण कभी भी प्रभावशाली नहीं हो सकता।

3. **सहायक सामग्री की तैयारी** (Preparation of Subject Matter) : जब एक अध्यापक कक्षा में जाता है तो उसके उद्देश्य स्पष्ट होते हैं। यह स्पष्टता उसे अपनी विषय वस्तु की पूर्ण तैयारी करके प्राप्त होती है। यदि एक अध्यापक सहायक सामग्री के बिना जाए तो शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया कभी भी प्रभावशाली नहीं होगी।

4. **शिक्षण विधियों को तैयार करना** (To Prepare of Teaching Methods): अध्यापक को यह निश्चित करना होता है कि वह कक्षा में जाने से पहले शिक्षण प्रधान करने वाली विधियों की पूरी तैयारी करे। यदि एक अध्यापक शिक्षण-तरीकों/विधियों को अपने शिक्षण में प्रयोग नहीं करता तो शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया कभी भी प्रभावशाली नहीं हो सकती, क्योंकि एक प्रकार की शिक्षण विधि के द्वारा सभी छात्रों को संतुष्ट नहीं किया जा सकता इसलिए अध्यापक को कक्षा में अलग-अलग तरह की शिक्षण-विधियों का प्रयोग करना चाहिए। जिससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावशाली हो सके।

5. मूल्यांकन करने की विधियों की स्पष्टता (Clarity of Process of Evaluation) : अध्यापक का यह कर्तव्य है कि अपने द्वारा प्रदान ज्ञान को जानने के लिए वह मूल्यांकन की अलग-अलग विधियों का प्रयोग करे। यदि अध्यापक सभी छात्रों पर एक जैसी मूल्यांकन विधि का प्रयोग करता है तो उद्देश्यों की स्पष्टता प्राप्त नहीं की जा सकती। उदाहरण के तौर पर प्राय: यह देखा गया है कि छात्र विषय-वस्तु के बारे में जानते हैं, परन्तु वे उसे सुना नहीं सकते। ऐसी स्थिति में यदि अध्यापक उस छात्र से विषय-वस्तु को सुनाने के लिए कहे तो वह छात्र इस मूल्यांकन विधि से अपने आप को पूर्ण सिद्ध नहीं कर पाता। इसलिए अध्यापक को छात्रों के अनुसार मूल्यांकन विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

6. विषय-सामग्री का क्रमबद्ध विकास (Development of Sequence of Subject-Matter) : अध्यापक शिक्षण-विश्लेषण के माध्यम से कक्षा में विषय सामग्री का क्रमबद्ध विकास कर सकता है। यदि एक अध्यापक विषय-वस्तु को छोटे-छोटे भागों में बांटकर नहीं पढ़ाता तो छात्रों की अधिगम-प्रक्रिया प्रभावशाली नहीं हो सकती। इसलिए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में विषय-सामग्री को छोटे-छोटे भागों में बांटकर अध्यापक छात्रों की अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बना सकता है।

7. विषय-सामग्री का उचित विश्लेषण (Proper Analysis of Content Matter) : यदि अध्यापक शिक्षण विश्लेषण की सहायता से विषय-सामग्री का प्रयोग करता है तो कक्षा में महत्वपूर्ण शिक्षण की प्राप्ति की जा सकती है। ऐसा न होने से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली नहीं बनाया जा सकता।

8. विभिन्न कौशलों का पूर्व ज्ञान (Previous Knowledge of Different Skills) : यह प्रत्येक अध्यापक का कर्तव्य है कि वह कक्षा में शिक्षण प्रदान करने से पहले अपने विभिन्न कौशलों का ज्ञान प्राप्त करें क्योंकि अधिगम प्रक्रिया की कुशलता केवल अध्यापक के विभिन्न कौशलों पर निर्भर करती है जो अध्यापक अपने कौशलों का प्रयोग कक्षा में प्रभावशाली ढंग से करता है उस कक्षा में छात्रों का अधिगम बहुत ही प्रभावशाली होगा।

9. महत्वपूर्ण बिन्दुओं का ज्ञान होना (Knowledge of Particular Points) : यदि अध्यापक शिक्षण-विश्लेषण के माध्यम से अपनी विषय-वस्तु के सभी महत्वपूर्ण बिन्दुओं को कक्षा में विस्तारपूर्वक पढ़ाता है तो उस कक्षा के छात्रों को विषय-वस्तु के महत्वपूर्ण बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त होगा। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि कक्षा में अध्यापक अपने ढंग से शिक्षा प्रदान करता है, वह इस बात पर ज्यादा ध्यान नहीं देता कि छात्रों को ज्ञान की प्राप्ति हुई है या नहीं। अपनी तरफ से वह उस विषय-वस्तु को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत कर देता है, परन्तु वास्तविक तौर पर अगर छात्रों का मूल्यांकन किया जाए तो वे

विषय-वस्तु के बारे में पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं होते, इसलिए अध्यापक को कक्षा में कम से कम विषय-वस्तु को पढ़ाना चाहिए ताकि वह छात्रों तक मुख्य बिन्दुओं को पहुँचा सके। ऐसी प्रक्रिया शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को बहुत ही महत्वपूर्ण बना देती है।

10. अध्यापक को शिक्षण सूत्रों का ज्ञान होना (Knowledge of Teaching formulas to teacher) : अध्यापक शिक्षण-विश्लेषण प्रक्रिया के माध्यम से कक्षा में अधिगम प्रक्रिया को और भी महत्वपूर्ण बना सकता है। उसे स्वयं शिक्षण के विभिन्न सूत्रों का ज्ञान होगा। एक कक्षा में अलग अलग तरह के छात्र होते हैं, सभी पर एक सूत्रीय शिक्षण नहीं प्रयोग किया जा सकता, इसलिए अध्यापक को शिक्षण के सभी प्रकार के ढंगों का पता होना चाहिए, ताकि वह कक्षा में छात्रों को विशेष वस्तु का पूर्ण ज्ञान प्रदान कर सके।

शैक्षणिक विश्लेषण के चरण (Steps of Pedagogical Analysis) : शैक्षणिक विश्लेषण में चार चरण शामिल हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है :

1. विषय-सामग्री का विश्लेषण (Unit Analysis/Content Analysis)-विषय-सामग्री विश्लेषण किसी भी सामग्री के विभिन्न भागों का विश्लेषण करता है। इससे अभिप्राय है कि अध्यापक मुख्य बातों को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट देता है। किसी कक्षा में कोई विषय पढ़ाने से पहले अध्यापक अनुकरण विधि से पढ़ाता है और विषय-सामग्री का विश्लेषण करते हुए शिक्षण के विज्ञान द्वारा विषय को पढ़ाना शुरू करता है। इस प्रकार वह विषय-सामग्री के विश्लेषण को परिभाषित करते हुए कह सकते हैं कि विषय-सामग्री का छोटे-छोटे भागों में बांटना उचित, क्रमबद्ध और अर्थपूर्ण होता है। विषय-सामग्री के विषय के प्रथम सोपान पर अध्यापक को विषय-सामग्री की धारणा के बारे में पता लगाना पड़ता है।

इस प्रकार विषय-सामग्री का विश्लेषण एक आसान कार्य नहीं है, इसलिए ऐसा करने के लिए एक अध्यापक के पास शिक्षण के सूत्रों का ज्ञान हो और विषय-सामग्री के सिद्धान्तों का भी पूरा ज्ञान हो।

2. उद्देश्यों का गठन (Formulation of Objectives)-विषय सामग्री के बाद अध्यापक का कर्तव्य है कि वह व्यवहारात्मक शब्दावली में अनुदेशात्मक उद्देश्यों का गठन करे। इस प्रकार यह शिक्षण विश्लेषण का दूसरा सोपान है। विषय सामग्री व्यक्ति के व्यवहार से सम्बन्धित होनी चाहिए जिसके लिए शिक्षण होता है। एक सफल शिक्षण सफल अनुदेशात्मक उद्देश्यों की सफलता पर आधारित होता है।

एक अध्यापक द्वारा अपने शिक्षण का प्रभाव जानने के लिए निम्नलिखित मान्यताओं का पालन करना चाहिए।

1. किसी भी अनुदेशनात्मक उद्देश्यों के गठन से पहले अध्यापक को व्यव... उद्देश्यों के विभिन्न उपागमों के बारे में भी पढ़ने की आवश्यकता है, जैसे अधिगम संबंधी ब्लूम का वर्गीकरण, रॉबर्ट मैगर उपागम, रॉबर्ट मिलर उपागम

2. व्यवहारात्मक शब्दावली में अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का गठन और अध्या... उपागम का गठन विद्यार्थी केन्द्रित हो।

3. विषय-सामग्री के बारे में अध्यापक को पूरा ज्ञान होना चाहिए जो कि वि... सामग्री को क्रम में रखता है व उसे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का पूरा ज्ञान हो।

3. अधिगम अनुभव व चुनाव विधि (Learning Experiences and Ch... Method) - यह शिक्षण विश्लेषण का तीसरा सोपान है जिसमें अध्यापक वि... अधिगम अनुभव, चुनाव विधि से प्रदान करते हैं। अधिगम अनुभव बताते हैं कि ... अनुदेशनात्मक उद्देश्य बनाए हैं, उन्हें कैसे ठीक ढंग से प्राप्त किया जा सकता है। ... अध्यापक चुनिंदा तरीकों, तकनीकों व सामग्री की सहायता से पढ़ा सकता है। ... शिक्षण का विज्ञान यह दर्शाता है कि कैसे सम्भवत: तकनीकों, नीतियों व तरीकों ... प्रयोग किया जा सकता है और इसी तरह प्राकृतिक स्रोतों का प्रयोग शिक्षण-अधि... अनुभव पढ़ाने के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। एक सामाजिक विज्ञान ... अध्यापक उचित तरीकों द्वारा अध्ययन करवा सकता है जैसे समस्या समाधान वि... प्रोजेक्ट विधि आदि। यह उसकी कला है कि वह कौन सा तरीका प्रयोग में लाता है। प्रदर्शन (Presentation) में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वह अपने विभिन्न कौशलों- प्रश्नात्मक, व्याख्यात्मक आदि पर अधिकार कर सकता है या यह सोपान निम्नलिखि... क्रियाएँ दर्शाता है जैसे :

- अध्यापक विषय-सामग्री को विभिन्न कौशलों के प्रयोग द्वारा स्पष्ट करता है।

4. मूल्यांकन तकनीक (Evaluation Device) - यह शिक्षण विश्लेषण का अन्तिम सोपान है। यह दर्शाता है कि अध्यापक का शिक्षण कितना प्रभावशाली है। मूल्यांकन विद्यार्थी के व्यवहार में इच्छानुसार परिवर्तन है। यह विद्यार्थी के व्यक्तित्व का कुल योग है। 'व्यवहारात्मक उद्देश्य कितने व कैसे प्राप्त किए जा सके ?' यह सब मूल्यांकन विधि द्वारा नापा जाता है। इस प्रकार यह सोपान मौखिक, लिखित व अन्य व्यवहारिक क्रियाओं के परीक्षण के बारे में हैं।

निष्कर्ष के तौर पर, जब सामाजिक विज्ञान के अध्यापक से पढ़ाए जाने वाले विषय-सामग्री के बारे में उसका शिक्षण-विश्लेषण पूछा जाता है तो वह इस प्रकार का संगठित चित्र बनाकर दर्शाता है।

अभ्यास के प्रश्न
(Study Questions)

1. शैक्षणिक विश्लेषण को परिभाषित करें। सामाजिक विज्ञान के शिक्षक के लिए शैक्षणिक विश्लेषण का महत्व क्या है ?
2. शैक्षणिक विश्लेषण में कौन से चरण शामिल हैं ? शैक्षणिक विश्लेषण का अर्थ भी स्पष्ट करें।
3. निम्नलिखित विषयों में से किसी दो पर लघु नोट लिखें-
   - विषय-सामग्री का विश्लेषण
   - उद्देश्यों का गठन
   - सीखने के अनुभव और चुनी हुई विधि
   - मूल्यांकन तकनीक

ଓଓଓ

CHAPTER

3

शैक्षणिक विश्लेषण
Pedagogical Analysis

निम्न विषयों पर शैक्षणिक विश्लेषण : भारत का संविधान, भारत का आकार, स्थिति और भौतिक विशेषताएं, भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन, जनसंख्या, समकालीन विश्व में लोकतंत्र, आपदा प्रबंधन, और फ्रांसीसी क्रांति

(Pedagogical Analysis on the following Topics : Constitution of India ; Size, Location and Physical Features of India ; Indian Freedom Movement ; Population ; Democracy in the Contemporary World ; Disaster Management and French Revolution)

भारत का संविधान
(Constitution of India)

लगभग एक शताब्दी के निरन्तर संघर्ष के बाद 15 अगस्त, 1947 को भारत आज़ाद हुआ। स्वाधीनता के पश्चात् देश का संविधान बनाने के लिए संविधान सभा का गठन किया गया। दो वर्षों के अधिक परिश्रम के बाद संविधान बन कर तैयार हुआ। यह संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया। तब से भारत सार्वभौमिक गणतन्त्र राज्य कहलाया। संविधान सभा ने 1947 में एक प्रस्तावना पास की थी जिसमें उसने अपने सामने कुछ उद्देश्यों को रखा था और उसी प्रस्ताव के आधार पर संविधान का निर्माण हुआ। भारत के संविधान के कुछ मौलिक सिद्धान्त हैं। लोकतन्त्र, धर्म निरपेक्षता तथा समाजवाद की आधार शिलाएं हैं। इन्हीं तीन प्रमुख मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर यह संसार के संविधान में अपना एक विशेष स्थान रखता है।

प्रस्तावना (Preamble)-भारत के संविधान का आरम्भ एक प्रालेख से होता है जिसे प्रस्तावना कहा जाता है। इस प्रस्तावना में संविधान के आदर्शों तथा उद्देश्यों का निचोड़ है। प्रस्तावना मान लो शीर्षक है तथा बाकी का संविधान उस पर मान लो एक लेख लिखा गया है। हमारे संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है-

"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म तथा उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा तथा अवसर की समता प्राप्त कराने और उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने

वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए, दृढ़ संकल्प होकर, अपनी इस संविधान सभा में आज 26 नवम्बर, 1949 ई० को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अनियमित तथा आत्मसमर्पित करते हैं।"

प्रस्तावना की प्रमुख विशेषताएं
(Main Features of the Preamble)

1. लोगों का अपना संविधान-प्रस्तावना के प्रारम्भिक शब्दों "हम भारत के लोग" से स्पष्ट है कि हमारा संविधान भारतीय लोगों का अपना संविधान है। यद्यपि संविधान के निर्माता लोगों के चुने हुये प्रतिनिधि नहीं थे पर अब तक के हुये चुनावों से यह बात प्रकट होती है कि यह संविधान लोगों का अपना संविधान है तथा सभी भारतीय इस बात पर गर्व करते हैं।

2. प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य-प्रस्तावना के अनुसार भारत एक प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य है। यह अपनी आन्तरिक एवं बाह्य नीति में पूर्णत: स्वतन्त्र है।

3. समाजवादी राज्य-प्रस्तावना में भारत को एक समाजवादी राज्य बताया गया है। यह समाजवादी शब्द संविधान में नवम्बर, 1976 में संविधान के 42वें संशोधन के बाद जोड़ा गया है।

4. धर्म निरपेक्ष राज्य-भारत का अपना कोई विशेष धर्म नहीं है। सभी भारतीयों को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता है। धर्म निरपेक्ष शब्द भी संविधान के 42वें संशोधन के बाद जोड़ा गया है।

5. लोकतान्त्रिक गणराज्य-भारत में सभी लोगों को संविधान में समान अधिकार प्रदान किये गये हैं। व्यस्क मताधिकार के द्वारा लोकतान्त्रिक गणराज्य की स्थापना की गई है।

6. न्याय-भारत में 'कानून का शासन' है जिसमें सभी लोगों को बिना किसी भेद-भाव के न्याय दिया जाता है।

7. स्वतन्त्रता-भारत में प्रत्येक नागरिक को भाषा, शिक्षा, धर्म एवं समूह बनाने की तथा अन्य बातों की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है।

8. समानता-सभी लोगों को समान अधिकार, समान उन्नति के अवसर प्रदान किये गये हैं।

9. भाईचारा-प्रस्तावना में यह स्पष्ट किया गया है कि सभी लोग छुआछूत तथा ऊंच-नीच की भावना के बिना भाईचारे की भावना से देश की एकता व अखंडता के लिए कार्य करें।

प्रस्तावना भारतीय संविधान का वह झरोखा है जिसके द्वारा हम संविधान की आत्मा को पहचान सकते हैं।

भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं
(Main Features of Indian Constitution)

प्रत्येक देश का अपना एक संविधान होना आवश्यक है। 15 अगस्त, 1947 को देश की आजादी के बाद हमारे नेताओं ने देश के लिए एक नया संविधान बनाने के बारे में सोचा। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए एक संवैधानिक मंडल गठित किया गया। इस मंडल ने संविधान की एक रूप-रेखा बनाई जिसे 26 जनवरी, 1950 को मान्यता प्रदान की गई। देश की शासन प्रणाली इसी संविधान के सिद्धान्तों पर चलाई जा रही है। इस संविधान की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. लिखित संविधान एवं विशालता-भारत का संविधान संसार का सबसे लम्बा लिखित संविधान है। इसमें 395 अनुच्छेद और 9 नामावलियां हैं। पहले 8 नामावलियां थीं। 1951 में पहले संशोधन में नौवीं नामावली जोड़ी गई। भारत के संविधान के लम्बे होने का कारण यह है कि संविधान के कुछ विषयों नागरिकता, केन्द्र और इकाइयों के लेजिस्लेटिव और प्रशासनिक सम्बन्ध, फाइनान्स, अल्पसंख्यक सरकारी भाषा, पिछड़े हुए वर्ग, व्यापार, लोक सेवाएं आदि का विस्तार से वर्णन है।

2. अधिक कठोर नहीं-भारत का संविधान अमेरिका के संविधान की तरह कठोर नहीं है। इसमें कठोरता एवं लचीलेपन की अनोखी मिलावट है। संविधान में कुछ धाराएं ऐसी हैं जिनमें पार्लियामैंट उसी तरीके से तबदीली कर सकती है जैसे वह साधारण कानून बनाती है। संविधान में संशोधन करने के उद्देश्य से भारतीय संविधान को तीन भागों में बांटा जा सकता है। पहला है, जिसमें संसद साधारण बहुमत से परिवर्तन कर सकती है। दूसरा है, जिसमें परिवर्तन करने के लिए संसद के दोनों सदनों के कुल सदस्यों की संख्या का स्पष्ट बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वालों का दो तिहाई बहुमत आवश्यक है। तीसरा है, जिसमें संसद के दोनों सदनों की कुल संख्या के स्पष्ट बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत के अतिरिक्त कम से कम आधी राज्य विधान सभाओं का समर्थन आवश्यक है।

3. मौलिक अधिकार-भारतीय संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का विस्तार से वर्णन है। संविधान के तीसरे प्रकरण में अनुच्छेद 14 से 32 तक नागरिकों के मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है। इन मौलिक अधिकारों को सात भागों में विभाजित किया गया-समानता का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता

का अधिकार और संवैधानिक उपचारों का अधिकार। 44वें संशोधन में सम्पत्ति का अधिकार निकाल दिया गया था पर फिर बाद में उसे शामिल कर लिया गया। अब नई राष्ट्रीय नीति (1986) के सुझाव के अन्तर्गत सबके लिए प्राईमरी स्तर तक सार्वभौमिक एवं अनिवार्य शिक्षा को आठवां मौलिक अधिकार मान लिया गया है।

4. राज्य नीति के निर्देशक तत्व-भारत के संविधान के चतुर्थ भाग में अनुच्छेद 36 से 51 तक राजनीति के निर्देशक सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। यह निर्देशक सिद्धान्त एक तरह के आदेश हैं जो भारत की प्रभुत्व सम्पन्न संविधान सभा ने भारत में शासकों की गाइडैंस के लिए दिये हैं। इन सिद्धान्तों के द्वारा आर्थिक प्रजातन्त्र और उन अधिकारों को ठोस करने की कोशिश की गई है, जिनकी गारन्टी देश की उस समय की हालत में नहीं की जा सकती थी। मौलिक अधिकारों और राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों में बड़ा अन्तर यह है कि मौलिक अधिकार कचहरियों द्वारा लागू किये जाते हैं जबकि निर्देशक सिद्धान्तों के बारे में राज्य पर कोई कानूनी रोक-टोक नहीं। निर्देशक सिद्धान्त किसी कचहरी द्वारा लागू नहीं किये जा सकते। कुछ प्रमुख निर्देशक सिद्धान्त इस प्रकार हैं-

(1) सभी नागरिकों को जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त साधनों के लिए समान अवसर प्रदान किये जाएंगे।

(2) समान कार्य के लिए समान वेतन।

(3) स्वास्थ्य, संचारण और शोषण से सुरक्षा प्रदान की जाए।

(4) ग्राम पंचायतों की स्थापना की जाए।

(5) कार्यपालिका और न्यायपालिका को पृथक् करना।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की वृद्धि के लिए प्रयत्न करना।

(7) 14 साल तक के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा।

5. स्वतन्त्र न्यायपालिका-प्रत्येक राज्य के लिए शक्तिशाली व स्वतन्त्र न्यायपालिका की आवश्यकता होती है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता बनाए रखने के लिए भारतीय संविधान में पर्याप्त व्यवस्था की गई है। नये संविधान के अनुसार स्थापित भारत का सर्वोच्च न्यायालय भारत का अन्तिम न्यायलय है और इसको विस्तृत शक्तियां प्रदान की गई हैं। न्यायाधीशों को उचित वेतन भारत की संचित निधि से प्राप्त होता है। न्यायाधीशों का कार्यकाल भी निश्चित आयु पर आधारित है।

6. व्यस्क मताधिकार-व्यस्क मताधिकार की स्थापना नये संविधान की विशेषता है। भारत के संविधान में स्त्री-पुरुष को 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के पश्चात् बिना किसी भेदभाव के वोट देने का अधिकार प्राप्त है।

7. सम्पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न समाजवादी, धर्म निरपेक्ष, प्रजातान्त्रिक गणराज्य-सम्पूर्ण प्रभुसत्ता से आशय है कि भारत किसी विदेशी सत्ता के अधीन नहीं है। वह आन्तरिक एवं बाह्य नीति निर्धारण करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। समाजवाद एक राजनैतिक आन्दोलन है जिसका उद्देश्य उत्पादन, वितरण तथा विनियम का समाजीकरण करना है। राज्य में धर्म के आधार पर किसी नागरिक से किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता है। प्रजातन्त्रात्मक राज्य में राज्य सत्ता कुछ व्यक्तियों के हाथ में नहीं होती बल्कि जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथ में होती है। भारत एक गणराज्य है जिसका मुखिया जनता द्वारा निर्वाचित जनता का प्रतिनिधि होगा।

8. धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना-भारत का कोई राज्य धर्म नहीं है। 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में धर्म निरपेक्ष शब्द अंकित किया गया है। भारतीय संविधान में नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। व्यक्ति अपने इच्छानुसार किसी भी धर्म को अपना सकता है। धर्म व्यक्तिगत विषय है उसमें राज्य हस्तक्षेप नहीं करता। सभी धर्मों के साथ देश निष्पक्ष व्यवहार रखेगा।

9. एकल नागरिकता-यद्यपि भारत में संघीय शासन की स्थापना की गई पर यहां दोहरी नागरिकता नहीं बल्कि एकल नागरिकता है। प्रत्येक व्यक्ति सम्पूर्ण भारत का नागरिक है। यह व्यवस्था भारत की एकता को सामने रखकर की गई है। राज्यों की पृथक् नागरिकता का कोई स्थान नहीं है। वह भारत के किसी भी भाग में रह रहा हो वह भारत का नागरिक माना जाएगा।

10. संसदीय शासन प्रणाली-भारतीय संविधान ने संसदीय सरकार की स्थापना की है। ऐसे शासन में प्रधानमंत्री अपने सहयोगियों के साथ उतने समय तक कार्य करता है जब तक उसे लोकसभा या विधान मण्डल का विश्वास प्राप्त हो। संसदीय शासन प्रणाली में देश अथवा राज्य का मुखिया नाम मात्र का प्रधान होता है। भारत में राष्ट्रपति और राज्यपाल अपने-अपने मंत्री मंडल के परामर्श से कार्य करते हैं। राष्ट्रपति पुन: किसी विषय पर परामर्श करने के लिए कह सकता है पर मन्त्री परिषद के पुन: विचार करने पर परामर्श को अस्वीकार नहीं कर सकता।

11. द्विसदनी विधानपालिका-भारत में दो सदनीय विधानपालिका है। लोकसभा संसद का निचला सदन है जिसमें सदस्यों का चुनाव व्यस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष नीति से राज्य की जनसंख्या के आधार पर होता है। राज्य सभा संसद का ऊपरी सदन है। भारत में राज्य सभा का चुनाव राज्य की विधान सभाओं द्वारा प्रत्यक्ष नीति से जनसंख्या के अनुपात से होता है।

12. अल्पसंख्यक तथा पिछड़ी हुई जातियों के लिए विशेष संरक्षण-भारत के संविधान में अल्पसंख्यक तथा पिछड़ी हुई जातियों के संरक्षण के लिए विशेष व्यवस्था

है। अल्पसंख्यकों को सभी नागरिकों के समान अधिकार मिले हैं परंतु विशेष रूप से उनके लिए सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार संविधान में रखे गये हैं। सरकारी सेवाओं में अनुसूचित एवं पिछड़ी जातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुसार कुछ स्थान सुरक्षित रखे गये हैं।

13. अस्पृश्यता की समाप्ति-भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 के अनुसार अस्पृश्यता की सामाजिक बुराई को समाप्त करने का यत्न किया गया है। संविधान में कहा गया है कि राज्य स्वयं भी केवल जाति वंश आदि के आधार पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं करेगा। 19 नवम्बर, 1976 को अस्पृश्यता के विरुद्ध पारित कानून के अन्तर्गत इसका प्रचार करने वाले व्यक्ति को कम-से-कम एक मास का कारावास तथा 100 रु० जुर्माना और अधिक-से-अधिक दो वर्ष का कारावास तथा 500 रु० से 1000 रु० तक जुर्माने का दण्ड दिया जा सकता है। जिन व्यक्तियों को इस कानून के अन्तर्गत दण्ड दिया जाएगा वे राज्य सभा या लोकसभा के चुनाव लड़ने से वंचित रहेंगे।

14. एक राष्ट्रीय भाषा-राष्ट्रीय एकता बनाए रखने के लिए भिन्न-भिन्न भाषाओं की जगह एक राज्य भाषा का होना आवश्यक माना गया। अत: भारतीय संविधान में कुल अठारह भाषाओं को मान्यता दी गई तथा हिन्दी को देवनागरी लिपि में राष्ट्र भाषा घोषित किया गया।

15. संकटकालीन शक्तियां-भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को संकटकालीन स्थिति की घोषणा करने की शक्ति प्रदान की गई है। राष्ट्रपति निम्नलिखित परिस्थितियों में संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता है-

(1) युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण या इनमें से किसी की भी सम्भावना हो।

(2) राज्य में संवैधानिक व्यवस्था असफल हो जाने पर या असफल होने की सम्भावना होने पर।

(3) देश को वित्तीय संकट का खतरा होने पर।

16. मौलिक कर्त्तव्य (Fundamental Duties)-भारतीय नागरिकों के लिए मौलिक कर्त्तव्य को संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा जोड़ा गया है। इसके लिए संविधान में एक नया भाग IV (ए) जोड़ा गया है जिसमें अनुच्छेद 51 ए के अन्तर्गत दस मौलिक कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है। संविधान के प्रथम प्रारूप में मौलिक कर्त्तव्यों को कोई स्थान प्राप्त नहीं था। लेकिन अब भारतीय नागरिकों के निम्नलिखित दस कर्त्तव्य बताए गए हैं-

(1) संविधान का पालन करना तथा इसके आदर्श, संस्थाओं, राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रीय गीत का सम्मान करना।

(2) स्वतनत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आ
हृदय में संजोए रखें और पालन करें। उन शुभ आदर्शों का सम्मान करना, जिन
आदर्शों ने स्वतन्त्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय संघर्ष को प्रोत्साहित किया था।

(3) भारत की प्रभुसत्ता, एकता और अखंडता का समर्थन करना, उसकी सुर
करना एवं अक्षुण्ण रखना।

(4) देश की सुरक्षा एवं आवश्यकता के समय राष्ट्रीय सेवा करना। जब भी देश
रक्षा के लिए आह्वान किया जाए तो तत्परता से देश की सेवा के लिए तैयार रहें।

(5) धार्मिक, भाषायी, प्रादेशिक एवं वर्गीय विभिन्नताओं से ऊपर उठना। भारत के
समस्त लोगों में सह-बन्धुत्व एवं एकसारता की भावना विकसित करना तथा स्त्रियों के
प्रतिष्ठा का निरादर करने वाली प्रथाओं का त्याग करना। सभी लोगों में भ्रातृत्व की
भावना का निर्माण करना जो सभी भेदभाव से दूर हो।

(6) संयुक्त संस्कृति के प्रतिभाशाली संस्कारों का सम्मान करना, गौरवशाली परम्पराओं
का महत्त्व समझे तथा उसको स्थापित एवं सुरक्षित रखें।

(7) प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव भी हैं,
रक्षा करना और उनका विकास करना, प्राकृतिक वातावरण में सुधार करना और जीव-
जन्तुओं के प्रति दया का व्यवहार करना।

(8) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद, ज्ञानार्जन एवं परख तथा सुधार करने की
भावना का विकास करना।

(9) सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करना और हिंसा को त्यागने का प्रण करना।

(10) व्यक्तिगत एवं सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने
का सतत् प्रयास करें जिससे कि राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई
ऊंचाइयों की ओर अग्रसर होता रहे।

भारत का आकार, स्थिति और भौतिक विशेषताएं
(Size, Location and Physical Features of India)

भारत विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। पिछले पांच दशकों से भारत ने सामाजिक-आर्थिक रूप से बहुमुखी उन्नति की है। कृषि उद्योग, तकनीकी और सर्वांगीण आर्थिक विकास में अद्‌भुत प्रगति हुई है। भारत का विश्व इतिहास में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

भारत एक विशाल देश है। यह उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है और इसका मुख्य भाग 8°4' उत्तर से 37°6' उत्तर अक्षांश तथा 68°7' पूर्व से 97°25' पूर्व देशांतर तक है। कर्क रेखा 23°30' उत्तर में देश को लगभग दो बराबर भागों में बांटती है। मुख्य भू-भाग के

दक्षिण-पूर्व में, अंडेमान और निकोबार द्वीप समूह बंगाल की खाड़ी में तथा दक्षिण-पश्चिम में लक्षद्वीप समूह अरब सागर में स्थित है।

भारत के भू-भाग का कुल क्षेत्रफल 32.4 लाख वर्ग कि.मी. है। भारत का क्षेत्रफल विश्व के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत है। भारत विश्व का सातवाँ बड़ा देश है। भारत की स्थल सीमा रेखा लगभग 15.200 कि.मी. और समुद्री तट रेखा अंडेमान और निकोबार द्वीप समूह तथा लक्षद्वीप समूह के साथ 7516.6 कि.मी. है।

भारत के उत्तर-पश्चिम, उत्तर तथा उत्तर-पूर्वी सीमा पर नवीनतम वलित पर्वत हैं। इसके दक्षिण का भू-भाग उत्तर में चौड़ा है और 22° उत्तरी अक्षांश से हिन्द महासागर की ओर संकरा होता गया है। इसके पश्चिम में अरब सागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी स्थित है। अक्षांश और देशांतर का विस्तार लगभग 30° है परन्तु फिर भी पूर्व-पश्चिम का विस्तार उत्तर-दक्षिण के विस्तार की अपेक्षा कम प्रतीत होता है।

गुजरात से अरुणाचल प्रदेश के स्थानीय समय में दो घंटे का अन्तर है। अत: 82°30' पूर्व देशांतर रेखा को भारत की मानक याम्योत्तर माना गया है जो कि उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर से गुजरती है। अक्षांश का प्रभाव दक्षिण से उत्तर की ओर दिन और रात की अवधि पर पड़ता है।

भारत तथा विश्व-भारतीय भू-खंड एशिया महाद्वीप के पूर्व और पश्चिम के मध्य में स्थित है। भारतीय भू-भाग एशिया महाद्वीप का दक्षिणी विस्तार है। हिन्द महासागर जो कि पश्चिम में यूरोपीय केन्द्रों और पूर्वी एशियाई देशों को मिलाता है। भारत को केन्द्रीय स्थिति प्रदान करता है। दक्षिण का पठार हिन्द महासाहर में शीर्षवत् फैला हुआ है और पश्चिम एशिया, अफ्रीका और यूरोप के देशों के साथ-साथ पूर्वी एशिया के देशों से भी पूर्वी तट के माध्यम से निकटतम सम्बन्ध बनाए हुए है। हिन्द महासागर में किसी भी देश की तटीय सीमा भारत जैसी नहीं है। भारत की इसी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण एक महासागर का नाम इसके नाम पर रखा गया है।

भारत का विश्व के देशों के साथ सम्पर्क युगों पुराना है परन्तु यह सम्बन्ध समुद्री जलमार्गों की अपेक्षा भू-भागों से होकर था। उत्तरी पर्वतों के दरों से अनेक यात्री प्राचीन काल में भारत आए। जबकि समुद्री मार्ग बहुत समय तक ज्ञान नहीं थे।

इन मार्गों से प्राचीन समय में विचारों और वस्तुओं का आदान-प्रदान होता रहा है। भारत का पश्चिम-मध्य और पूर्वी एशिया तथा दक्षिण एशिया के पड़ोसी देशों के साथ एक अद्‌भुत सम्पर्क रहा है। इसी प्रकार उपनिषदों के विचार, रामायण तथा पंचतंत्र की कहानियां, भारतीय अंक एवं दशमलव प्रणाली आदि संसार के विभिन्न भागों तक पहुंचे थे। मसाले, मलमल आदि कपड़े तथा व्यापार के अन्य सामान भारत से विभिन्न देशों को

ले जाए जाते थे। इसके विपरीत यूनानी स्थापत्य कला तथा पश्चिमी एशिया की वास्तुकला के प्रतीक मीनारों तथा गुंबदों का प्रभाव हमारे देश के विभिन्न भागों में देखा गया है।

भारत के पड़ोसी देश-भारत का दक्षिण एशिया में एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में 29 राज्य और 7 केन्द्र शासिक क्षेत्र हैं। भारत की भूमि की सीमाएं उत्तर-पश्चिम में पाकिस्तान और अफगानिस्तान के साथ, उत्तर में चीन, (तिब्बत), नेपाल और भूटान के साथ तथा पूर्व में म्यांमार व बांग्ला देश के साथ हैं। दक्षिण में समुद्र पार हमारे पड़ोसी द्वीप समूह राष्ट्र श्रीलंका और मालदीव हैं। भारत और श्रीलंका के बीच में छोटा समुद्री रास्ता पाक डालसंधि तथा मन्नार की खाड़ी है। मालद्वीप लक्षद्वीप के दक्षिण में स्थित है। अपने पड़ोसी देशों के साथ-साथ भारत के भौगोलिक और ऐतिहासिक सम्बन्ध बहुत अच्छे रहे हैं।

भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन
(Indian Freedom Movement)

स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास
(History of Freedom Movement)

भारत 15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्र हुआ। देश को स्वतन्त्र करवाने के लिए हमारे देश के महान् पुरुषों ने स्वाधीनता आन्दोलन का सहारा लिया और इसके परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। अंग्रेज़ों ने भारत पर लगभग दो सौ वर्ष तक राज्य किया। उनके समय में भारत पर अनेक प्रभाव पड़े जिसमें से कुछ अच्छे और अधिकतर बुरे प्रभाव पड़े। देश के विभिन्न क्षेत्रों में पिछड़ेपन को दूर करने के लिए धीरे-धीरे सुधारों की मांग हुई। यातायात के साधनों में सुधार हुआ और शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप भारत के विभिन्न भागों के लोगों में परस्पर मेल-जोल बढ़ा जिसके कारण राष्ट्रीयता की भावना का विकास के रूप में हुई। यही राष्ट्रीय भावना भारत में स्वाधीनता के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भ के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई। **प्रोफैसर जी०एन० सिंह** के शब्दों में, "वास्तव में एक समय से कितनी ही शक्तियां काम कर रही थीं जिनके कारण राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ।" इन कारणों का संक्षिप्त विवरण निम्न है-

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और उसके मुख्य कारण
(Indian National Movement and Its Main Causes)

1. सांस्कृतिक पुनर्जागरण (Cultural Renaissance)-उन्नीसवीं शताब्दी में देश के अन्दर सुधार शुरु हुए। **प्रोफैसर जी.एन. सिंह** लिखते हैं, "ये सुधार आन्दोलन **जितने धार्मिक थे उतने ही राष्ट्रीय** भी थे। इन्होंने भारतीयों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर **से अवगत कराया और उनमें राष्ट्रीय** भावना पैदा की।"

2. 1857 का विद्रोह (Revolt of 1857)-1857 की क्रान्ति को अंग्रेज़ों ने केवल 'सैनिक विद्रोह' की संज्ञा दी जबकि वह भारत के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस क्रान्ति में हिन्दू और मुस्लिम दोनों जातियों के लोगों ने तथा उनके नेताओं ने मिलकर अंग्रेज़ों से टक्कर ली। यद्यपि वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुए तो भी इसके पश्चात् अंग्रेज़ों ने भारतीयों के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया उससे घृणा की भावना ने जोर पकड़ा। धीरे-धीरे यह भावना अंग्रेज़ों के प्रति शत्रुता में बदल गई जो भारतीय राष्ट्रवाद का आधार बनी।

3. राजनीतिक एकता (Political Unity)-भारत प्राचीन काल से भौगोलिक दृष्टि से एक देश रहा है लेकिन इसमें राजनीतिक एकता का अभाव रहा है। सम्राट अशोक समुद्रगुप्त तथा अकबर जैसे राजाओं ने भारत की प्राकृतिक सीमाओं तक विजय प्राप्त करके राजनीतिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया था। मुग़लों के काल में केवल शासन काल में ही एकता आ पाई थी। साधारण लोग एक दूसरे से काफी दूर थे। अंग्रेज़ों ने 1849 तक समस्त भारत को जीतकर एक राजनैतिक इकाई के रूप में बांध दिया। उन्होंने सभी भारतवासियों के साथ एक समान दुर्व्यवहार और अत्याचार किये जिससे जनता में रोष की अग्नि भड़क उठी। यातायात के साधनों के विकास तथा अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार से विभिन्न प्रान्तों के लोगों को एक-दूसरे से विचार-विमर्श का अवसर प्राप्त हुआ जिससे राजनीतिक एकता का विकास हुआ।

4. पाश्चात्य शिक्षा (Western Education)-ज्यों-ज्यों भारतीय अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में आए, त्यों-त्यों उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। उन्होंने हॉब्स, लॉक, रूसो, मिल, स्मिथ आदि के विचारों से नई रोशनी ग्रहण की। इंग्लैंड में चल रहे '**कानून के शासन**' (Rule of Law) से उनके मन में भारत में समानता, स्वतन्त्रता तथा बन्धुता का प्रसार करने की इच्छा जागृत हुई। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय चेतना के जागरण में पाश्चात्य शिक्षा ने महत्वपूर्ण योगदान किया।

5. साहित्य व समाचार पत्र (Literature and Press)-19वीं शताब्दी में अंग्रेज़ों द्वारा भारतीयों पर किये गये अत्याचारों का वर्णन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य में आना स्वाभाविक था। क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है। बंकिम चन्द्र का 'आनन्द मठ', स्वामी दयानन्द का 'सत्यार्थ प्रकाश', शरत चन्द्र का 'पाथेरदावी' आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं। इस काल में साहित्य कम लिखे गए पर समाचार पत्रों की संख्या अधिक थी जिन्हें लोग बहुत चाव से पढ़ते थे। 1885 में लगभग 700 समाचार पत्र छपते थे, जिनमें अमृत बाज़ार, ट्रिब्यून, मराठा, बंगाली, हिन्दू आदि प्रमुख हैं। इन समाचार पत्रों ने भारत के शिक्षित लोगों में राष्ट्रीयता तथा देश प्रेम का भाव जगाने में योगदान दिया।

6. आर्थिक शोषण (Economic Exploitation)- भारत की राजनीति... जब अंग्रेज़ों के हाथ में आ गई तो उन्होंने भारत का आर्थिक शोषण करना आरम्भ कर दिया। यह आर्थिक शोषण भारत में राष्ट्रीयता के विकास में बाधा का एक प्रमुख ... रहा। भारत, जहां से कपड़ा, गर्म मसाले आदि निर्यात करता था, अंग्रेज़ों की नीति ... कारण वहां भारत आयात करने की स्थिति में आ गया। भारत से कच्चा माल इंग्लैंड ... जाकर मशीनों द्वारा उसे चमकाकर भारत में बीस, तीस गुणा अधिक दामों पर बेचना ... किया जिससे भारत के उद्योग धन्धे समाप्त होने लगे। भारत का धन इंग्लैंड पहुंचने ... भारतीय न केवल बेकार हुए उन्हें अत्यधिक गरीबी का भी सामना करना पड़ा। ... स्थिति में भारतीयों में उपद्रव की भावना पनपना स्वाभाविक था। वे अंग्रेज़ों को ... शत्रु मानने लगे और उससे छुटकारा पाने का प्रयास करने लगे।

7. रंग-भेद व पक्षपात की नीति (Approach and Policy ... Discrimination)-प्रत्येक क्षेत्र में अंग्रेज़ों द्वारा भारतीयों से किये जाने वाला पक्षपात एवं भेदभाव की नीति भी भारतीयों में राष्ट्रीयता जागरण का कारण बनी। अंग्रेज भारतीयों को हीन दृष्टि से देखते थे। उन्हें सूअर, दरिद्र जैसे शब्दों से पुकारते थे। समान पद पर काम करने वाले भारतीयों को अंग्रेज़ों से कम वेतन दिया जाता। उनके कानूनी ... सामाजिक अधिकार न के बराबर थे। भारतीयों को किसी प्रकार के हथियार रखने की स्वतन्त्रता नहीं थी जबकि यूरोपियन हथियार लेकर घूमते थे। यदि कोई मुकद्दमा अंग्रेज़ और भारतीयों के बीच होता था उसमें अंग्रेज़ न्यायाधीश ही फैसला करता था। भारतीयों को मुकद्दमा सुनने का अधिकार न था। इन सब बातों से भारतीयों में रोष उत्पन्न हुआ।

8. विदेशों में राष्ट्रीय आन्दोलन (Freedom Movement Abroad)-19वीं शताब्दी में विश्व के विभिन्न भागों में राष्ट्रीय आन्दोलन हुए। यूनान का स्वाधीनता संग्राम, इटली व जर्मनी के राष्ट्रवादी आन्दोलनों से एकीकरण, अमरीका का स्वाधीनता संग्राम तथा दास प्रथा को समाप्त करने वाला गृह युद्ध आदि ने भारतीयों के मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला और वे भी अपने देश भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए क्रान्ति करने लगे।

1857 का महान् विद्रोह अथवा स्वतन्त्रता के लिए प्रथम संग्राम

(The Great Rebellion of 1857 or First War of Independence)

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना 1600 ई० में इंग्लैंड में हुई थी तथा कम्पनी की तरफ से सर टॉमस पहले अंग्रेज़ अधिकारी के रूप में भारत में 1608 ई० में आया था। मुग़ल बादशाह जहांगीर के दरबार में पेश होकर उसने कुछ व्यापारिक सुविधाओं की मांग की थी जो मान ली गई थीं। तत्पश्चात् धीरे-धीरे भारत में अंग्रेज़ों का आना-जाना

बढ़ने लगा। 1757 में लार्ड क्लाइव ने प्लासी की लड़ाई में नवाब सिराजुद्दौला को हराकर बंगाल को अपने प्रभाव में कर लिया। तब से 1856 तक अंग्रेज़ों ने भारत के विभिन्न भागों को जीतकर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। लार्ड वैलज़ली (1799-1805 ई०) ने सहायक संधि द्वारा तथा लार्ड डलहौजी (1848-1856 ई०) ने लैप्स की नीति द्वारा बहुत से देशी राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया। परिणामस्वरूप भारत के विभिन्न भागों में रोष की अग्नि भड़क उठी।

अनेक अन्य राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक कारणों से यह अग्नि 1857 में ज्वालामुखी का रूप धारण कर गई। जिसे इतिहास में 'प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम' के नाम से पुकारा जाता है।

1857 के विद्रोह के प्रभाव

(Effects of the Revolt of 1857)

1. भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज्य समाप्त हो गया तथा भारत पर सीधा अंग्रेज़ी शासन प्रारम्भ हो गया।

2. मुग़ल बादशाह बहादुर शाह को कैद कर के रंगून भेज दिया गया और उनके वंशजों को सभी प्रकार के उत्तराधिकारों और विशेषाधिकारों से वंचित कर दिया गया।

3. भारत की शासन व्यवस्था का भार, भारत मन्त्री को सौंपा गया तथा उसे इंग्लैंड की संसद के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। उसकी सहायता के लिए 15 सदस्यों की एक समिति बना दी गई।

4. महारानी विक्टोरिया ने 1858 में एक प्रसिद्ध घोषणा की जिसमें अंग्रेज़ी सरकार की भारत के प्रति शासन नीति के आधार समानता एवं बन्धुत्व रखे गये तथा सार्वजनिक कल्याण उद्देश्य निश्चित किया गया।

5. महारानी विक्टोरिया ने यह भी घोषणा की कि भविष्य में अंग्रेज़ राज्य विस्तार की नीति नहीं अपनाएंगे तथा देशी राजाओं व नवाबों के विशेषाधिकारों की रक्षा करेंगे।

6. विद्रोह पर हुए खर्च की क्षति पूर्ति के लिए अनेक नये कर लगाए गये।

7. धीरे-धीरे भारतीय सैनिकों की संख्या कम करके यूरोपीय सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गई।

8. अंग्रेज़ों ने 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति अपनाकर विभिन्न जातियों को कमज़ोर करना आरम्भ कर दिया।

9. 1857 का विद्रोह भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का महत्त्वपूर्ण कारण बना।

जनसंख्या
(Population)

जनसंख्या की असाधारण वृद्धि ने संसार के समक्ष एक भीषण समस्या उत्पन्न कर दी है। यह समस्या व्यक्ति, समाज एवं पूरे विश्व पर दुष्प्रभाव डालती है। यह मनुष्य के सुख, स्वास्थ्य एवं सम्पत्ति, राष्ट्र की प्रगति एवं समृद्धि और विश्व की सुरक्षा एवं शांति को बुरी तरह से प्रभावित करती है। इस समस्या के निवारण के लिए छात्रों को प्रारम्भिक स्तर से ही जनसंख्या के बारे में शिक्षित करने का विचार अस्तित्व में आया।

जनसंख्या शिक्षा का अर्थ

जनसंख्या शिक्षा वह शिक्षा है जिसके द्वारा छात्रों को जनसंख्या वृद्धि और जीवन-स्तर के सम्बन्धों की जानकारी दी जाती है। इसके द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से छात्रों को जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं के प्रति जागरूक बनाया जाता है। उसे उचित समय पर उचित निर्णय लेने के योग्य बनाया जाता है। जनसंख्या शिक्षा के द्वारा ऐसी भावना या विचारधारा बालक में उत्पन्न की जाती है जिससे वह उन्नत जीवन स्तर को समझे और उसको अपनाए। जनसंख्या शिक्षा के द्वारा जनसंख्या वृद्धि व जीवन की गुणवत्ता के पारस्परिक सम्बन्धों का बोध करवाया जाता है।

जनसंख्या शिक्षा द्वारा छात्रों में जनसंख्या के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण, चेतना, उत्तरदायित्व, अभिवृत्ति एवं व्यवहारों का विकास होता है। जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक कार्यक्रम है। इसमें जनसंख्या वृद्धि की गति, संसार में जनसंख्या वृद्धि, विभिन्न देशों के साथ भारत की जनसंख्या सम्बन्धी तुलना, भौतिक साधन व जनसंख्या संतुलन आदि का बोध बालकों को कराया जाता है।

विश्व जनसंख्या दिवस 11 जुलाई को मनाया जाता है।

जनसंख्या शिक्षा शब्द का प्रयोग प्रो. वैलेंड (Prof. Wayland) ने 1962 के पश्चात् किया।

सितम्बर 1970 ने यूनेस्को की ओर से बैंकाक में आयोजित की गई जनसंख्या शिक्षा संगोष्ठी द्वारा बताया गया कि -

"जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक कार्यक्रम है जिसमें परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की जनसंख्या की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन का उद्देश्य छात्रों में इस स्थिति के प्रति विवेकपूर्ण, उत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टिकोण व व्यवहार का विकास हो।"

वीडरमैन के अनुसार-"जनसंख्या शिक्षा की परिभाषा उस प्रक्रिया की भाँति की जा सकती है जिससे छात्र जनसंख्या प्रक्रियाओं, जनसंख्या की विशेषताएँ, जनसंख्या में

परिवर्तन के कारणों एवं इसके परिणामों जोकि स्वयं के लिए, उसके समाज तथा सम्पूर्ण समाज के लिए घटित होते हैं, के सम्बन्ध में शोध तथा खोज करते हैं।"

डॉ. वी.के.आर.वी.राव के शब्दों में-जनसंख्या शिक्षा परिवार के आकार के सम्बन्ध में सही अभिवृत्ति विकसित करने के लिए प्रेरणा शक्ति प्रदान करती है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार-जनसंख्या शिक्षा छात्र समुदाय में जनसंख्या की वृद्धि नीति कार्यक्रमों तथा लघु परिवार की अवधारणा को समझने का साधन है जिससे जनसमुदाय पर पड़ रहे अथवा पड़ने वाले विपरीत प्रभाव की जानकारी दी जा सके।

जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य

श्री हंसराज भाटिया ने 1969 में जनसंख्या शिक्षा के छः प्रमुख उद्देश्य बताए थे-

1. विश्व जनसंख्या के सन्दर्भ में देश की जनसंख्या वृद्धि दर, जनसांख्यिक रूपरेखा सहित जनसंख्या गति विधा का बुनियादी ज्ञान छात्रों को प्रदान करना।

2. आर्थिक विकास तथा उच्च स्तर का स्वास्थ्य, शिक्षा, घर, भोजन तथा जीवन की अन्य सुविधाओं के साथ व भावी जीवन स्तर की प्राप्ति के लिए जनसांख्यिकी वर्तमान विशेषताओं के महत्व को मूल्यांकित करने की योग्यता प्रदान करना।

3. छात्रों को इस तथ्य से परिचित कराना कि परिवार के हित के लिए परिवार का आकार आसानी से नियोजित हो सकता है। साथ ही आज के युग के लिए परिवार का बड़ा होना आवश्यक नहीं है।

4. छात्रों को माता व सन्तान के स्वास्थ्य के जोखिम का ज्ञान कराना।

5. छात्रों को बताना कि छोटे परिवार में ही हर सदस्य को उच्च जीवन स्तर प्राप्त करने की संभावना रहती है।

6. राष्ट्रहित के लिए सरकारी परिवार नियोजन योजना का ज्ञान कराना।

जनसंख्या शिक्षा का क्षेत्र

जनसंख्या शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित तथ्य शामिल किए जाते हैं-

1. जनसंख्या की विशेषताओं का अध्ययन करना।

2. जनसंख्या की गणनात्मकता का अध्ययन करना।

3. जनसंख्या के विभिन्न तत्वों व उनकी परस्पर सम्बद्धता एवं असम्बद्धता के मानव जीवन पर प्रभावों का अध्ययन करना।

4. जनसंख्या के गुणात्मक व संख्यात्मक विकास का पता करना।

5. जनसंख्या से सम्बन्धित शैक्षिक कार्यक्रम विभक्त करना।

6. जनसाधारण को जनसंख्या नियन्त्रण के उपाय बताना व सीमा से अधिक जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों से अवगत कराना।

7. जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए शैक्षिक तथा निदानात्मक उपाय काम में लाना।

8. जनसंख्या से सम्बन्धित निर्धारित तत्वों का पता लगाना।

जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व

कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति आधुनिक समय के सन्दर्भ में जनसंख्या शिक्षा के महत्व और आवश्यकता की उपेक्षा नहीं कर सकता। आज जनसंख्या शिक्षा के द्वारा इस बात पर बल दिया जा सकता है कि विद्यार्थी समाज तीव्रगति से बढ़ती हुई जनसंख्या से उत्पन्न दुष्परिणामों से अवगत हो। उसके कारणों की खोज करें व उसके ह्रास को दूर करने के उपायों पर चिंतन करके 'जनसंख्या वृद्धि रोको' नारे के साथ एक जन आन्दोलन खड़ा करें जिससे सबका ध्यान इस ज्वलन्त समस्या की ओर आकृष्ट हो सके एवं सभी जन आन्दोलनों में शामिल होकर इस समस्या के खिलाफ संघर्ष कर सकें।

जनसंख्या शिक्षा एक महत्वपूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा युवा छात्र व छात्राएं अपनी उन्नति के लिए संकल्प लेने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। जनसंख्या शिक्षा प्रत्येक मनुष्य को भोजन, आवास, स्वास्थ्य, रोजगार, शिक्षा प्राप्ति के अवसर व उच्च जीवन-स्तर की समस्याओं का हल प्रस्तुत करती है।

जनसंख्या शिक्षा छात्रों को जनसंख्या सम्बन्धी समस्याओं की प्रकृति को समझने में सहायता प्रदान करती है। जैसे-जनसंख्या शिक्षा के माध्यम से समझाया जा सकता है कि अन्न उत्पादन व जनसंख्या वृद्धि में क्या सम्बन्ध है।

इसी प्रकार 1951-52 में 8.5 करोड़ आबादी बेरोजगार थी। सन् 1965 के अन्त में 31 करोड़ रोजगार की व्यवस्था भारत ने की। फिर भी उस समय 10 करोड़ आदमी बेरोजगार रह गए। इस प्रकार आबादी से सम्बन्धित और भी समस्याएँ हैं, जैसे-जल एवं हवा की पवित्रता, गन्दी एवं अविकसित बस्तियों की वृद्धि, बसों, जनपथों, जन-स्थानों पर भीषण भीड़ आदि।

जनसंख्या शिक्षा के अन्तर्गत मात्र जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याएँ ही नहीं आतीं, वरन् जनसंख्या वृद्धि दर अत्यन्त धीमी या निम्न वृद्धि पर होने के कारण उत्पन्न हुई समस्याएँ भी आती हैं। वास्तव में देश में आर्थिक व सामाजिक उन्नति लाने के लिए जनसंख्या शिक्षा वह वैज्ञानिक माध्यम है जिसके द्वारा परिवार नियोजन को पारिवारिक जीवन में सहजतापूर्वक लाया जा सकता है तथा आबादी की बाढ़ पर बाँध खड़ा कर उसे

...कारी बनाया जा सकता है। हम जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता व महत्व को निम्नानुसार व्यक्त कर सकते हैं-

1. छोटा परिवार सदैव सुखी होता है। यह बात जनसंख्या शिक्षा द्वारा छात्रों के मन में बैठ जाएँ तो अपने आप परिवार नियोजन करेंगे।

2. जनसंख्या शिक्षा आज राष्ट्रीय विकास के साथ-साथ सभी पहलुओं को प्रभावित करती है। इसी कारण जनसंख्या शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है।

3. जनसंख्या शिक्षा से छात्रों में अच्छी नागरिकता व राष्ट्रीयता की भावना को विकास किया जा सकता है।

4. जनसंख्या शिक्षा परिवार नियोजन से सम्बन्धित कार्यक्रम नहीं है। यह कोई प्रचार-प्रसार का कार्यक्रम नहीं है, किन्तु विद्यालयी पाठ्यक्रम का अंग है जिसके विश्व अध्ययन से छात्रों में समस्या की समझ विकसित होती है एवं छात्र कालान्तर में इस समस्या के समाधान के लिए अपने मौलिक उपाय खोज सकते हैं।

5. जनसंख्या शिक्षा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने की प्रेरणा देती है। इसके द्वारा बाल-विवाह, दहेज प्रथा, अशिक्षा, भाग्यवाद, अधिक सन्तान ईश्वर का वरदान की भावना आदि बुराइयों को दूर करने की प्रेरणा मिलती है।

6. जनसंख्या शिक्षा शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व को निश्चित करती है। उनमें माता-पिता के उत्तरदायित्व की भावना का विकास करती है।

7. जनसंख्या शिक्षा भावी नागरिकों को स्तरीय जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है जो विकसित राष्ट्र का मूल है।

इस प्रकार हम संक्षेप में कह सकते हैं कि जनसंख्या शिक्षा का प्रचार-प्रसार देश को विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में लाने के लिए आवश्यक कदम है।

जनसंख्या शिक्षा में करणीय कार्य एवं शिक्षक की भूमिका

करणीय कार्य-जनसंख्या शिक्षा में अनेक समस्याएँ आ रही हैं जिससे देश में उसे भली-भाँति लागू नहीं किया जा सका है। जैसे-

जनसंख्या शिक्षा के स्वरूप की अस्पष्टता

1. पाठ्यक्रम के निर्माण की समस्या
2. प्रशिक्षित व समर्पित अध्यापकों का अभाव
3. अस्पष्ट उद्देश्य
4. अल्पसंख्यकों का असहयोग

5. सामाजिक कुरीतियाँ
6. शिक्षण विधियों का अभाव
7. पाठ्यपुस्तकों का अभाव
8. अभिभावकों का असहयोग
9. अन्धविश्वास
10. सामाजिक कुरीतियाँ
11. रोजगार से न जुड़ पाना।

राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान उदयपुर ने जनसंख्या शिक्षा में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए एक अलग ही आयोग गठित किया है जो कि अग्रलिखित कार्य कर रहा है-

1. पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों की रचना-संस्थान विषयानुसार कक्षा 3 से 8 तक के स्तर की अनेक पुस्तकें प्रकाशित कर चुका है।

2. प्रशिक्षण-संस्थान की तरफ से सेवारत व सेवापूर्व प्रशिक्षण देने हेतु पाठ्यक्रम तैयार किया जा चुका है एवं प्रशिक्षण प्रारम्भ हो चुका है, लेकिन प्रशिक्षक की गति धीमी है। समस्या की गम्भीरता को देखते हुए इसे अधिक प्रभावी बनाने की आवश्यकता है।

3. शिक्षा-प्रसार-देश में निरक्षरता को दूर करने के लिए विशेष ध्यान दिया जा रहा है। प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, शिक्षाकर्मी योजनाओं के द्वारा साक्षरता का प्रसार किया जा रहा है। इससे अन्धविश्वास, कुरीतियाँ आदि दूर हो सकेंगी। राज्य सरकार द्वारा शिक्षा को अधिक बढ़ावा देकर निरक्षरता को पूर्णतया तय सीमा में समाप्त करना होगा।

जब तक निरक्षरता रहेगी कोई भी कार्यक्रम जन-जन तक नहीं पहुँच पाएगा। अत: प्राथमिक स्तर पर शिक्षा को अनिवार्य किया जाए।

4. स्पष्ट उद्देश्य निर्धारण-शिक्षाविद्, जनसंख्याविद् तथा शिक्षा-अधिकारियों के द्वारा जनसंख्या शिक्षा का स्वरूप तथा उद्देश्यों का स्पष्ट निर्धारण किया जा चुका है इस पर भी देश में जनसंख्या शिक्षा अभी तक विद्यालय शिक्षण का प्रमुख अंग नहीं बन सकी है। देशवासियों ने अभी इसे पूर्णतया स्वीकार नहीं किया है। अल्पसंख्यकों एवं अशिक्षितों के मन में जनसंख्या शिक्षा को लेकर शंका है जिसे दूर किया जाना अपेक्षित है।

जनसंख्या शिक्षा में अध्यापक की भूमिका

भारत में जनसंख्या की वृद्धि तीव्र गति पर है जिसे रोकने का एकमात्र उपाय है शिक्षा। जब भावी नागरिक शिक्षित होंगे, जनसंख्या से पड़ने वाले दुष्प्रभावों के बारे में समझ रखते होंगे, तब वे स्वयं ही जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए आगे खड़े होंगे।

आज भी हम देख रहे हैं कि जितने शिक्षित युवा है उनके परिवारों में एक या दो बच्चे हैं। यह चमत्कार शिक्षा के कारण ही हुआ है और यह शिक्षा किसी और ने नहीं अध्यापक ने ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दी है।

डॉ० कोठारी के मतानुसार-भारत के भाग्य का निर्माण कक्षाओं में हो रहा है। शिक्षक बालकों के मानसिक बोध को देश की जनसंख्या नीति निर्धारण में, उसके पालन में सक्रिय योगदान देने के योग्य बनायें।

ऐसी स्थिति में शिक्षक की भूमिका अग्रानुसार प्रकट की जा सकती है-

1. अनुसंधान एवं शोधकार्य-शिक्षक को जनसंख्या के विभिन्न पहलुओं पर शोध एवं अनुसंधान कार्य करना चाहिए ताकि भावी कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई जा सके।

2. स्वाध्याय-शिक्षक जनसंख्या से सम्बन्धित उपलब्ध साहित्य का अध्ययन करें एवं प्राप्त ज्ञान के माध्यम से छात्रों को सम्बन्धित विषय का ज्ञान रुचिपूर्ण तरीके से सफलतापूर्वक कराएँ।

3. सहायक सामग्री निर्माण-शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न अभिकरणों के माध्यम से सहायक सामग्री का निर्माण करने का प्रयास करें।

4. शिक्षक जनसंख्या शिक्षा के विवादास्पद बिन्दुओं से स्वयं को अलग रखें। कभी भी अनावश्यक विवाद में न पड़ें।

5. शिक्षक बालकों को जन्म व मृत्युदर की जानकारी देते हुए जनसंख्या की समस्या के बारे में अवगत कराएँ।

शिक्षक वर्तमान समय की विभिन्न समस्याओं जैसे-बेरोजगारी, हर जगह भीड़-भाड़, महामारियाँ, अकाल, दुर्घटनाएँ आदि को जनसंख्या वृद्धि से जोड़कर छात्रों को बढ़ती जनसंख्या से होने वाले दुष्परिणामों के बारे में समझाएँ।

6. शिक्षक अपने विद्यालय में होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों जैसे-

वाद-विवाद, निबन्ध लेखन, कविता पाठ, नक्शे व प्रतिरूप बनाना, प्रदर्शनी लगवाना, आंकड़ों की जानकारी, कहानी-पठन, चित्र-प्रदर्शन, समाचार-पत्र-वाचन को जनसंख्या शिक्षा से जोड़ें अर्थात् उपर्युक्त कार्यक्रम को जनशिक्षण में उपयोग में लाएँ। जैसे-समाचार पत्र-पठन में जब कहीं किसी दुर्घटना का जिक्र आए तो इसे जनसंख्या वृद्धि एवं भीड़-भाड़ से जोड़कर छात्रों को जनसंख्या की समस्या के बारे में जागरूक करते हुए बताएँ कि देश की आजादी के समय सम्पूर्ण (अविभक्त) भारत की जनसंख्या मात्र 35 करोड़ थी एवं दुर्घटनाएँ नाममात्र की भी नहीं थीं। आधुनिक तकनीकी का अभाव था, फिर भी लोग सुखी थे। आज के समान कदम-कदम पर कठिनाइयाँ नहीं थीं।

समकालीन विश्व में लोकतन्त्र
(Democracy in the Contemporary World)

लोकतन्त्र का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Democracy)

'लोकतन्त्र' शब्द 'लोक' और 'तन्त्र' के जोड़ से बना है। लोक का अर्थ है जनता और तन्त्र का अर्थ है राज्य का प्रबन्ध। अत: लोकतन्त्र का अर्थ हुआ 'जनता का राज्य प्रबन्ध'। लोकतन्त्र के दो पक्ष हैं। एक शासन तन्त्र तथा दूसरा जीवन विधि। शासन तन्त्र के रूप में लोकतन्त्र शासन की वह प्रणाली है जिसमें जनता का शासन जनता द्वारा और जनता के लिए होता है। (Democracy is the government of the people, by the people and for the people - **Abraham Lincoln.**)

परिभाषाएँ (Definition)-कई विद्वानों ने लोकतन्त्र की परिभाषाएं दी हैं। कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नलिखित हैं-

1. हैरेडोटस (Herdotus)का विचार, "लोकतन्त्र वह शासन प्रणाली है जिसमें राज्य की सर्वोच्च सत्ता समूचे समुदाय के हाथों में होती है।"

2. प्रो० डायसी (Prof. Dicey) का विचार, "लोकतन्त्र एक ऐसी शासन प्रणाली है जिसमें शासन वर्ग समूचे राष्ट्र का एक बड़ा भाग होता है।"

3. लार्ड ब्राइस (Lord Bryce) का विचार, "लोकतन्त्र एक ऐसी शासन प्रणाली है जिसमें राज्य की शासन शक्ति किसी एक वर्ग या वर्गों के हाथों में नहीं होती बल्कि समूचे समुदाय के हाथों में होती है।"

4. प्रो० सीले (Prof. Seeley) के अनुसार, '-लोकतन्त्र एक ऐसी सरकार है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का भाग होता है।"

लोकतन्त्र में मुख्य शासन सत्ता लोगों के हाथों में होती है और जनता का राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक कल्याण ही राज्य का मुख्य उद्देश्य होता है।

लोकतन्त्र के मुख्य सिद्धान्त
(Main Principles of Democracy)

लोकतन्त्र के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. स्वतन्त्रता (Liberty)-नागरिकों के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए लोकतन्त्र शासन में अनेक प्रकार की स्वतन्त्रता दी गई है। जैसे-विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता, समुदाय बनाने की स्वतन्त्रता तथा सभा करने की स्वतन्त्रता आदि।

2. समानता (Equality)-लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली में देश के सभी नागरिकों को समान महत्त्व दिया जाता है। जाति, रंग-भेद, धर्म, लिंग, भाषा, वंश आदि के आधार पर लोगों में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जाता है। सभी को अपने जीवन के विकास करने का समान अवसर दिया जाता है।

3. भाईचारा (Fraternity)-लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली में सहयोग तथा सद्भावना को बल दिया जाता है। भाईचारे की भावना का विकास हो इसलिए सभी नागरिकों के साथ समान व्यवहार किया जाता है।

4. व्यस्क मताधिकार (Adult Franchise)-लोकतन्त्र में प्रत्येक नागरिक एक निश्चित आयु के पश्चात् वोट देने का अधिकार प्राप्त है। लोकतन्त्र में व्यस्क मताधिकार का बहुत महत्त्व है। वोट का अधिकार देते समय राज्य द्वारा जाति, भाषा, लिंग आदि का आधार नहीं बनाया जाता।

5. प्रभुसत्ता लोगों के पास (Sovereignty in the hands of People)-लोकतन्त्र में जनता ही शासन की शक्ति का मुख्य स्रोत है। जनता ही अपने प्रतिनिधियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चुनाव करती है और यदि जनता चाहे तो अपने मताधिकार का प्रयोग कर सरकार को बदल सकती है।

6. राज्य लोकहित का साधन (State a means of Public Welfare)-लोकतन्त्रीय शासन में लोकहित के कार्य को सम्पन्न करने के लिए राज्य एक साधन है, साध्य नहीं।

7. मौलिक अधिकार (Fundamental Rights)-लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली में नागरिकों को कई प्रकार के मौलिक अधिकार दिये गये हैं तथा इन अधिकारों का संविधान में भी उल्लेख किया गया है जिससे कोई भी सरकार नागरिकों से उनके अधिकार नहीं छीन सकती।

8. बहुमत का शासन (Rule of Majority)-लोकतन्त्र में बहुमत का शासन होता है। समय-समय पर होने वाले चुनावों में जिनको सबसे अधिक वोट प्राप्त होते हैं उसी दल को शासन करने का अवसर प्राप्त होता है। सरकार सभी निर्णय बहुमत के द्वारा ही लेती है।

9. स्वतन्त्र न्यायपालिका (Independence Judiciary)-लोकतन्त्र में न्यायपालिका को स्वतन्त्र रखा जाता है। एक स्वतन्त्र न्यायपालिका ही नागरिक के मौलिक अधिकारों की रक्षा कर सकती है।

10. शान्तिपूर्ण साधनों में विश्वास (Faith in Peaceful Method)-लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था में सभी कार्य शान्तिपूर्ण एवं संवैधानिक ढंग से किये जाते हैं। इसमें किसी भी कार्य में हिंसा का सहारा नहीं लिया जाता।

11. अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा (Protection of Minority Interest)- लोकतन्त्र में बहुमत के द्वारा शासन चलाया जाता है परन्तु अल्पसंख्यकों के हितों की पूरी रक्षा की जाती है।

12. व्यक्ति की प्रतिष्ठा (Dignity of Person)- लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान दिया जाता है तथा उसे विकास का अवसर दिया जाता है कानून उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा करती है।

13. कानून का शासन (Rule of Law)- लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली में देश का शासन किसी व्यक्ति विशेष पर नहीं बल्कि कानूनों पर आधारित है। सबके लिए एक कानून हैं। कानून की उल्लंघना करने पर सबको एक सा दंड दिया जाता है।

लोकतन्त्र की सफलता के लिए उस देश के नागरिकों का शिक्षित होना आवश्यक है। उसमें जागरुकता होनी चाहिए। लोगों में निःस्वार्थ की भावना, ईमानदारी, कर्तव्य पालन, अनुशासन प्रियता, लोक सेवा की सच्ची लगन, अच्छा नेतृत्व आदि गुण होने चाहिए। भारतीय जनता की लोकतन्त्र में पूर्ण आस्था है इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति से यहाँ लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली चली आ रही है। लोक मानसिक एवं बौद्धिक रूप से लोकतन्त्र के प्रति सचेत हैं।

धर्म निरपेक्षता
[Secularism]

प्रजातन्त्र और धर्म निरपेक्षता में गहरा सम्बन्ध है। धर्म निरपेक्षता भारतीय समाज की एक महान् विशेषता है। भारत देश ने लोकतान्त्रिक धर्म निरपेक्ष समाज के स्वरूप को अपनाया है।

धर्म निरपेक्षता का अर्थ एवं परिभाषा
[Meaning and Definition of Secularism]

धर्म निरपेक्षता से तात्पर्य यह सिद्धान्त है कि नैतिकता आधुनिक जीवन में केवल अच्छाई में विश्वास का सभी प्रकार त्याग कर मानवता की भलाई पर आधारित होनी चाहिए।

1. **पं० नेहरू** (Pt. Nehru) के अनुसार, "धर्म निरपेक्षता कोई धार्मिक संकीर्णता नहीं है अपितु यह तो धार्मिक व्यापकता है।" ("Secularism means not religious narrowness but religious broadness.")

2. **डॉ० बी० आर० अम्बेदकर** (B.R. Ambedkar) के अनुसार, "धर्म निरपेक्षता से केवल इतना अभिप्राय है कि संसद शेष व्यक्तियों पर बलपूर्वक किसी एक धर्म को नहीं लागू हो सकेगी।" ("All that a secular state means is that this parliament

shall not be competent to force any particular religious upon rest of the people.")

धर्म निरपेक्ष देश में कोई राज्य धर्म नहीं होता और वह देश सभी धर्मों का समान स्थान देता है।

प्रो. डोनाल्ड स्मिथ के अनुसार, "धर्म निरपेक्ष राज्य एक ऐसा राज्य है जो सभी व्यक्तियों और समूहों को धार्मिक स्वतन्त्रता देता है। जो व्यक्तियों से नागरिक के आधार पर व्यवहार करता है भले ही उनका धर्म कोई भी क्यों न हो। यह राज्य संवैधानिक तौर पर किसी धर्म से जुड़ा नहीं होता और न ही उसकी किसी धार्मिक मामले में हस्तक्षेप की इच्छा होती है।"

भारतीय संविधान के 25(1) अनुच्छेद के अनुसार, "सभी नागरिकों को अपनी आत्मा की आवाज़ पर कार्य करने की स्वतन्त्रता है और उसे किसी भी धर्म को मानने, प्रचार करने की स्वतन्त्रता है।"

इसका मतलब यह नहीं कि धर्म निरपेक्ष राज्य में वहां का द्वेश धर्म का विरोध करता है। धर्म निरपेक्षता का अर्थ इतना है कि धर्म और राज्य एक दूसरे से भिन्न और स्वतन्त्र हैं और दोनों का अलग और अपना-अपना क्षेत्र है। राज्य किसी भी धर्म को न तो बढ़ावा देता है और न ही किसी धर्म के विरुद्ध करता है। इसका अर्थ यह भी नहीं कि इस प्रकार का देश धर्म विरोधी है। यह बात भी ठीक है "जब कोई धर्म बिना नैतिक नियमों के नहीं हो सकता, इसी तरह सारी नैतिकता भी किसी धर्म का भाग नहीं बन सकती है।"

संविधान के जनक डॉ. अम्बेदकर को किसी धर्म का वर्चस्व स्वीकार नहीं था। संविधान में संसद को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी धर्म को राष्ट्र धर्म का दर्जा दे या लोगों पर किसी धर्म को जबरन लादे या राष्ट्रीय कानून बनाने में किसी धर्म को आधार बनाये। उन सबका सार संक्षेप में यह है कि भारत में राष्ट्र धर्म नाम का कोई धर्म नहीं होगा, राज्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी धर्म पर आधारित नहीं होगा, राज्य धर्म के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं बरतेगा, सब लोगों को अपने-अपने धर्मों को मानने एवं उनका प्रचार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी और राज्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में किसी धर्म के प्रचार में भाग नहीं लेगा। यहां तक राज्य द्वारा संचालित या सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में भी धर्म की शिक्षा नहीं दी जायेगी।

हर धर्म और सांस्कृतिक समूहों को अपनी धार्मिक संस्थाएं खोलने और चलाने की आज्ञा है ताकि वे अपनी संस्कृति को बढ़ावा दे सकें। सभी सरकारी और अनुदान प्राप्त संस्थाओं में प्रवेश, नियुक्ति में धर्म निरपेक्षता का नियम प्रयोग करें। भारत विभिन्न धर्मावलम्बी देश है परन्तु धर्म निरपेक्षता के कारण विभिन्न धर्मों के लोग आपस में मिलजुल कर रहते हैं।

आपदा प्रबंधन

(Disaster Management)

किसी भी संकट के आने से उत्पन्न हुई समस्यात्मक स्थिति को आपदा कहते। इस आपदा से निपटने सम्बन्धी कार्यों के निर्धारण को अथवा आपदा के समय की वाली व्यवस्था को आपदा प्रबन्धन कहते हैं। आपदाएँ मुख्यत: दो प्रकार की होती आपदा कहलाती है। प्राकृतिक आपदाएँ निम्नलिखित हैं-

1. प्राकृतिक आपदाएँ-प्रकृति के द्वारा उत्पन्न संकट के बाद की स्थिति प्राकृतिक

(अ) बाढ़ (ब) भूकम्प (स) ज्वालामुखी

(द) तूफान (य) महामारी (र) दावानल

1. बाढ़-अतिवृष्टि अथवा किसी जलस्रोत के टूट जाने के अतिरिक्त हिमस्खलन से भी प्राय: बाढ़ आती रहती है। नदियों के तटवर्ती इलाकों में इसका विशेष प्रकोप रहता है। बाढ़ में चारों ओर पानी ही पानी हो जाता है। कई जीव, जन्तु व घर बह जाते हैं तथा महाप्रलय हो जाता है। सड़क व यातायात मार्ग अवरुद्ध हो जाने पर तो स्थिति और भी विकट हो जाती है। यातायात व संचार के ठप्प हो जाने से वह इलाका शेष दुनिया से कट जाता है।

बाढ़ आ जाने पर एवं उससे पूर्व करणीय कार्य

1. बाढ़ प्रभावित इलाकों में अपना घर नहीं बनाएँ।
2. नदियों से पर्याप्त दूरी पर ही निवास करें।
3. अधिक वर्षा वाले दिनों में नदी की ओर न जाएँ।
4. बाढ़ की चेतावनी पर ऊँचे व सुरक्षित स्थान पर चले जाएँ।
5. बाढ़ के दौरान कच्चे घर व नीचे इलाकों में नहीं रहें।
6. बाढ़ के आने पर अपनी जान को प्राथमिकता दें इसके बाद कीमती सामान को।
7. लोगों से सुरक्षित स्थान पर पहुँचने में उनकी सहायता करें।

2. भूकम्प-भूकम्प में धरती हिल जाती है। देखते ही देखते अनेक भवन धराशायी हो जाते हैं। लोग दबकर मर जाते हैं। अनेक लोग घायल हो जाते हैं।

बचाव के उपाय-

1. भूकम्प प्रभावित इलाकों में मकान नहीं बनाएँ।
2. मकान को लोहे के सरियों एवं अच्छी नींव द्वारा भूकम्परोधी बनाएँ।
3. भूकम्प आने पर दौड़ कर खुले स्थान में आ जाएँ।

4. यदि बाहर आना सम्भव नहीं हो तो किसी मजबूत फर्नीचर के नीचे छुप जाएँ।
5. भूकंप प्रभावित की मदद करें। उन्हें अस्पताल पहुँचाएँ तथा मलबे से निकालने में मदद करें।
6. अफवाह नहीं फैलाएँ।
7. धैर्य रखें तथा बुद्धि से काम लें।

3. ज्वालामुखी-कुछ पर्वत ऐसे होते हैं जिनसे लावा निकलता है। ये पर्वत ज्वालामुखी कहलाता है। भूमि में होने वाली हलचल के परिणामस्वरूप इन पर्वतों से गर्म तपता हुआ लावा हानिकारक गैसों के साथ निकलता है तथा दूर-दूर तक फैल जाता है। जहाँ-जहाँ यह जाता है मौत का ताण्डव मचा देता है। पशु-पक्षी मानव ही नहीं वनस्पति भी इसके प्रभाव से बच नहीं पाती।

बचाव के उपाय-ज्वालामुखी फटने व उसके चपेट में आने पर बचना मुश्किल है अत: इसके आने से पूर्व ही बचाव करना उपयुक्त होता है।

1. ज्वालामुखी के आस-पास के इलाकों में किसी भी प्रकार का आवासीय, व्यावसायिक या पर्यटन स्थल स्थापित नहीं करें।
2. ज्वालामुखी पर्वतों की पूर्व पहचान रखें।
3. ज्वालामुखी पर्वतों के फटने की सम्भावना हो तो उससे अत्यन्त दूर चले जाएँ ताकि गैसों के प्रभाव से भी बचा जा सके।

4. तूफान-तेज हवा के साथ धूल कचरा उड़कर आँधी का रूप धारण कर लेता है वही समुद्र में आने पर यह चक्रवात व समुद्री तूफान के नाम से जाना जाता है। तूफान में तेज हवाएँ चलती हैं जिसके फलस्वरूप पेड़-पौधे उखड़ जाते हैं। घर ढह जाते हैं, टीन शेड व अन्य चीजें उड़ जाती हैं तथा विविध प्रकार से जान माल की हानि होती है। सुनामी लहरों के प्रभाव को आज तक भारत नहीं भूला है। ये समुद्री तूफान का ही परिणाम थीं।

बचाव के उपाय

1. आँधी या तूफान की संभावना होने पर घर से बाहर नहीं निकलें।
2. तूफान आने से पूर्व सुरक्षित स्थान पर शरण ले लें।
3. तूफान के समय टीन शेड, पेड़ों, हल्की दीवारों आदि से दूर रहें।
4. तूफान के समय बिजली को ऑफ कर दें तथा खम्भों से दूर रहें।
5. तूफान के समय यदि बिजलियाँ भी कड़क रही हो तो मोबाइल का उपयोग नहीं करें।
6. तूफान में फंसे लोगों की मदद करें।

7. इस दौरान किसी भी प्रकार का वाहन नहीं चलाएँ।

8. तूफान से होने वाली हानियों का धैर्यपूर्वक मुकाबला करें।

9. स्वार्थ को भूलकर असहायों की मदद करें।

5. महामारी-प्लेग, चेचक, इत्यादि किसी घातक बीमारी का व्यापक क्षेत्र में फैल जाना महामारी कहलाता है। गुजरात में फैला प्लेग इसका एक उदाहरण है। इसमें अनेक जीव-जन्तु एवं मनुष्य बीमार होकर काल के गाल में समा जाते हैं।

बचाव के उपाय

1. महामारी के लक्षण दिखते ही इसके बचाव के उपाय करें। यथा-स्वयं भी अस्पताल जाएँ तथा पीड़ितों को भी पहुँचाएं।

2. अतिशीघ्र स्वास्थ्य विभाग को सूचना दें।

3. यदि महामारी पशु-पक्षियों में फैली है तो रोगी पशु-पक्षियों का यथाशीघ्र उपचार कराएँ। यदि सम्भव नहीं हो तो उन्हें नष्ट कर दें।

4. मृत जीव जन्तुओं व मनुष्यों को जलाएँ या गहरा गड्ढा खोदकर गाढ़ दें।

5. इस दौरान स्वास्थ्य विभाग द्वारा दिए गए निर्देशों का पूर्णतः पालन करें।

6. धैर्यपूर्वक लोगों की सहायता करें।

6. दावानल-वन में लगने वाली भयंकर आग को दावानल कहते हैं। इससे अनेक जीवों व वनस्पतियों का विनाश हो जाता है।

बचाव के उपाय

1. तुरन्त प्रशासन को सूचना दें।

2. आस-पास के इलाकों को खाली कर दें।

2. भौतिक या मानविक आपदाएँ-जो आपदाएँ मानवों के कारण उत्पन्न होती हैं वे भौतिक या मानविक आपदाएँ कहलाती हैं। वे निम्नांकित हैं-

(1) बम विस्फोट (2) आगजनी (3) युद्ध/दंगे

भौतिक/मानविक आपदाएँ-मानवों की कुत्सित मनोवृत्तियों के कारण उत्पन्न होने वाली आपदाएँ भौतिक या मानविक आपदाएँ कहलाता है। ये दुर्जनों के द्वारा उत्पादित होती है तथा दूसरों को नुकसान पहुँचाना ही उनका उद्देश्य होता है।

1. बम विस्फोट-आंतक फैलाने के लिए अथवा अपनी मांगों की ओर ध्यानाकर्षण हेतु आंतकवादी बम विस्फोट करते हैं जिनमें जान माल की अपार क्षति होती है। साधारण बमों में आर. डी. एक्स, हाइड्रोजन एवं पैट्रोल का उपयोग होता है। वहां परमाणु

बम में परमाणुओं तथा जैविक बम में सूक्ष्म जीवाणुओं का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त किसी मानव में बम नियोजित कर के उसका उपयोग करना मानव बम कहलाता है। भारत में जगह-जगह बम विस्फोट की घटनाएँ होने लगी हैं।

बचाव के उपाय

1. संदिग्ध व्यक्ति की सूचना पुलिस को दें।

2. लावारिश वस्तु को नहीं छुएँ तथा इसकी सूचना पुलिस को दें।

3. अपरिचित व संदिग्ध व्यक्ति की सहायता नहीं करें।

4. बम विस्फोट होने पर भगदड़ नहीं मचाएँ तथा अफवाह नहीं फैलाएँ।

5. मृतकों व घायलों की सहायता करें।

6. घटना स्थल पर भीड़ नहीं करें तथा धैर्यपूर्वक आपदा का सामना करें।

2. आगजनी-असामाजिक तत्वों द्वारा लगाई गई आग आगजनी कहलाती है। कभी कभार भूल या मानविक गलती से भी आग लग जाती है। यह अग्निकांड कहलाता है। इससे अनेक पशु-पक्षी एवं मानवों के साथ ही लाखों का सामान स्वाहा हो जाता है।

बचाव के उपाय

1. आग के फैलने से पूर्व कीमती सामान निकाल लें।

2. तुरन्त अग्निशमन कार्यालय एवं पुलिस को सूचना दें।

3. स्वयं आग बुझाने में मदद करें।

4. मवेशी को खोल दें।

5. आग में झुलसे लोगों को अस्पताल पहुँचाएँ।

6. अफवाह नहीं फैलाएँ तथा धैर्य से लोगों की मदद करें।

3. युद्ध/दंगे-देशों के पारस्परिक या सामूहिक लड़ाइयों झगड़े युद्ध कहलाते हैं तथा देश के किसी हिस्से में हुई आन्तरिक लड़ाई दंगा कहलाती है। युद्ध एवं दंगे दोनों मानवता पर अभिशाप हैं। इनमें जन-धन की व्यापक हानि होती है। दंगों का व्यापक या राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय रूप युद्ध होता है। युद्ध एवं दंगे के समय निम्नांकित उपाय करें-

1. सायरन बजते ही सतर्क हो जाएँ तथा उपयुक्त स्थान में शरण ले लें।

2. खुले स्थान में न रहें घरों से बाहर नहीं निकलें।

3. अफवाह नहीं फैलाएँ।

4. शान्ति स्थापित करने का प्रयास करें।

5. घायलों व मृतकों की सहायता करें।

6. निजी स्वार्थों को भूलकर जनहित का कार्य करें।

फ्रांसीसी क्रांति
(French Revolution)

नाम : फ्रांसीसी क्रांति

स्थान : फ्रांस

क्रांति का आरम्भ : 14 जुलाई, 1789

प्रकृति : बुर्जुआ क्रांति

फ्रांसीसी क्रांति का समय फ्रांस के इतिहास में राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल और आमूल चूल परिवर्तन करने वाला समय था, जिसके दौरान फ्रांस की पुरानी सरकारी सामंती शासन संरचना पूर्णत: बदल गयी जिसमें पहले कुलीन और कैथोलिक पादरियों के लिए सामंती विशेषाधिकार दिये गये थे। इसके साथ ही यह पूर्णतया राजशाही पद्धति पर आधारित थी। अब उसमें आमूल चूल परिवर्तन हुए और यह नागरिकता के अविच्छेद अधिकारों के प्रबोधन सिद्धान्तों पर आधारित हो गयी।

फ्रांसीसी क्रांति का शैक्षणिक विश्लेषण प्रश्न-उत्तर के रूप में
(Pedagogical Analysis of French Revolution in the form of questions and answers)

(1) फ्रांस की राज्यक्रांति कब व किसके शासनकाल में हुई ?

उत्तर-फ्रांस की राज्यक्रांति 1989 ई. में लूई सोलहवां के शासनकाल में हुई।

(2) फ्रांस की राज्यक्रांति के समय फ्रांस में किस प्रकार की शासन व्यवस्था थी?

उत्तर-फ्रांस की राज्यक्रांति के समय फ्रांस में सामंती व्यवस्था थी।

(3) 14 जुलाई, 1789 ई. को फ्रांस में कौन सी प्रसिद्ध घटना हुई ?

उत्तर-14 जुलाई, 1789 को क्रांतिकारियों ने बास्तील के कारागृह फाटक को तोड़कर बंदियों को मुक्त कर दिया। तबसे 14 जुलाई को फ्रांस में राष्ट्रीय दिवस के रूप में मनाया जाता है।

(4) फ्रांस की राज्यक्रांति की समाज को क्या देन है ?

उत्तर-समानता, स्वतन्त्रता और भाईचारे का नारा फ्रांस की राज्यक्रांति की देन है।

(5) किसने कहा था कि "मैं ही राज्य हूँ और मेरे ही शब्द कानून हैं" ?

उत्तर-मैं ही राज्य हूँ और मेरे ही शब्द कानून हैं-यह कथन लुई चौदहवां का है।

(6) वर्साय के शीश महल का निर्माण किसने करवाया ?

उत्तर-वर्साय के शीश महल का निर्माण लुई चौदहवां ने करवाया।

(7) किसने वर्साय को फ्रांस की राजधानी घोषित किया ?

उत्तर-लुई चोदहवें ने वर्साय को फ्रांस की राजधानी घोषित किया।

(8) लुई सोलहवां फ्रांस की गद्दी पर कब बैठा ?

उत्तर-लुई सोलहवां फ्रांस की गद्दी पर 1744 ई० में बैठा।

(9) लुई सोलहवां की पत्नी मेरी एंत्वा नेता कहाँ की राजकुमारी थी ?

उत्तर-लुई सोलहवां की पत्नी मेरी एंत्वा नेता आस्ट्रिया की राजकुमारी थी।

(10) लुइ सोलहवां को किस अपराध में फांसी दी गई ?

उत्तर-लुई सोलहवां को देशद्रोह के अपराध में फांसी की सजा दी गई।

(11) टैले क्या था ?

उत्तर-टैले एक प्रकार का भूमिकर था।

(12) फ्रांसीसी क्रांति में सबसे अहम योगदान किन लोगों का था ?

उत्तर-फ्रांसीसी क्रांति में सबसे अहम योगदान वाल्टेयर, मौंटेस्यू एवं रूसो का था।

(13) आल्टेयर कौन था ?

उत्तर-आल्टेयर चर्च का एक विरोधी था।

(14) फ्रांस की क्रान्ति के संबंध में रूसो कौन था ?

उत्तर-रूसो फ्रांस में लोकतन्त्र शासन पद्धति का समर्थक था।

(15) सौ चूहों की अपेक्षा एक सिंह का शासन उत्तम है-यह कथन किसका था?

उत्तर-सौ चूहों की अपेक्षा एक सिंह का शासन उत्तम है-यह कथन वालटेयर का था।

(16) सोशल कांट्रेक्ट किसकी रचना है ?

उत्तर-सोशल कांट्रेक्ट रूसो की रचना है।

(17) 'लेटर्स ऑन इंग्लिश' किसकी रचना है ?

उत्तर-'लेटर्स ऑन इंग्लिश' वालटेयर की रचना है।

(18) 'कानून की आत्मा' की रचना किसने की ?

उत्तर-कानून की आत्मा की रचना मौंटेस्यू ने की।

(19) स्टेट्स जनरल के अधिवेशन की शुरूआत कब हुई ?

उत्तर-स्टेट्स जनरल के अधिवेशन की शुरूआत 5 मई, 1789 ई. को हुई।

(20) मापतौल की दशमलव प्रणाली किस देश की देन है ?

उत्तर-मापतौल की दशमलव प्रणाली फ्रांस की देन है।

(21) सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का जनक किसको कहा जाता है ?

उत्तर-सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का जनक हर्डर को कहा जाता है।

(22) नेपोलियन का जन्म कब हुआ ?

उत्तर-नेपोलियन का जन्म 15 अगस्त, 1769 ई० में हुआ।

(23) नेपोलियन का जन्म कहाँ हुआ ?

उत्तर-नेपोलियन का जन्म कोर्सिका द्वीप की राजधानी अजासियो में हुआ।

(24) नेपोलियन के पिता का क्या नाम था ?

उत्तर-नेपोलियन के पिता का नाम कार्लो बोनापार्ट था।

(25) नेपोलियन ने सैनिक शिक्षा कहाँ प्राप्त की थी ?

उत्तर-नेपोलियन ने ब्रिटेन की सैनिक अकादमी में शिक्षा प्राप्त की थी।

(26) इटली में ऑस्ट्रिया (1796 ई०) के प्रमुख को किसने समाप्त किया ?

उत्तर-नेपोलियन ने इटली में ऑस्ट्रिया (1796 ई०) के प्रमुख को समाप्त किया।

(27) फ्रांस में डायरेक्टरी के शासन का अंत कब हुआ ?

उत्तर-फ्रांस में डायरेक्टरी के शासन का अंत 1799 ई० में हुआ।

(28) पहली बार नेपोलियन कॉन्सल कब बना ?

उत्तर-पहली बार नेपोलियन 1799 ई. में कॉन्सल बना।

(29) जीवनभर के लिए नेपोलियन कॉन्सल कब बना ?

उत्तर-जीवनभर के लिए नेपोलियन 1802 ई. में कॉन्सल बना।

(30) नेपोलियन फ्रांस का सम्राट कब बना ?

उत्तर-नेपोलियन फ्रांस का सम्राट 1804 ई. में बना।

(31) किसे आधुनिक फ्रांस का निर्माता माना गया है ?

उत्तर-आधुनिक फ्रांस का निर्माता नेपोलियन को माना गया है।

(32) इंग्लैंड को बनियों का देश सबसे पहले किसने कहा था ?

उत्तर-इंग्लैंड को बनियों का देश सबसे पहले नेपोलियन ने कहा था।

(33) नेपोलियन की पहली पत्नी का नाम क्या था ?

उत्तर-नेपोलियन की पहली पत्नी का नाम जोजे फाइन था।

(34) इंग्लैंड और नेपोलियन के बीच कौन सा युद्ध 21 अक्टूबर, 1805 ई. में हुआ?

उत्तर-स्ट्राल्फकगर का युद्ध 21 अक्टूबर, 1805 ई. में इंग्लैंड और नेपोलियन के बीच हुआ।

(35) बैंक ऑफ फ्रांस की स्थापना कब व किसने की ?

उत्तर-बैंक ऑफ फ्रांस की स्थापना 1800 ई. में नेपोलियन की की।

(36) किस संग्रह को नेपोलियन द्वारा तैयार कानूनों का संग्रह कहा गया ?

उत्तर-नेपोलियन का कोड नेपोलियन द्वारा तैयार कानूनों का संग्रह कहा गया।

(37) किस स्थान पर नेपोलियन को बंदी बनाकर रखा गया था ?

उत्तर-एल्बा के टापू पर नेपोलियन को बंदी बनाकर रखा गया था।

(38) किस सेना ने नेपोलियन को वॉटर लू युद्ध में (18 जून, 1815 ई.) को पराजित किया ?

उत्तर-मित्र राष्ट्रों की सेना ने नेपोलियन को वॉटर लू युद्ध में (18 जून, 1815 ई.) को पराजित किया।

(39) नेपोलियन की मृत्यु कब हुई ?

उत्तर-नेपोलियन की मृत्यु 1821 ई. में हुई।

(40) लिट्ल कारपोरल के नाम से किसे जाना जाता था ?

उत्तर-नेपोलियन को लिट्ल कारपोरल के नाम से जाना जाता था।

(41) नेपोलियन के पतन का क्या कारण था ?

उत्तर-नेपोलियन के पतन का कारण रूस पर आक्रमण करना था।

(42) नेपोलियन ने महाद्विपीय व्यवस्था का सुत्रपात क्यों किया ?

उत्तर-इंग्लैंड के कारोबार का बहिष्कार करने के लिए नेपोलियन ने महाद्विपीय व्यवस्था का सुत्रपात किया।

(43) किस समझौते के तहत यूरोप के देशों ने फ्रांस के प्रभुत्व को 1815 ई. में खत्म किया ?

उत्तर-विएना समझौते के तहत यूरोप के देशों ने फ्रांस के प्रभुत्व को 1815 ई. में खत्म किया।

(44) किस युद्ध में अंग्रेजी जहाजी बेड़े ने नायक नेल्सन के हाथों नेपोलियन को बुरी तरह पराजित होना पड़ा ?

उत्तर-नेपोलियन को नील झील के युद्ध में अंग्रेजी जहाजी बेड़े के नायक नेल्सन के हाथों बुरी तरह पराजित होना पड़ा।

अभ्यास के प्रश्न
(Study Questions)

1. निम्न विषयों में से किसी एक विषय पर विस्तारपूर्वक शैक्षणिक विश्लेषण करें।
   (i) भारत का संविधान
   (ii) भारत का आकार, स्थिति और भौतिक विशेषताएं
   (iii) भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन
2. निम्न विषयों में से किन्हीं दो विषयों पर संक्षेप में नोट लिखें-
   (i) जनसंख्या
   (ii) समकालीन विश्व में लोकतन्त्र
   (iii) आपदा प्रबन्धन
   (iv) फ्रांसीसी क्रांति

ଔ ଔ ଔ

CHAPTER 4

सामाजिक विज्ञानों में पाठ योजना : आवश्यकता और महत्व, मूल तत्व और इसकी तैयारी

(Lesson Planning in Social Sciences: Need & Importance, Basic Elements & its Preparation)

पाठ योजना का प्रस्तुतीकरण
(Presentation of Lesson Planning)

शिक्षक शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जो रूप-रेखा मौलिक या लिखित से निर्मित की जाए और जिसे प्रक्रिया के प्रभावपूर्ण, सशक्त और सार्थक बनाने हेतु लागू किया जाए अर्थात् प्रयोग में लाया जाए, उसे पाठ योजना का नाम दिया जाता है। यह लिखित रूप में होती है और शिक्षण इसका अनुसरण कक्षा-शिक्षण में करता है। शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु पाठ-योजना एक निर्देशन का कार्य करती है क्योंकि इसमें इन सब बातों का संकेत होता है कि शिक्षण क्रियाएं कैसे प्रारम्भ की जाएं और उनको कक्षा में कैसे और किस रूप में क्रियान्वित किया जाए? शिक्षण अभ्यास और शिक्षण कौशलों के विकास हेतु पाठ योजना का विशेष महत्व होता है।

पाठ योजना का विकास (Development of Lesson Plan)-पाठ योजना का प्रारम्भ गैस्टाल्ट के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर हुआ। मनुष्य का सीखना गैस्टाल्ट के सीखने के सिद्धान्त (Gestalt Theory of Learning) से पूरी तरह मेल खाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति सीखने के लिए इकाई का सहारा लेता और फिर संपूर्ण की ओर बढ़ता है। इकाई के अंतर्गत सार्थक क्रियाओं में संवध स्थापित होता है और फिर इन क्रियाओं की सहायता से छात्र-छात्राओं को सीखने के अवसर प्रदान किए जाते हैं। ऐसा करने से छात्र-छात्राओं में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन किया जा सकता है। यह सिद्धान्त इकाई पाठ योजना को व्यवहारिकता का रूप प्रदान करता है अर्थात् व्यावहारिक बनाता है।

पाठ योजना से तात्पर्य (Meaning of Lesson Plan)-पाठ योजना शिक्षण से पूर्व की तैयारी अवस्था में किए गए नियोजन का स्वाभाविक प्रतिफल है। **एन.एल.बासिंग** के अनुसार, ''शिक्षण के उद्देश्यों की सिद्धि हेतु शिक्षक जिन क्रियाओं का सहारा लेता है, उसके आलेख को पाठ योजना कहा जाता है।''

''Lesson Plan is the title given to statement of the achievement to berealised and to specific means by which these are attained as a result of activities engaged during the period.''

–N.L. Bossing

आई.के.डेविस ने अपने प्रथम सोपान में पाठ योजना की रचना को विशेष महत्व दिया है।

पाठ योजना के संबंध में **डेविस महोदय** का विचार है कि कक्षा में जाने से पूर्व शिक्षक को पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए क्योंकि शिक्षक की प्रगति के लिए कोई बाधा इतनी बाधक नहीं जितनी कि शिक्षक की अपूर्ण तैयारी।

(According to Davis, lesson must be prepared for there is nothing so fatal to a teacher's progress as unpreparedness.)

बिनिंग और बिनिंग के अनुसार, "दैनिक पाठ योजना के निर्माण में उद्देश्यों को परिभाषित करना, "पाठ्य वस्तु का चयन करना तथा उसे क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित करना और प्रस्तुतीकरण की विधियों तथा प्रक्रिया का निर्धारण करना है।"

("Daily Lesson Planning involves defining the objective selecting and arranging the subject matter and determining the method and procedure.")

–Bining and Bining

पाठ योजना की आवश्यकता

(Need of Lesson Plan)

शिक्षा भावी शिक्षकों को कक्षा शिक्षण की क्रियाओं को सफल बनाने हेतु और पूर्व निर्धारित शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ का नियोजन करना जरूरी है क्योंकि इसकी निम्न कारणों से विशेष आवश्यकता है :

1. पाठ योजना से शिक्षण सम्बन्धित क्रियाओं और उनके उद्देश्यों की शिक्षण से पूर्व जानकारी हो जाती है।

2. विषय-वस्तु को क्रमबद्धता से निश्चित कर लिया जाता है।

3. विषय वस्तु के तत्वों के क्रम, चिन्तन एवं विकास में क्रमबद्धता स्थापित हो जाती है।

4. शिक्षण करते समय विषय-वस्तु के भूलने की सम्भावना नहीं होती और निर्धारित विषय-वस्तु के तत्वों का विवेचन सहज ढंग से हो जाता है।

5. सहायक सामग्री के प्रयोग और शिक्षण विधियों के बारे में स्पष्टीकरण हो जाता है।

6. शिक्षण क्रियाओं को जीवन के सामान्य अनुभवों से जोड़ा जा सकता है।

7. छात्र-छात्राओं की क्रियाओं के नियन्त्रण और पुनर्बलन की तकनीकी के प्रयोग को निश्चित किया जा सकता है।

8. परीक्षण परिस्थितियों को भी निर्धारित कर लिया जाता है।

9. भावी शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए पाठ योजना कक्षा की क्रियाओं के लिए रूप-रेखा तैयार करती है।

10. व्यक्तिगत विभिन्नता को देखते हुए पाठ योजना क्रियाओं की व्यवस्था करने में सहायक सिद्ध होती है।

पाठ योजना का महत्व

(Importance of Lesson Plan)

पाठ योजना की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इसके महत्व को सफलतापूर्वक दर्शाया जा सकता है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों हरबर्ट, मॉरिसन, जॉन डीवी, किलपैट्रिक ने पाठ योजना के महत्त्व को स्वीकार किया और पाठ योजना के विभिन्न सोपानों का भी वर्णन किया है। जैसे कि पहले चर्चा की जा चुकी है कि पाठ योजना का महत्त्व एक प्रस्तावित नीति एवं रूप-रेखा के रूप में अधिक है। निम्न दिए गए तर्कों के आधार पर पाठ योजना का महत्त्व स्पष्ट किया गया है-

1. शिक्षण अधिगम (सिखाना-सीखना) अर्थात् (Teaching and Learning) की प्रक्रिया की व्यवस्था के नियोजन, आयोजन, अग्रसरण एवं नियन्त्रण संबंधी निर्णयों को प्रभावपूर्ण, सशक्त, सार्थक एवं उपयोगी बनाने की दृष्टि से पाठ योजना का शिक्षकों के लिए अधिक महत्त्व है।

2. शिक्षक को पाठ-योजना बनाने से पाठ के उद्देश्यों और उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग में आने वाले सभी साधनों का ज्ञान हो जाता है। ऐसा हो जाने से शिक्षण प्रक्रिया सहज एवं सरल हो जाती है।

3. शिक्षण की प्रासंगिकता, क्रमबद्धता, पूर्व निर्मित पाठ योजना के पढ़ने मात्र से संभव हो जाती है। इसीलिए शिक्षक अपने विषय से हटकर शिक्षण नहीं करता और विसंगत चर्चा का निवारण हो जाता है।

4. शिक्षक के लिए पाठ योजना एक ऐसा आधार है जिससे उसमें आत्म विश्वास एवं धैर्य और कर्त्तव्य परायणता जैसे गुणों का विकास होता है।

5. पाठ योजना का सही मूल्यांकन करने की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है। यह देखना आसान हो जाता है कि कक्षा में जितना कुछ पढ़ाया है उसमें से छात्र-छात्राएं कितना कुछ सीख पाएं हैं।

6. पाठ योजना का संबंध प्रत्यक्ष रूप से शिक्षण प्रक्रिया से होता है। इसके द्वारा शिक्षा में शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण और सार्थक बनाने हेतु आंतरिक सूझ का विकास होता है।

7. पाठ योजना से शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही लाभान्वित होते हैं। अन्तर केवल इतना है कि शिक्षक के प्रत्यक्ष रूप से लाभ होता है और शिक्षार्थी को अप्रत्यक्ष रूप से लाभ होता है। शिक्षक को पाठ-वस्तु का पढ़ाना सहज लगता है और विद्यार्थी को सीखना सहज लगता है।

8. पाठ के संबंध में पैदा होने वाली समस्याओं तथा कठिनाइयों को पाठ योजना के द्वारा हल किया जा सकता है।

9. किसी भी पाठ की निरन्तरता बनाए रखने के लिए पाठ योजना बनाना आवश्यक होता है। इससे छात्रों के पूर्व ज्ञान का पता लगाना भी आसान होता है।

10. पाठ योजना से शिक्षण सहज एवं सरल होता है और उसमें नवीनता भी आ जाती है। पहले से ही पाठ्य वस्तु से संबंधित क्रियाओं के बारे में कक्षा स्तर के अनुसार निर्णय ले लिया जाता है। छात्र-छात्राओं को उनके ज्ञान के आधार पर नया ज्ञान दिया जा सकता है। इससे छात्रों की पाठ में रुचि बढ़ती है।

11. अगर शिक्षक पाठ योजना को मौखिक एवं लिखित रूप में तैयार नहीं करता तो इससे स्पष्ट है कि शिक्षण कदापि भी रूचिकर नहीं हो सकता और इससे कक्षा में अनुशासनहीनता बने रहने की आशंका होती है। इस प्रकार की समस्या के समाधान हेतु पाठ योजना बहुत आवश्यक होती है।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि पाठ योजना का शिक्षक और विद्यार्थी के लिए बहुत महत्त्व है। कक्षा में अच्छे मित्र की तरह पाठ योजना शिक्षक को नैतिक बल प्रदान करती है। इसलिए एक अच्छे शिक्षक के लिए कक्षा में जाने से पूर्व पाठ योजना अत्यन्त आवश्यक है।

शिक्षण की इकाई का स्वरूप

(Nature of Teaching Unit)

शिक्षण की इकाई पूरे विषय विशेष का अंग होती है। इसका संबंध पाठ के प्रस्तुतीकरण की विधियों एवं साधनों से होता है। शिक्षण इकाई की प्रमुख रूप से दो विशेषताएं है जो निम्न हैं-

1. पूरे वर्ष के समस्त कोर्स को छात्र-छात्राओं की सुविधा को ध्यान में रखते हुए छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित किया जाता है, जिससे वे आसानी से बोधगम्य कर सकते हैं और एकाग्रचित होकर विषय वस्तु को समझने का प्रयत्न करते हैं।

2. शिक्षण इकाई की सहायता से शिक्षण प्रक्रिया को व्यावहारिक रूप प्रदान किया जा सकता है। प्रस्तावना के सोपान के अन्तर्गत छात्र-छात्राओं को शिक्षण उद्देश्यों से अवगत कराने की व्यवस्था होती है। इसके पश्चात् ही नवीन विषय वस्तु को प्रस्तुत

किया जाता है। अंतिम सोपान छात्रों की उपलब्धियों एवं बोध का मूल्यांकन करने में सहायक होता है।

पाठ योजना बनाने हेतु आवश्यक निर्देश

(Necessary Instructions for Making Lesson Plan)

जीवन में हम किसी भी कार्य को करते हैं और उसमें पूर्ण सफलता चाहते हैं तो हमें उस कार्य को पूरी लगन एवं कुशलता के साथ करना अत्यन्त आवश्यक होता है। इसलिए शिक्षण कार्य में भी शिक्षक को कुशल एवं दक्ष होना चाहिए। शिक्षक की पढ़ाने की दक्षता एवं कुशलता बहुत कुछ पाठ योजना पर निर्भर करती है। इसलिए पाठ योजना का निर्माण करते हुए शिक्षक को निम्न बातों पर अवश्य ही ध्यान देना चाहिए :

1. जिस विषय-वस्तु की पाठ योजना बनानी हो उस विषय सामग्री को पहले ध्यान से पढ़ लेना चाहिए। नागरिक शास्त्र विषय से संबंधित प्रकरण पढ़ाने के लिए अध्ययन की विशेष आवश्यकता होती है क्योंकि इसके लिए एक पुस्तक ही पर्याप्त नहीं होती। प्रकरण की पूरी जानकारी के पश्चात् पाठ योजना को लिखित रूप देना चाहिए।

2. पाठ योजना बनाते समय पूरे प्रकरण को भागों में विभाजित कर लें। इससे पढ़ाने में सुविधा रहती है। विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण क्रमबद्धता से किया जा सकता है।

3. पाठ योजना बनाते समय छात्राध्यापक को पूर्व ज्ञान को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। इससे पाठ के आरंभ करने में सुविधा रहती है।

4. पाठ योजना में उन विधियों, उदाहरणों और सहायक सामग्री की उल्लेखनीय होना चाहिए जिनकी सहायता से शिक्षक शिक्षण करेगा।

5. इसका निर्माण करते हुए कक्षा के स्तर व छात्र-छात्राओं के मानसिक स्तर का ध्यान रखना भी जरूरी है।

6. पाठ योजना बनाने के पश्चात् ध्यान से पढ़ लेना चाहिए ताकि त्रुटियों में सुधार हो जाए।

7. पाठ योजना बनाने का अर्थ यह नहीं कर लेना चाहिए कि शिक्षक शिक्षण करते समय पाठ योजना से बंध कर रहेगा बल्कि उसमें परिस्थितियों के अनुसार लचीलेपन की व्यवस्था हो।

8. सहायक सामग्री का प्रयोग परिस्थितियों और आवश्यकतानुकूल होना चाहिए।

अच्छी पाठ योजना के गुण

(Merit of Good Lesson Plan)

एक अच्छी पाठ योजना में निम्न गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है :

1. पाठ योजना पूरी तैयारी और रोचक ढंग से बनाई हुई हो।

2. प्रत्येक प्रकरण का विशेष उद्देश्य होता है, जिसका उल्लेख पाठ योजना में किया जाना चाहिए।

3. पाठ योजना कठिन भाषा में लिखी हुई नहीं होनी चाहिए।

4. पाठ योजना सुंदर और स्पष्टता के साथ लिखी हुई हो।

5. पाठ योजना की विषय-वस्तु इतनी होनी चाहिए कि शिक्षक निश्चित अवधि में उसे पूरा कर लें।

6. अच्छी पाठ योजना वह होती है जिसमें वातावरण और दूसरे विषयों के साथ यथा संभव समवाय स्थापित हो सके।

7. एक अच्छी पाठ योजना शिक्षक की बुद्धिमता का परिचायक होती है। दृश्य सहायक सामग्री और उदाहरणों का प्रयोग इस ढंग से हो कि पाठ के उद्देश्यों की प्राप्ति हो।

8. पाठ योजना में गृहकार्य अवश्य ही दिया जाना चाहिए। इसमें छात्र-छात्राओं को सीखे हुए अनुभवों का अभ्यास करने का अवसर प्राप्त होता है।

सामाजिक विज्ञान पाठ योजना के आधार
(Bases of the Lesson Plan of Social Science)

पाठ योजना बनाने हेतु अधिकतर शिक्षकों द्वारा शास्त्री हरबर्ट की पंचनाद विधि को अपनाया गया है। यद्यपि इस विधि में कुछ कमियां हैं, फिर भी सभी शिक्षाविदों ने इस प्रणाली को अधिक मनोवैज्ञानिक बताया है। यही कारण है कि अधिकांश शिक्षण महाविद्यालयों में इस विधि का प्रचलन है। इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र के शिक्षण में भी इस प्रणाली (विधि) का प्रयोग होता है। इस प्रणाली के पांच पद हैं, जो निम्न हैं :

1. प्रस्तावना (Introduction)
2. प्रस्तुतीकरण (Presentation)
3. स्पष्टीकरण, विशिष्ट वर्णन (Association)
4. नियमीकरण या साधारणीकरण (Generalisation)
5. प्रयोग, गृहकार्य या अभ्यास अवसर (Application)

उपरोक्त पदों के आधार पर सभी विषयों की पाठ-योजना बनाना संभव है। केवल इतना ही अंतर है कि कई विषयों में चतुर्थ पद का प्रयोग नहीं होता है। जैसे इतिहास, नागरिक शास्त्र और भूगोल में भी चतुर्थ पद-नियमीकरण या साधारणीकरण का प्रयोग नहीं होता क्योंकि इन विषयों से संबंधित प्रकरण पढ़ने के पश्चात् किसी नियम को निकलवाया नहीं जाता, जैसे कि गणित, विज्ञान, व्याकरण के शिक्षण के पश्चात् किया जाता है।

सामाजिक विज्ञान पाठ योजना की लेखन विधि
(Writing Method of Lesson Plan of Social Science)

पाठ योजना बनाने एवं लेखन हेतु निम्न शीर्षकों को क्रमशः अपनाया जाता है :

1. सामान्य उद्देश्य (General Aims)
2. विशेष या विशिष्ट उद्देश्य (Specific Aims)
3. सहायक सामग्री (Material Aid)
4. पूर्व ज्ञान (Previous Knowledge)
5. प्रस्तावना (Introduction)
6. उद्देश्य कथन (Statement of Aims)
7. पाठ विकास (Development of the Lesson)
8. चॉकबोर्ड सारांश (Chalk Board Summary)
9. पुनरावृत्ति (Recapitutation)
10. गृहकार्य (Home Work)

ऊपरलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत क्या लिखना चाहिए, इसका ब्यौरा निम्न है :

1. सामान्य उद्देश्य (General Aims)-सामान्य उद्देश्यों के अन्तर्गत उन्हीं उद्देश्यों को लिखते हैं जिनकी प्राप्ति हेतु उस विषय को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है। सामान्य उद्देश्य केवल एक नहीं होता बल्कि अनेक होते हैं और सभी उस विषय से ही संबंधित होते हैं। इन सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति किसी अन्य विषय से नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए पाठ्यक्रम में नागरिक शास्त्र को समिलित करने का उद्देश्य यह है कि छात्र-छात्राएं आदर्श नागरिक जीवन से परिचित हो जाएं, वे राजनैतिक ढांचे को समझ जाएं, वे नागरिक के कर्त्तव्यों और अधिकारों को समझ जाएं, उनमें विश्व-बन्धुत्व की भावना जागृत हो जाए आदि। इन उद्देश्यों की प्राप्ति अन्य विषयों से संभव नहीं है। प्रत्येक विषय वस्तु की पाठ-योजना में इन उद्देश्यों को प्रारम्भ में ही लिख दिया जाता है।

2. विशेष या विशिष्ट उद्देश्य (Specific Aims)-विशेष उद्देश्य या विशिष्ट उद्देश्य का संबंध प्रस्तुत पाठ से होता है। प्रत्येक विषय के सामान्य उद्देश्य तो एक जैसे ही होते हैं परन्तु विशिष्ट उद्देश्य हर पाठ के भिन्न होते हैं। शिक्षक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विशिष्ट उद्देश्य बहुत ही स्पष्ट और उचित भाषा में लिखा हुआ है।

3. सहायक सामग्री (Material Aid)-शिक्षक को जिस सहायक सामग्री का पाठ पढ़ाने में प्रयोग करना होता है, उसको सहायक सामग्री शीर्षक के अन्तर्गत लिखना आवश्यक होता है। सहायक सामग्री केउपकरणों का उल्लेख संख्या की दृष्टि से नहीं

करना चाहिए बल्कि जिन उपकरणों की वास्तविक रूप से पाठ पढ़ाने के लिए आवश्यकता होती है, उन्हीं का उल्लेख करना चहिए।

4. पूर्व ज्ञान (Previous Knowledge)-शिक्षक अपनी पाठ योजना बनाने में तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि उसे छात्र-छात्राओं के पूर्व ज्ञान के बारे में स्पष्टता न हो। इसलिए शिक्षक को अपनी पाठ योजना में यह उल्लेख करना चाहिए कि कक्षा विशेष के छात्र-छात्राओं का पूर्व ज्ञान कितना है। यह ज्ञान साधारण ज्ञान न होकर विषय-विशेष के प्रकरण से संबंधित होता है।

5. प्रस्तावना (Introduction)-प्रस्तावना का संबंध पाठ के प्रस्तुतीकरण से होता है। प्रस्तावना के अन्तर्गत शिक्षक को ऐसी विधि का प्रयोग करना चाहिए जिससे कक्षा में अपेक्षित (वांछनीय) वातावरण उत्पन्न न हो जाए और छात्र-छात्राएं पाठ की ओर आकर्षित हो जाएं। यदि शिक्षक उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करने में सफल हो जाता है तो अवश्य ही पाठ पढ़ाने में भी पूर्ण रूप से सफल होगा। प्रत्येक विषय में प्रस्तावना कई प्रकार से की जा सकती है, छात्र-छात्राओं से प्रश्न करके, कोई उचित चित्र या मॉडल दिखाकर, चॉक बोर्ड पर कुछ लिखकर या फिर कोई छोटी सी कहानी सुनाकर। प्रस्तावना की प्रत्येक विधि में शिक्षक के कौशल की आवश्यकता होती है क्योंकि प्रस्तावना के प्रश्न परस्पर संबंधित हों। एक प्रश्न का उत्तर दूसरे प्रश्न की ओर स्वाभाविक रूप से ही प्रेरित करता हो और अंतिम प्रश्न से "उद्देश्य कथन" की स्पष्टता हो।

6. उद्देश्य कथन (Statement of Aims)-प्रस्तावना के तुरंत बाद ही उद्देश्य कथन की आवश्यकता होती है, जिसके माध्यम से शिक्षक यह स्पष्ट कर देता है कि छात्र-छात्राएं किस प्रकरण के बारे में पढ़ेंगे। उद्देश्य कथन में शिक्षक को हमेशा 'हम' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। छात्र-छात्राओं को यह अनुभव नहीं होने देना चाहिए कि शिक्षक उनसे भिन्न हो। ऐसा प्रयास करने से कक्षा में सहयोग तथा अनुशासन के भाव उत्पन्न होते हैं और पाठ की समाप्ति सफलतापूर्वक होती है।

7. पाठ विकास (Development of the Lesson)-यह पाठ से संबंधित वह स्थिति होती है जहां से पाठ का प्रारम्भ हो जाता है और शिक्षक पाठ का प्रारम्भ करने व पाठ के विकास के लिए अग्रसर होता है। इसलिए प्रस्तुतीकरण प्रारम्भ करने से पूर्व पाठ की इकाइयों का क्रम देना चाहिए। पाठ का विकास करने में शिक्षक को प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग करते हुए उपयुक्त सहायक सामग्री की सहायता लेनी चाहिए। पाठ के विकास में छात्र-छात्राओं की भागीदारी अवश्य होनी चाहिए।

8. चॉकबोर्ड सारांश (Chalk Board Summary)-कोई भी शिक्षक अपने अध्यापन को तब तक सफल नहीं मान सकता जब तक कि छात्र-छात्राएं पाठ को समझ न जाए और आवश्यकता पड़ने पर सीखे हुए ज्ञान का दैनिक जीवन में प्रयोग कर सकें। पाठ

योजना में यदि विषय सामग्री को इकाइयों में बांटा हुआ है तो प्रत्येक इकाई के समाप्त होने पर उस इकाई का चॉक बोर्ड सारांश देना चाहिए और अगर पाठ इकाइयों में बंटा हुआ न हो तो पाठ के प्रस्तुतीकरण की समाप्ति के बाद चॉक बोर्ड सारांश छात्र-छात्राओं के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध होता है। चॉक बोर्ड का प्रयोग करते समय शिक्षक को निम्न बातों को अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिए।

1. भाषा छात्रों के स्तरानुकूल हो।
2. सारांश थोड़े से वाक्यों में हो।
3. प्रत्येक वाक्य की भाषा स्पष्ट और सार्थक हो।
4. सम्पूर्ण सारांश में क्रमबद्धता हो।
5. निष्कर्ष रूप में सारंश ऐसा हो जो सभी छात्र-छात्राओं की समझ में आ जाए।

9. पुनरावृत्ति (Recapitutation)-पुनरावृत्ति से तात्पर्य यह है कि पढ़ाए गए पाठ को पांच-छः प्रश्नों की सहायता से दोहरा लिया जाना चाहिए। इससे शिक्षक को यह पता लग जाता है कि पढ़ाया हुआ पाठ छात्र-छात्राओं ने समझा है या नहीं। अगर समझा है तो किस सीमा तक समझा है। यह संपूर्ण पाठ का सार होता है। पुनरावृत्ति प्रत्येक इकाई की करनी चाहिए। अगर पाठ इकाइयां बांट कर न पढ़ाया गया हो तो संपूर्ण पाठ की समाप्ति के बाद पुनरावृत्ति करनी चाहिए।

10. गृहकार्य (Home Work)-सामाजिक विज्ञान के विषय में गृहकार्य बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। वैसे तो गृहकार्य सभी विषयों के लिए गुणकारी है। परन्तु इस बात में कोई दो राय नहीं कि इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र व्यावहारिक उपयोगिता के विषय हैं। इसलिए जहां तक संभव हो इन विषयों के अध्यापन के बाद गृहकार्य दिया जाना चाहिए। इन विषयों का गृहकार्य दैनिक जीवन की समस्याओं से संबंधित होता है। ऐसे विषयों का गृह कार्य लिखित रूप न होकर प्रयोगात्कम रूप में होना चाहिए।

अगर ऐसा संभव न हो तो पाठ की संक्षिप्त में पुनरावृत्ति कक्षा में ही करा लेनी चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न
(Study Questions)

1. पाठ योजना से आप क्या समझते हैं ? शिक्षक को पाठ योजना का उपयोग किस प्रकार से करना चाहिए ?
2. शिक्षण में पाठ योजना का क्या महत्त्व है ? एक अच्छी पाठ योजना में क्या-क्या विशेषताएं होनी चाहिए ?

3. पाठ योजना की आवश्यकता बताते हुए इसके आधार की चर्चा कीजिए।
4. निम्नलिखित के उत्तर 150 शब्दों में दीजिए-
   (i) पाठ योजना साध्य नहीं, साधन है।
   (ii) पाठ योजना की रूप-रेखा।
   (iii) पाठ योजना से आपका क्या तात्पर्य है ?
   (iv) हरबर्ट उपागम।
   (v) शिक्षक के लिए पाठ योजना की आवश्यकता।

ঙ ঙ ঙ

इकाई - 3
(Unit - 3)

शिक्षण व सीखने के संसाधन और प्रक्रिया एवं पाठ्यक्रम, शिक्षण व सीखने की सामग्री और सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण के कौशल

(Teaching Learning Resources and Process & Curriculum, Teaching Learning Material and skills of Teaching Social Sciences)

1. सामाजिक विज्ञानों का एक अच्छा पाठ्यक्रम डिज़ाइन करने का अर्थ, महत्त्व और सिद्धांत; सामाजिक विज्ञानों के मौजूदा पाठ्यक्रम का आलोचनात्मक मूल्यांकन; सुधार के लिए सुझाव; सामाजिक विज्ञानों के पाठ्यक्रम के आयोजन के उपागम - तार्किक, संकेंद्रित, चक्राकार और कालानुक्रमिक
   (Meaning Importance and Principles of Designing a Good Curriculum of Social Sciencs; Critical Appraisal of the Existing Curriculum in Social Sciences, Suggestions for Improvement; Approaches of Organizing Social Sciences Curriculum - Logical, Concentric, Spiral and Chronological)

2. शिक्षण और सीखने की सामग्री : पाठ्यपुस्तक और संदर्भ पुस्तकें, वृत्तचित्र, अखबारें, नक्शे, समुदाय, एटलस और ई-संसाधन (ब्लॉग, वर्ल्ड वाईड वेब और सोशल नेटवर्किंग)
   Teaching Learning Material : Textbook & Reference Books, Documentaries, Newspapers, Maps, Community, Atlas and E-Resources (World Wide Web and Social Networking)

3. सामाजिक अध्ययन के शिक्षण के कौशल : स्पष्ट करने के कौशल, उदाहरणों सहित चित्रण के कौशल, सुदृढ़ीकरण के कौशल, पूछताछ के कौशल और प्रोत्साहन विभिन्नता के कौशल
   (Skill of Teaching Social Studies : Skill of Explaining, Skill of illustration with Examples, Skill of Reinforcement, Skill of Questioning and Skill of Stimulus Variation)

CHAPTER

1

सामाजिक विज्ञान
Social Science

सामाजिक विज्ञानों का एक अच्छा पाठ्यक्रम डिज़ाइन करने का अर्थ, महत्त्व और सिद्धांत; सामाजिक विज्ञानों के मौजूदा पाठ्यक्रम का आलोचनात्मक मूल्यांकन; सुधार के लिए सुझाव; सामाजिक विज्ञानों के पाठ्यक्रम के आयोजन के उपागम - तार्किक, संकेंद्रित, चक्राकार और कालानुक्रमिक

(Meaning, Importance and Principles of Designing a Good Curriculum of Social Sciences; Critical Appraisal of the Existing Curriculum in Social Sciences, Suggestions for Improvement; Approaches of Organizing Social Sciences Curriculum - Logical, Concentric, Spiral and Chronological)

पाठ्यक्रम का अर्थ
(Meaning of Curriculum)

व्युत्क्रमानुसार पाठ्यक्रम शब्द लेटिन भाषा के शब्द 'Currere' से लिया गया है, जिसका मूल अर्थ होता है ऐसा पथ जिस पर दौड़ लगायी जाए अर्थात् 'Race-course' जिस प्रकार घोड़ा दौड़ में भाग लेता है। वह लक्ष्य प्राप्ति के लिए दौड़ता (currere) है, इसी प्रकार विद्यार्थी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न क्रियाएं करता है, जिसे शिक्षा का पाठ्यक्रम कहते हैं। इस प्रकार पाठ्यक्रम उन क्रियाओं का योग है जो छात्र के सर्वांगीण विकास में सहायक है। विभिन्न शिक्षा-शास्त्रियों व विशेषज्ञों ने पाठ्यक्रम की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं।

वास्तव में पाठ्यक्रम से अभिप्राय वह मार्ग है जिस पर चलकर मानव अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। साधारणत: उसमें वह विषय सम्मिलित होते हैं जिन्हें विद्यालय में पढ़ाया जाता है। परन्तु वास्तव में पाठ्यक्रम का व्यापक रूप समस्त विद्यालयों तथा समूचे वातावरण में सम्पूर्ण पाठ्यक्रम क्रियाओं एवं विद्यार्थियों को दी जाने वाली शिक्षाएं होती हैं।

पाठ्यक्रम की परिभाषाएं
(Definitions of Curriculum)

1. **क्रो एण्ड क्रो** के अनुसार, "पाठ्यक्रम में सीखने वाले या बालक के वह सभी अनुभव निहित होते हैं, जिन्हें वह विद्यालय या उनके बाहर प्राप्त करता है। ये समस्त अनुभव एक कार्यक्रम में निहित होते हैं जो मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक, आध्यात्मिक व नैतिक रूप से विकसित होने में सहायता देता है।"

(According to **Crow and Crow,** "Curriculum includes all the learner experience in or outside school that are included in a programme which has been devised to help him to develop, mentally, physically, emotionally, socially, spiritually and morally.")

2. **पेने** के अनुसार, "पाठ्यक्रम के अर्न्तगत वे सभी परिस्थितियां आती हैं जिनके प्रत्यक्ष संगठन और चयन बालकों के व्यक्तित्व में विकास लाने हेतु तथा व्यवहार में परिवर्तन लाने हेतु विद्यालय करता है।"

(According to **Payne,** "Curriculum consists of all the situations that the school may select and consciously organize for the purpose of developing the personality of its pupils and for making behaviour change in them.")

3. **कनिंघम** के अनुसार, "पाठ्यक्रम कलाकार (शिक्षक) के हाथ में एक साधन है जिसमें वह अपने पदार्थ (शिक्षार्थी) को अपने आदर्श (उद्देश्य के अनुसार अपने कलाकक्ष (स्कूल) में ढाल सके।"

(According to **Cunniggham,** "The Curriculum is the tool in the hand of the artist (the teacher) to mould his material (The pupil) according to his ideal (objective) in his studio (the school".)

4. **एनन,** "पाठ्यक्रम पर्यावरण में होने वाली क्रियाओं का योग है।"

("The Curriculum is the sum total of the activities that go on in the environment.") —**Anon**

5. **ब्रूबेकर** के अनुसार, "पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विद्यालय के नियन्त्रण में सीखने वाले के समस्त अनुभव आते हैं। यह पाठ्य वस्तु, पाठ्य-पुस्तक यहां तक कि अध्ययन विषय से अधिक है। पाठ्यक्रम सम्पूर्ण स्थिति तथा स्थितियों का समूह है जो शिक्षक तथा विद्यालय प्रशासक को प्राप्त होता है। इसके द्वारा विद्यालय के दरवाजे से गुजरने वाले बालकों एवं युवकों के आचरण में परिवर्तन किया जाता है।"

(According to **Brubacher,** "Curriculum consists of all the experiences of the learner under the control of school. It is more than the textbook, more than subject matter, more even than a course of study. It is the total situation or group of situations available to teacher and school administrator through with to make behavious charges in the endless stream of children and youth who pass through the doors of the school." **-Brubacher**)

6. माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, "पाठ्यक्रम का अर्थ केवल शास्त्रीय विषयों से नहीं है जिनको विद्यालय में परम्परागत ढंग से पढ़ाया जाता है बल्कि इसमें अनुभवों की सम्पूर्णता निहित है जिनको बालक बहुत प्रकार की क्रियाओं द्वारा प्राप्त

करता है जो विद्यालय, कक्षा-कक्ष, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, वर्कशाप, खेल के मैदान तथा छात्रों एवं शिक्षकों के मध्य होने वाले अनेक औपचारिक सम्पर्कों में होती रहती है। इस प्रकार विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन पाठ्यक्रम हो जाता है जो बालकों के जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श कर सकता है और सन्तुलित व्यक्तित्व के विकास में सहायता प्रदान कर सकता है।"

(According to **Secondary Education Commission,** "Curriculum does not mean only academic subject traditionally taught in the school but it includes the totality of experiences that pupil receives through the manifold activities that go on in the school, in the class-room, library, workship, playgrounds and in the numerous informal contact between teachers and pupils. In this sense the whole life of the students at all points and help in the evolution of a balanced personality.")

7. **हेनरी जे.ओटो,** "पाठ्यक्रम वह साधन है जिसके द्वारा हम बच्चों को शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के योग्य बनाने की आशा करते हैं।"

("The Curriculum may be considered as the vehicle where by and through which we hope to enable children to achieve the objective of education.") —**Henry, J. Otton.**

8. **मुनरो,** "पाठ्यक्रम में वे समस्त अनुभव निहित हैं जिनको विद्यालय द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग में लाया जाता है।"

("Curriculum embodies all the experiences which are utilized by the school to attain the aims of education.") —**Munro**

9. **शिक्षा आयोग,** "विद्यालय की देखभाल में उसके अन्दर तथा बाहर अनेक प्रकार के कार्यकलापों से छात्रों को विभिन्न अनुभव प्राप्त होते हैं। हम विद्यालय पाठ्यक्रम को इन अध्ययन अनुभवों की समष्टि मानते हैं।"

("We concieve of the school curriculum as the totality of learning experiencs that the school provides for the pupils through all the manifold activities in the school or outside that are carried on under its supervision." —**Education Commission (1964-66)**

10. **रूडयार्ड व हैनरी,** "अपने व्यापक अर्थ में पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सम्पूर्ण विद्यालय वातावरण आता है जिसमें सभी प्रकार के कोर्स (पाठ्य-विषय), क्रियाएं, पढ़ना तथा साहचर्य सम्मिलित है जो छात्रों को विद्यालय में प्राप्त होते हैं।"

("Curriculum in its broadest sense includes the complete schools environment involving all the course, activities, readings and associations furnished to the pupils in the school.")

—**K.B. Rudlyard & H.K. Henary**

उपर्युक्त परिभाषाओं से पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं -

1. पाठ्यक्रम में अनुभवों की सम्पूर्णता निहित है।
2. पाठ्यक्रम लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन है।
3. पाठ्यक्रम में निहित अनुभवों का प्रयोग शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है।
4. इसमें विद्यालयी तथा विद्यालय के बाहर के अनुभव एवं क्रियाकलाप आते हैं।
5. सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण पाठ्यक्रम है।

पाठ्यक्रम संरचना के आधार
(Basis of Construction of Curriculum)

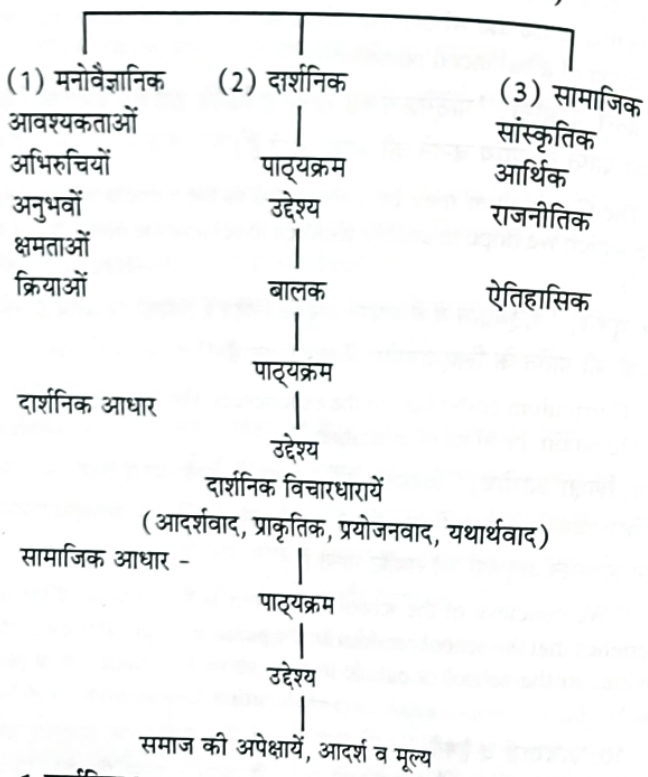

1. दार्शनिक आधार (Philosophical Bases) : प्रकृतिवादी बालक के स्वाभाविक विकास को प्रमुख उद्देश्य मानती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम में खेल-कूद, व्यायाम, पर्यटन, प्रकृति, निरीक्षण, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों का प्रमुख स्थान प्रदान किया जाता है। प्रयोजनवादी के अनुसार सत्य परिवर्तनशील है। मनुष्य तथा उसकी परिस्थितियां सत्य की निर्माणक है। प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम छात्रों की रुचियों पर

आधारित किया जाता है। इसमें पाठ्य सामग्री के लिए कोई स्थान नहीं है। यह पाठ्य सामग्री का प्रयोग छात्रों की आवश्यकताओं तथा अभिरुचियों से सम्बद्ध करके करता है। यथार्थवादी विचारधारा प्रत्यक्ष जगत को वास्तविक जगत मानती है। यह विचारधारा शिक्षा का लक्ष्य बालक (छात्र) को उस भौतिक व्यवस्था को समझने तथा उसके साथ समायोजन करके सहायता प्रदान करना निर्धारित करती है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यथार्थवादी पाठ्यक्रम में उन विषयों को शामिल किया जाता है जो भौतिक जगत को स्पष्ट कर सकें।

2. मनोवैज्ञानिक आधार (Psychological Base) : **हेरोल्ड टी. जानसन** के अनुसार, "पाठ्यक्रम मनोवैज्ञानिक आधार मनोविज्ञान के वे पक्ष हैं जो अधिगम प्रक्रिया (Learning Process) को प्रभावित करते हैं।" वे पाठ्यक्रम निर्माता को शिक्षार्थी के व्यवहार के सम्बन्ध में बुद्धिमतापूर्ण निर्णय लेने में सहायक होते हैं। पाठ्यक्रम को बालकों की आवश्यकताओं, अभिरुचियों, क्षमताओं, अनुभवों, अभियोग्यताओं आदि पर आधारित करने का जो प्रयास किया जाता है।

3. ऐतिहासिक आधार (Historical Base) : **जोन्स** के अनुसार, "इतिहास जीवन के अनुभवों की खान है और आज का युवक उसका अध्ययन इसलिए करता है जिससे कि वह जाति के अनुभवों से लाभ उठा सके।" पाठ्यक्रम ऐसी सामग्री उपलब्ध कराये जिसकी सहायता से भविष्य के अच्छे और स्पष्ट प्रयोग सम्भव हो।

4. सामाजिक आधार (Social Base) : **फ्रैंक मुसग्रेव** (Frank Musgrave) के अनुसार, "अभी तक प्राय: यह माना जाता रहा है कि पाठ्यक्रम के क्षेत्र में समाजशास्त्र का योगदान शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में ही है और अधिगम अनुभवों तथा पाठ्य-वस्तु (Content) के चयन एवं मूल्यांकन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह दृष्टिकोण उपयुक्त नहीं है, क्योंकि पाठ्यक्रम जिस सामाजिक स्थिति में संचालित होता है वह उद्देश्यों के अतिरिक्त पाठ्य वस्तु तथा अधिगम अनुभवों के चयन तथा शिक्षण विधियाँ एवं मूल्यांकन प्रक्रिया के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।"

अत: पाठ्यक्रम की मुख्य क्रियाएं इस प्रकार होनी चाहिए -

1. सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, भौगोलिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ।
2. सांस्कृतिक परम्पराएं, रीति-रिवाज़, आकाँक्षाएं तथा मूल्य प्रतिमान।
3. विश्वास, आस्थाएं, मूल्य तथा नैतिकता।
4. छात्रों में सामाजिक योगदान एवं उत्तरदायित्व।

5. वैज्ञानिक आधार (Scientific Base) : वैज्ञानिक नियमों, सिद्धान्तों, परिणामों को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करने पर बल ताकि सामाजिक प्रगति में सहायक हो सके। सामाजिक कार्यों को नवीन रूप दिया जा सके। साथ ही वर्तमान की आवश्यकताओं से सम्बन्धित किया जा सके।

पाठ्यक्रम का महत्त्व (Importance of Curriculum)

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में पाठ्यक्रम एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसकी आवश्यकता तथा महत्त्व इस प्रकार से है :

1. शैक्षिक लक्ष्यों व उद्देश्य प्राप्ति का माध्यम (Means of Achieving Educational Aims and Objectives) : शैक्षिक लक्ष्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति में पाठ्यक्रम एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक पाठ्यक्रम के बिना शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करना असम्भव है।

2. ज्ञान प्राप्ति का साधन (Source of Acquisition of Knowledge) : पाठ्यक्रम ज्ञान प्राप्ति का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इससे छात्र के साथ-साथ शिक्षक भी अपने ज्ञान और सूचना में वृद्धि कर पाते हैं।

3. छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति (Fulfillment of Student Needs and Requirements) : पाठ्यक्रम की एक अन्य महत्ता यह है कि यह छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

4. शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में निरन्तरता (Continuity in Teaching-Learning Process) : पाठ्यक्रम विभिन्न तरीके सुझाता है जिससे शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में निरन्तरता लाई जा सके। किसी भी प्रकार के अधिगम को प्रभावशाली बनाने के लिए उसमें निरन्तरता अति आवश्यक है।

5. छात्रों का सर्वांगीण विकास (All-round Development of the Child) : शिक्षा का लक्ष्य छात्र का सर्वांगीण विकास करना है। छात्र के व्यक्तित्व को प्रभावी बनाने के लिए पाठ्यक्रम विभिन्न तकनीकों का सुझाव देता है।

6. शिक्षण-विधि का चयन (Selection of Appropriate Methods of Teaching) : सभी विषयों के उपविषय एक ही शिक्षण-विधि द्वारा नहीं पढ़ाए जा सकते हैं। शिक्षण की विभिन्न विधियां होती हैं। पाठ्यक्रम एक उचित शिक्षण-विधि का चुनाव करने में सहायता प्रदान करता है।

7. उचित शिक्षण-सामग्री का चयन (Selection of Appropriate Teaching Material) : शिक्षण-सामग्री में विभिन्न प्रकार की सामग्री पाई जाती है जैसे : श्यामपट्ट, मॉडल, चार्ट, कम्प्यूटर, प्रोजैक्टर आदि। पाठ्यक्रम शिक्षक की सहायता एक उचित शिक्षण विधि के चुनाव में करता है।

8. विभिन्न विषय (Different Subject) : विभिन्न विषयों के विषय-वस्तु और सिलेबस के बारे में निर्णय लेने में पाठ्यक्रम महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह भी इसकी आवश्यकता को दर्शाता है।

9. सामुदायिक संसाधनों का प्रयोग (Utilization of Community Resources) : सामुदायिक संसाधन छात्र को सिखाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को व्यावहारिक व प्रभावशाली बनाते हैं। पाठ्यक्रम इन संसाधनों को शिक्षा में प्रयोग करने पर बल देता है।

10. अध्यापकों के लिए मापदण्ड (Criteria for Teachers) : पाठ्यक्रम ने लक्ष्य, उद्देश्य व शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के बारे में सुझाया है। यह सिलेबस के बारे में भी यह सुझाव देता है कि कितने समय में कितना सिलेबस हो। यह सूचना अध्यापक के लिए मापदण्ड का काम करती है।

11. लोकतांत्रिक गुणों का विकास (Development of Democratic Values) : पाठ्यक्रम लोकतान्त्रिक गुण छात्र में उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करता है। यह उनमें समानता तथा भाईचारे की भावना भी उत्पन्न करता है।

12. उत्तम नागरिकता का विकास (Development of Democratic Values) : पाठ्यक्रम छात्रों में उत्तम नागरिकता का विकास करता है। पूर्ण व सही पाठ्यक्रम देश व समाज के नागरिकों की उनके कार्यों व कर्त्तव्यों के प्रति जागरुक करता है ताकि वे अच्छे नागरिक बन सकें जो कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

13. अनुसन्धान के लिए उपयोग (Helpful in Research) : पाठ्यक्रम किसी भी शोध को करने में अध्यापकों व विद्यार्थियों की सहायता करता है। आज के इस आधुनिक युग में शैक्षिक कार्यक्रमों शिक्षण, अधिगम प्रक्रिया तथा तरीकों को विकसित करने के लिए नए-नए अनुसन्धानों की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए एक निश्चित पाठ्यक्रम के माध्यम से इन कार्यों को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

14. पूर्ण प्रबन्धन में सहायक (Helpful in Proper Management) : पाठ्यक्रम शिक्षा की प्राथमिक इकाई से लेकर उच्च ईकाई तक के सभी स्तरों को पूर्ण प्रबन्धन करने में सहायता प्रदान करता है। यह स्कूल प्रबन्धन अध्यापक व विद्यार्थियों में आपसी तालमेल उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करता है। पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षा का उचित आयोजन भी किया जा सकता है।

15. अधिगम के वातावरण को तैयार करना (Creation of Proper Learning Environment) : पाठ्यक्रम शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए नए-नए तरीकों, क्रियाओं तथा विषय में सम्बन्धित सामग्री प्रदान करता है। पाठ्यक्रम के माध्यम से कक्षा में विद्यार्थियों के लिए अधिगम का वातावरण तैयार किया जा सकता है। इसलिए पाठ्यक्रम को कक्षा के वातावरण में महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता है जिससे छात्रों को सीखने के प्रति रुचि पैदा होती है।

सामाजिक विज्ञानों का एक अच्छा पाठ्यक्रम डिज़ाइन करने के सिद्धान्त (Principles of Designing a Good Curriculum of Social Sciences)

शाब्दिक दृष्टि से देखा जाए तो पाठ्यक्रम को अंग्रेज़ी में Curriculum कहा जिसके सम्बन्ध में यह विचार है कि यह शब्द लेटिन भाषा के क्यूररे Currere शब्द उत्पन्न हुआ जिसका अर्थ है दौड़ का मैदान। जिस पर व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु भागता है। इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि पाठ्यक्रम वह साधन है जो शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में हमारी सहायता करता है। सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम के प्रत्येक विलय क्षेत्रों के भागों से सम्बन्धित प्रारूप के सिद्धान्त –

1. भविष्य चेतना सिद्धान्त : यह विचारधारा यह मानती थी पाठ्यक्रम निर्माण का आधार भविष्य हेतु उपयोगी ज्ञान प्रदान करना होना चाहिए। इनका विचार था कि शिक्षा द्वारा बालक को इस योग्य बनाना चाहिए कि वह भावी समाज के साथ अपना समायोजन कर सके और समाज की प्रगति में अपना योगदान दे सकें।

2. संरक्षण का सिद्धान्त : यह सिद्धान्त यह मानता है कि जो प्राचीन है, वही श्रेष्ठ है और इसी कारण पाठ्यक्रम को अतीत के अनुभवों पर आधारित होना चाहिए। **स्मिथ** के शब्दों में, "अतीत काल में जिस मुख्य उद्देश्यों से प्रेरित होकर पाठ्यक्रम निश्चित किया जाता था, वह भी प्रौढ़ की इच्छा, जिसके अनुसार वह बच्चों को अपनी ही प्रतिछाया सा बनाना चाहते थे।"

(The Predominant motive in the past which determined the curriculum was the desire of the adult of fashion the child after his son image."

—Smith)

"**हार्न** भी इसी कारण यह मानते थे कि पाठ्यक्रम जाति द्वारा समाज के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप की गई क्रियाओं की अभिव्यक्ति है।"

(Curriculum is the representative of what the race has done in its contact with its world."

—Horn)

इस विचारधारा वाले यह भी मानते थे कि पाठ्यक्रम सभ्यता व संस्कृति के सुरक्षित रखने का एक माध्यम है।

3. जीवन की तैयारी का सिद्धान्त : जैसा कि हम सभी जानते हैं कि शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होता है बालक को भावी जीवन हेतु तैयार करना जिससे वह जीवन में सफलता की ओर उन्मुख हो सके। **स्मिथ व हैरिसन** ने ठीक ही कहा है, "शिक्षा बालक को एक व्यक्ति मानती है जो अपनी ही क्रियाओं द्वारा विकसित हो रहा है, अपने ही वातावरण में रह रहा है और अपने प्रौढ़ जीवन हेतु तैयार कर रहा है, व्यस्कों का अनुकरण करके नहीं वरन् बचपन के वातावरण में संभवत: जितनी पूर्णता हो सके, जीवन-यापन कर सके।"

("Education regard the child as an individual growing by his own activity, living in his own environment and preparing himself for adult life, not by imitating the adult, but by living as fully as possible in the environment of childhood." —Smith and Harrison)

4. सृजनात्मक सिद्धान्त : रायबर्न का विचार था कि, " पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वह सभी विषय होने चाहिए जो बालक को सृजनात्मक तथा रचनात्मक शक्तियों के विकास में अपना योगदान दे सकें। जो उसकी सक्रिय अभिरुचियों का पल्लवन करें व उन्हें उनकी जन्मजात शक्तियों के मार्गन्तीकरण के अवसर प्रदान करें।"

("The Curriculum will include those subjects which will able the child to exercise its creative and constructive powers, which will catter for his active interests, which will give him opportunities to sublimate the instructive powers with which he has been endowned." —Ryburn)

5. उदात्त आचरण के आदर्शों का सिद्धान्त : इसका तात्पर्य है कि पाठ्यक्रम में यह बातें निहित की जाएं जो व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित न बनने दें चूंकि इस प्रकार व्यक्ति दूसरों के हितों की चिंता नहीं करता। शिक्षा द्वारा व्यक्ति को यह सिखाना है कि वह दूसरों की भलाई कर सके। **क्रो एण्ड क्रो** के अनुसार, "एक बहुत छोटे बच्चे के लिए आत्मकेन्द्रित होना बहुत ही स्वाभाविक है। प्रथमत: उसे ही बहुत सुरक्षा और ध्यान की आवश्यकता है किन्तु जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाएगा, उसे आत्म-चिंतन सीखने की आवश्यकता है तथा किसी अन्य की अपेक्षा यह प्रशिक्षण माता-पिता तथा अन्य साथियों द्वारा दिया जा सकता है, किन्तु यह शिक्षकों का दायित्व है क्योंकि वह कार्यात्मक रूप से प्रकल्पित पाठ्यक्रम पर आधारित उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग करते हैं।"

("It is natural for a very young child to be egocentric. He needs a great deal of attention and care at first, but as he grows older, he needs training in self-care and in consideration for others, this guidance may be given by this parents and other associates, but it is also the responsibility of the teacher as they apply good teaching techniques base upon a functionally devised curriculum." —Crow & Crow)

6. खेल तथा क्रिया सम्बन्ध सिद्धान्त : "विभिन्न शिक्षाविदों ने शिक्षा को इन्द्रिय अनुभवों पर आधारित एक प्रकिया माना है अर्थात् इस दुनिया में बहुत सी बातें बालक स्वज्ञान के आधार पर सीखता है। कुछ शिक्षाशास्त्री यह भी मानते हैं कि बालक को प्रारम्भ में जो भी ज्ञान प्रदान किया जाए, वह खेल के सिद्धान्तों पर आधारित हो तथा शिक्षा उन्हें बोझिल प्रक्रिया के रूप में प्रतीत न होकर एक स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में प्रतीत हो और यह तभी संभव है जबकि हम शिक्षा को आनन्ददायी प्रक्रिया बनाये। **क्रो एण्ड क्रो** के अनुसार, सीखने की क्रियाओं को खेलने के स्तर पर नहीं उतार लाना

चाहिए वरन् उन्हें इतना रुचिकर और प्रभावशाली बनाना चाहिए ... बनाया जा सकता है। कदाचित यह कमजोर शैक्षिक नीति होगी कि बालक ... शैक्षणिक प्रक्रिया को तात्कालिक संतोष के लिए खेल समझ बैठे ... खेल के साथ सीखना एक क्रिया है।"

("Learning activities should not be reduced to the play level but ... be made as interesting as effective learning allows. It probably ... educational policy to encourage a child to regard all learning as a form ... immediately satisfying play learning is work which may be accompanied by the play activities."

Crow & Crow

7. विकास की सतत् प्रक्रिया का सिद्धान्त : पाठ्यक्रम के लिए यह सामान्य सिद्धान्त है कि उसमें परिवर्तन होता रहे। वह पाठ्यक्रम कभी भी अच्छा नहीं समझा जाता जिसमें वह समय व परिस्थिति के हिसाब से परिवर्तन नहीं होता था जो शिक्षा ... है। यदि हम शिक्षा को विकासोन्मुखी प्रक्रिया बनाना चाहते हैं तो इसके पाठ्यक्रम को हमें विकास के सिद्धान्त पर आधारित करना होगा। पाठ्यक्रम के माध्यम से एक योग्य एवं कुशल प्रशासक पाठ्य वस्तु तथा शैक्षिक अनुभवों को व्यवस्थित ढंग से विद्यार्थियों को प्रदान करता है। कोठारी शिक्षा आयोग व राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने भी पाठ्यक्रम के विषय में चर्चा की है। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने पाठ्यक्रम में विविधता (Diversified Curriculum) की बात तो कही ही है, साथ ही छात्रों को इस दृष्टि से कुशल नागरिकों का विकास करना होना चाहिए। साथ ही छात्रों को इस दृष्टि से कुशल बनाना चाहिए कि वह प्रजातंत्रों के आदर्शों का अनुपालन करे।

8. संस्कृति तथा सभ्यता के ज्ञान का सिद्धान्त (Principle of knowledge of culture and civilization) : पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन क्रियाओं, वस्तुओं तथा विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। जिनके द्वारा बालकों को अपनी संस्कृति तथा सभ्यता का ज्ञान हो जाये। दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा तथा विकास करें।

9. अनुभवों की पूर्णता का सिद्धान्त (Principle of the Totality of Experiences) : पाठ्यक्रम के अन्तर्गत मानवजाति के अनुभवों की सम्पूर्णता निहित होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सैद्धान्तिक विषयों के साथ-साथ मानव जाति के उन सभी अनुभवों को उचित स्थान मिलना चाहिए जिन्हें बालक स्कूल में, खेल के मैदान में, कक्षागत में, पुस्तकालय में, प्रयोगशाला में तथा शिक्षक के अनौपचारिक सम्पर्कों द्वारा सीखता रहता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग का भी यही विचार है - "पाठ्यक्रम का अर्थ केवल सैद्धान्तिक विषयों से ही नहीं लिया जाता वरन् उसमें अनुभवों की सम्पूर्णता निहित होती है।"

10. उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Utility) : पाठ्यक्रम में उन क्रियाओं तथा विषयों को स्थान मिलना चाहिए जो बालक के वर्तमान तथा भावी जीवन के लिए उपयोगी हो। दूसरे शब्दों में जो क्रियाएं तथा विषय बालक के वर्तमान तथा भावी जीवन के लिए उपयोगी नहीं हैं पाठ्यक्रम में सम्मिलित नहीं करनी चाहिए।

11. स्वरूप आचरण के आदर्शों की प्राप्ति का सिद्धान्त (Principle of Achievement of Wholesome Behaviour Patterns) : पाठ्यक्रम में उन क्रियाओं, वस्तुओं तथा विषयों को स्थान मिलना चाहिए जिनके द्वारा बालक दूसरे के साथ प्रशंसनीय व्यवहार करना सीख जाए। **क्रो और क्रो** महोदय का कथन है, "पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार से किया जाना चाहिए, जिससे वह बालकों को उत्तम आचरण के आदर्शों की प्राप्ति में सहायता कर सकें।"

12. विविधता तथा लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of Variety and Elasticity): प्रत्येक बालक की रुचियां, आवश्यकताएं, योग्यताएं तथा मनोवृत्तियां एक दूसरे से भिन्न होती हैं। इस विभिन्नता की दृष्टि में रखते हुए पाठ्यक्रम में विविधता तथा लचीलापन होना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा आयोग का भी यही विचार है - पाठ्यक्रम में काफी विविधता तथा लचीलापन होना चाहिए जिससे कि वैयक्तिक विभिन्नताओं तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं एवं रुचियों का अनुकूलन किया जा सके।

13. अग्रदार्शिता का सिद्धान्त (Principle of Forward Look) : पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन क्रियाओं तथा विषयों को स्थान मिलना चाहिए जिनके द्वारा बालक को उसके भावी जीवन में आने वाली परिस्थितियों का ज्ञान हो जाए तथा उनके साथ अनुकूलन भी कर ले। दूसरे शब्दों में, सीखा हुआ ज्ञान ऐसा होना चाहिए जो बालक को अनुकूलन तथा आवश्यकता पड़ने पर परिस्थितियों में परिवर्तन के योग्य भी बना दे।

14. सामुदायिक जीवन से सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Relationship with Community Life) : पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय स्थानीय आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए उन सभी सामाजिक प्रथाओं, मान्यताओं तथा समस्याओं का स्थान मिलना चाहिए जिनसे बालक सामुदायिक जीवन की मुख्य-मुख्य बातों से परिचित हो जाए। माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, "पाठ्यक्रम सामुदायिक जीवन से सजीव तथा आंगिक रूप से सम्बन्धित होना चाहिए।"

15. जीवन सम्बन्धी समस्त क्रियाओं के समावेश का सिद्धान्त (Principle of inclusion of all life Activities) : **स्पेन्सर** के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य जीवन को पूर्णता प्रदान करना है। अतः पाठ्यक्रम में जीवन से सम्बन्धित उन सभी क्रियाओं को स्थान मिलना चाहिए जिनसे बालक का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक सभी ... का समुचित विकास हो जाए।

16. सह-सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principles of correlation) : पाठ्यक्रम को अलग-अलग संबंधहीन टुकड़ों में विभाजित करने से उसका महत्त्व तथा प्रभाव कम हो जाता है। इसके विपरीत पाठ्यक्रम के विषयों में सहसंबंध स्थापित करने से बालक ज्ञान के समग्र रूप में सम्मिलित किए हुए विषय पृथक-पृथक नहीं होते, अपितु उनका एक दूसरे से सह-सम्बन्ध छात्र सीखता है।

17. समन्वय का सिद्धान्त : हरबर्ट ने सर्वप्रथम यह बताया कि हमारे पाठ्यक्रम में कोई समन्वय नहीं है तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बालक के विकास अर्थात् रुचि व अवबोध विकास व सहज और व्यवस्थित रूप से ज्ञान को प्रदान करने हेतु समन्वय अथवा एकीकरण आवश्यक है। इसके लिए एक पाठ को दूसरे पाठ से (शीर्षात्मक समन्वय तथा विषय को दूसरे विषय से) समन्वित करना चाहिए।

सामाजिक विज्ञानों के मौजूदा पाठ्यक्रम का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal of Existing Curriculum in Social Sciences)

सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में दोष (Defects in the Curriculum of Social Studies)

सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में सुधार करने के कई बार प्रयास किये गये। परन्तु थोड़े बहुत परिवर्तन के अतिरिक्त कुछ और नहीं हो सका। सन् 1952 में मुदालियर कमीशन ने सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में सुधार करने के लिए महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की थीं जिससे इसके बाह्य स्वरूप में तो परिवर्तन दिखाई दिया परन्तु आन्तरिक स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आया। सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित दोष हैं -

1. एकीकरण का अभाव (Lack of Integration) : इस बात को सभी स्वीकार करते हैं कि सामाजिक अध्ययन के विषय (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र तथा अर्थ-शास्त्र) को अलग-अलग विषय नहीं बल्कि एक रूप में स्वीकार करना चाहिए क्योंकि कोई भी सामाजिक समस्या एकाकी रूप में नहीं समझी जा सकती। प्रत्येक समस्या का सामाजिक ,राजनीतिक, भौगोलिक और आर्थिक पहलू होता है वे सब पहलू एक-दूसरे से जुड़े होते हैं इसलिए सामाजिक अध्ययन की विषय सामग्री का एकीकृत ज्ञान देना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता। आज भी इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र को अलग-अलग पढ़ाया जाता है। विद्यार्थियों को सामाजिक जीवन की समस्याओं का ज्ञान एक रूप में नहीं हो सकता जब एक उन्हें सामाजिक अध्ययन विषय को सम्पूर्ण रूप से एकीकृत करके नहीं पढ़ाया जाता। इस कमी को दूर करने के लिए उपयुक्त पुस्तकों की जरूरत है।

2. समन्वय का अभाव (Lack of Co-ordination) : सामाजिक अध्ययन के ज्ञान से व्यक्ति में मानवता का विकास होता है। परन्तु व्यक्ति को एक अच्छा नागरिक

बनाने और मानवता का विकास करने के लिये आवश्यक है कि सभी विषयों का सामाजिक अध्ययन के साथ समन्वय करके शिक्षा दी जाये। समन्वय की भावना से एक तो पाठ्यक्रम हल्का हो जाता है दूसरे व्यावहारिक हो जाता है और विद्यार्थी पढ़ने में रुचि लेते हैं।

3. पुस्तकीय तथा सैद्धान्तिक (Bookish and Theoretical) : सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में पुस्तकीय तथा सैद्धान्तिक पक्ष पर विशेष बल दिया जाता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परीक्षा पर विशेष बल दिया जाता है। अत: परीक्षा पास करने के भय से विद्यार्थी पुस्तकों में लिखी बातों को रट लेते हैं पर जिनका उनके व्यावहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता। सामाजिक अध्ययन की शिक्षा द्वारा विद्यार्थी में ज्ञान, कौशल तथा जीवन के मूल्यों की वृद्धि होती है। इसलिए व्यावहारिक पक्ष पर विशेष बल होना चाहिए जबकि सामाजिक अध्ययन जैसे व्यावहारिक विषय का ज्ञान की परीक्षा तक सीमित रह जाता है। पुस्कतें विद्यार्थी का निर्देशन करती हैं। अत: पुस्तकें ज्ञान प्राप्त करने का साधन होती हैं, साध्य नहीं।

4. जीवन का यथार्थता का अभाव (Lack of reality of Life) : सामाजिक अध्ययन की शिक्षा द्वारा छात्र-छात्राओं को समाज की वास्तविकता का ज्ञान कराया जाता है परन्तु सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम समाज की यथार्थता का ज्ञान कराने में असफल है। पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाने वाली विषय-वस्तु वास्तविक जीवन से भिन्न होती है। विद्यार्थी दो संसार के विचारों में रहता है- एक संसार तो विद्यालय के पाठ्यक्रम का सैद्धान्तिक है दूसरा वह समाज जिसमें विद्यार्थी रहता है। इन सबका परिणाम यह होता है विद्यार्थी सामाजिक अध्ययन के पढ़ने में रुचि नहीं लेते। सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में देश की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था में हुए परिवर्तनों के अनुसार परिवर्तन नहीं हुए इसलिए हमारा पाठ्यक्रम देश की प्रगति की दशा से बहुत पिछड़ा रहा।

5. परीक्षा की प्रधानता (Examination Oriented) : वर्तमान शिक्षा में परीक्षाओं को बहुत महत्त्व दिया जाता है। विद्यार्थी का मुख्य उद्देश्य परीक्षा उत्तीर्ण करना होता है इसलिए विद्यार्थी पाठ्यक्रम की उन्हीं बातों को पढ़ता और याद रखता है जो परीक्षा में पूछी जाती है। विद्यालय की सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया का मुख्य केन्द्र परीक्षाएं होती हैं इससे पाठ्यक्रम के उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती।

6. पाठ्यक्रम में अनावश्यक पाठ्यवस्तु का समावेश (Inclusion of Unnecessary Subject matter in Curriculum) : पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय किसी विषय के उद्देश्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए परन्तु कई बार पाठ्यक्रम में ऐसी पाठ्यवस्तु को शामिल कर दिया जाता है जो उस विषय के शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने

दे असमर्थ होती है। सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में ऐसी पाठ्यवस्तु का समावेश हो समय से पिछड़ी हुई है।

7. **विद्यार्थियों की रुचि तथा विकास की अवहेलना** (Ignoring the interest and development of Students) - शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को अच्छे नागरिक बनाना है परन्तु सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में एक बड़ी कमी यह है कि विद्यार्थियों की रुचि तथा उनकी विकास की अवस्थाओं का ध्यान नहीं रखा गया है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बच्चों की रुचियां तथा क्षमताएं भिन्न-भिन्न होती हैं। सभी बच्चों की ग्रहण और विचार शक्ति एक जैसी नहीं होती इसलिए वे विषय-वस्तु को पढ़ने में रुचि नहीं ले पाते हैं।

सुधार के लिए सुझाव (Suggestions for Improvement)

वास्तव में स्थानीय वातावरण सामाजिक विज्ञान की प्रथम पाठ्य-पुस्तक है और सामुदायिक वातावरण पाठ्यक्रम की प्रयोगशाला है। किसी विषय के पाठ्यक्रम के निर्माण के लिए समाज की परम्पराओं, विशेषताओं तथा अनुभवों को ध्यान में रखना आवश्यक है क्योंकि शिक्षा संस्कृति की प्रतीक है। यदि इनको ध्यान में नहीं रखेंगें तो हम अपने बालकों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकेंगें। इसलिए सामुदायिक वातावरण की विशेषताओं को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। छात्र स्थानीय वातावरण की आधारशिला पर वे अपने जिले, प्रदेश तथा सम्पूर्ण समाज का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम की रचना करते समय निम्नलिखित प्रकरण पर बल देना होता है।

विभिन्न कक्षाओं के लिए सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम में अग्रलिखित प्रकरणों को स्थान दिया जाना चाहिए -

1. भारत की संरचना।
2. भारत के प्राकृतिक विभाग।
3. प्राकृतिक साधनों का उपयोग।
   (i) भूमि
   (ii) खनिज पदार्थ
   (iii) पशु सम्पत्ति
   (iv) प्राकृतिक वनस्पति
4. भारत के विभिन्न राज्यों में लोगों का जीवनयापन प्रत्येक राज्य की स्थिति प्राकृतिक विभाग, मुख्य नदियाँ, झीलें, जलवायु, वनस्पति, भोजन, वस्त्र, मकान, फसलें, पेशे, भाषा, त्योहार, धार्मिक एवं उद्योग आदि।

5. यातायात तथा सन्देश वाहन-
   (i) भारत में यातायात
   (ii) भारत में संचार व्यवस्था
6. भारत की मुख्य समस्याएँ-
   (i) सामाजिक परिवर्तन
   (ii) राष्ट्रीय एकता
   (iii) लोकतन्त्र में जीवन
   (iv) साम्प्रदायिकता
7. सभ्यता का विकास-
   (i) प्राचीन विश्व की कुछ सभ्यताएँ
   (ii) आदिकालीन मानव समाज
   (iii) मध्यकालीन विश्व
   (iv) विश्व के प्रमुख धर्म
   (v) औद्योगिक क्रान्ति
   (vi) धर्म सुधार आन्दोलन तथा पुनर्जागरण
   (vii) विश्व की विभिन्न क्रान्तियां
8. आर्थिक विकास के लिए नियोजन-
   (i) कृषि-विकास
   (ii) औद्योगिक विकास (भारी तथा बुनियादी उद्योग)
   (iii) कुटीर एवं लघु स्तरीय उद्योग
   (iv) पंचवर्षीय योजनाएं
   (v) भारत के कुछ बड़े नगर एवं उनकी समस्याएं।
9. विश्व शान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग-
   (i) विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन
   (ii) अन्तर्राष्ट्रीय संगठन राष्ट्र संघ एवं संयुक्त राष्ट्र संघ।
10. सामाजिक घटनाएं-

इनके अतिरिक्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक तत्कालीन घटनाओं के स्थान दिया जाये।

11. भारत तथा विश्व के महान् पुरुष एवं नारियाँ-

(i) महावीर, गौतम बुद्ध, शंकराचार्य, विवेकानन्द, जोरास्टर, सुकरात, ईसा मसीह, मुहम्मद साहब, अब्राहम लिंकन, टॉलस्टाय आदि।

(ii) अकबर, राणा प्रताप, चाँद बीवी, शिवाजी, बाजीराव प्रथम, रणजीत सिंह, राजा राम मोहन राय।

12. शासन प्रशासन सम्बन्धी कार्य-

(i) राज्यों की शासन व्यवस्था

(ii) संघीय शासन व्यवस्था

(iii) स्थानीय शासन व्यवस्था

(iv) संविधान एवं मूलाधिकार

(v) नागरिकों के कर्त्तव्य।

जूनियर हाई स्कूल स्तर : इस स्तर के अन्तर्गत कक्षा 6, 7 तथा आती है निम्नलिखित प्रकरणों को इन कक्षाओं में बाँटा जा सकता है -

1. स्थानीय समाज की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना : यह सर्वेक्षण छात्रों द्वारा स्वयं किया जाना चाहिए। इसके अन्तर्गत उन्हें निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए।

1. भारत के प्राकृतिक भाग

2. जलवायु

3. व्यवसाय तथा उद्योग

4. **कृषि एवं स्थानीय फसलों का वर्णन खाद्य-समस्या :** उन वैज्ञानिक एवं कृषि शास्त्रियों के विषय में अवगत कराया जाये जिन्होंने विभिन्न प्रकार की खाद्य वस्तुओं के पौधों के विषय में अनुसन्धान कार्य किया है, जैसे सर वेंकटरमन आदि।

5. सिंचाई-व्यवस्था।

6. यातायात के साधन मनुष्य, पशु, पवन, भाप, इंजन आदि। भारत तथा विश्व की जहाज या नौका चलाने योग्य नदियां, समुद्री मार्ग, भारत में रेलों का विकास, सड़क यातायात, यातायात के विभिन्न साधनों का संक्षिप्त इतिहास एवं उनका विकास प्राचीनकाल के संचार साधन, आधुनिक काल के संचार साधनों का संक्षिप्त इतिहास, यातायात एवं संचार के विभिन्न साधनों का मानव जीवन पर प्रभाव।

7. स्थानीय शासन व्यवस्था।

8. सामुदायिक स्वास्थ्य-विज्ञान (Community Hygiene)।

9. लोगों के रहन-सहन - राष्ट्रीय पोशाक, प्राचीन भारत की पोशाकें, वस्त्रों के निर्माण में स्थानीय सामग्री-रूई, खालें आदि का प्रयोग, जलवायु तथा भौतिक परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग।

विभिन्न युगों में रहने वाले लोगों के आवास, उनकी निर्माण प्रक्रिया उनके निर्माण में प्रयोग आने वाली सामग्री, विभिन्न युगों एवं स्थानों के लोगों के आवास।

10. विभिन्न शक्तियों : इसके अन्तर्गत छात्र को इस बात से अवगत कराया जाए :

(i) मानव-शक्ति (Man-Power)

(ii) पशु-शक्ति (Animao-Power)

(iii) जल-शक्ति (Water-Power)

(iv) भाप-शक्ति (Steam-Power)

(v) अणु-शक्ति (Atomic Power)

11. उपकरण एवं साज-सज्जा : प्राचीनकाल के यन्त्र, लकड़ी के प्रारम्भिक यन्त्र लोहे तथा इस्पात के औजार, इस्पात का उत्पादन, भारत के मूलभूत उद्योग, भारत के औद्योगिक क्रान्ति, उद्योगों का विकेन्द्रीकरण।

12. सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन : समाज के विकास के विभिन्न स्तर, भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों में सामाजिक जीवन, भारतीयों का वर्तमान सामाजिक जीवन, सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़ी जातियों का उत्थान, भारतीय संस्कृति की विशेषताएं, भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों की संस्कृतिक, गुप्तकालीन, संस्कृति, राजपूतकालीन सभ्यता, मुस्लिम संस्कृति एवं भारतीय संस्कृति पर उनका प्रभाव, पाश्चात्य सभ्यता आदि।

13. अन्य सामाजिक घटनाएं-

माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर-इस स्तर के अन्तर्गत कक्षा 9, 10, 11 तथा 12 आती है। कक्षा 9 तथा 10 में सामाजिक विज्ञान का समन्वित पाठ्यक्रम प्रदान किया जाए। कक्षा 11 व 12 में इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र, समाजशास्त्र आदि को स्वतन्त्र एवं पृथक-पृथक विषयों के रूप में पढ़ाया जायेगा। कक्षा 9 तथा 10 के लिए सामाजिक अध्यन के एकीकृत पाठ्यक्रम में अधोलिखित प्रकरणों को स्थान दिया जा सकता है -

1. **राष्ट्रीयता :** इसके अन्तर्गत अधोलिखित का विवेचन किया जाये।

(i) राष्ट्र एवं उसकी शासन व्यवस्था।

(ii) परिवार तथा पड़ोस।

(iii) आधुनिक भारत के रहन-सहन।

(iv) कॉमनवेल्थ के कार्य।

2. संयुक्त राष्ट्र संघ का विवेचन।

3. भारत की सांस्कृतिक स्थिति का विवेचन।

4. विश्व के विकसित देशों का वर्णन-संयुक्त राष्ट्र अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस तथा चीन का आर्थिक विकास में योगदान।

5. भारतीय सभ्यता का विकास।
6. पश्चिमी तथा पूर्वी सभ्यता।
7. भारत नवीनतम की समस्याएं।
8. विश्व के प्रमुख प्राकृतिक भाग एवं उनकी विशेषताएं।
9. विज्ञान एवं प्रौद्योगिक द्वारा नवीन समाज की संरचना।
10. विश्व-शान्ति एवं भारत।
11. भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का जन्म।
12. विभिन्न सामाजिक घटनायें।
13. विश्व समाज एवं संगठन के इकाई के सन्दर्भ में।
14. अन्य सामाजिक घटनाएं।

2. सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम के उपागम

(Approaches of Social Science Curriculum)

सामाजिक विज्ञान का पाठ्यक्रम एक बहु सामाजिक विषयों (Multi-social subjects) का संगठित रूप माना गया है। अत: पाठ्यक्रम के उस संगठित क्षेत्र से सम्बन्धित विभिन्न उपागमों द्वारा सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-सामग्री को प्रस्तुत किया जाता है। यह उपागम इस प्रकार है -

1. तार्किक उपागम (Logical Approach)
2. संकेन्द्रित उपागम (Concentric Approach)
3. चक्राकार उपागम (Spiral Approach)
4. काल-क्रम उपागम (Chronological Approach)

1. तार्किक उपागम (Logical Approach) : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF) 2005, शिक्षा के उन प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष आयामों की वांछनीयता पर विस्तृत चर्चा एवं तार्किक उपागम प्रस्तुत करती है, जो बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है। शिक्षा की गुणवत्ता, शिक्षा के सामाजिक संदर्भ एवं शिक्षा के लक्ष्य जिसमें, "बच्चों को क्या पढ़ाया जाये और कैसे पढ़ाया जाये" की कसौटी पर विचार करते हुए पाठ्यचर्या निर्माण में इन निर्देशक सिद्धान्तों का प्रस्ताव रखा गया है।

- पाठ्यक्रम को गुणवत्तापूर्ण तरीके से पूरा कराने
- बच्चों के ज्ञान, सम्भावित क्षमता और प्रतिभा का विकास
- शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं का पूर्णतम सीमा तक विकास
- बालकेन्द्रित और बाल सुलभ तरीके से विभिन्न क्रिया कलापों, अन्वेषण और खोज के माध्यम से सीख उत्पन्न करना।

- मातृभाषा में पढ़ाई, तनावमुक्त शिक्षा
- बच्चे के ज्ञान की समझ एवं व्यवहार का सतत् समग्र एवं व्यापक मूल्यांकन
- किसी भी कक्षा में फेल नहीं करना
- हर बच्चों को निर्धारित प्रारूप पर प्रमाण पत्र निर्गत करना

"यह तथ्य है कि बालक अपने अनुभव के आधार पर नवीन ज्ञान का सृजन करता है, इसका निहितार्थ है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें शिक्षक को इस बात के लिए सक्षम बनाये कि वे बच्चों की प्रकृति और वातावरण के अनुरूप विद्यालय में गतिविधि एवं अनुभव आधारित कार्यक्रम आयोजित करें ताकि सभी बच्चों को विकास के अवसर मिल सकें।"

सक्रिय गतिविधि के जरिये ही बच्चे अपने आस-पास की दुनिया को समझने की कोशिश करते हैं, इसलिए प्रत्येक साधन का उपयोग इस तरह किया जाना चाहिए कि बच्चे को, स्वयं को अभिव्यक्त करने में, वस्तुओं का प्रयोग करने में, अपने प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश, खोजबीन करने में और स्वस्थ रूप से विकसित होने में मदद मिलें। इसके लिए स्कूल के विषयों और पाठ्यचर्या के क्षेत्रों में नवाचारी शिक्षण पद्धतियों को विकसित किये जाने की आवश्यकता है।

इन नवाचारी शिक्षण पद्धतियों के प्रयोग से बच्चों को चहुंमुखी विकास के अवसर प्राप्त होने के साथ-साथ अपने ज्ञान को बाहरी जीवन में भी जोड़ने के अवसर प्राप्त हो सकेंगें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि नवाचारी शिक्षण पद्धतियों पर लगातार लेखन से समस्त शिक्षक लाभान्वित होंगे तथा बच्चों की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को रूचिपूर्ण एवं शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण बनाने में सक्षम हो सकेंगें।

2. सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम में केंन्द्रित उपागम

(Concentric Approach in the Curriculum of Social Science)

संकेन्द्रित उपागम का अर्थ

(Meaning of Concentric Approach)

सामाजिक विज्ञान में केन्द्रित उपागम का विशेष महत्व है क्योंकि इसमें सामाजिक विज्ञान (Social Science) को केन्द्रित करके विभिन्न विषयों इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र नागरिक शास्त्र तथा समाज शास्त्र का एक केन्द्र तथा उसके विभिन्न विज्ञान पाठ्यक्रम की रचना की जा सकती है ताकि सभी विषयों का ज्ञान सार्थक एवं प्रभावशाली रूप में छात्रों को प्रदान किया जा सके।

केन्द्रित उपागम का संगठन (Organization of Concentric Approach) : केन्द्रित उपागम में पाठ्य सामग्री का अध्ययन उसके वातावरण तथा परिस्थिति को

केन्द्रित मानकर प्रदान किया जाता है जैसे छात्रों को सर्वप्रथम ज्ञान उसके गृह प्रदेश आरम्भ करके, फिर ग्राम, कस्बा, नगर, महानगर, ज़िला, प्रदेश, राष्ट्र तथा विश्व क्रमगत रूप में प्रदान करना चाहिए। इसी प्रकार यातायात के साधनों के शिक्षण में तथा कस्बों से सम्पर्क यातायात कस्बों तथा नगरों के सम्पर्क साधनों, नगरों तथा महानगरों से संपर्क साधन तथा देश के अन्तर्गत विभिन्न महानगरों से सम्पर्क साधनों, एक देश दूसरे देशों से सम्पर्क साधनों अदि के रूप में विभिन्न यातायात के साधनों का केन्द्रित में अध्ययन कराना चाहिये।

केन्द्रित उपागम की विशेषताएं
(Characteristics of Concentric Approach)

सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम में केन्द्रित उपागम को विशेष महत्त्व दिया जाता है। अत: इसकी निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं :

1. केन्द्रित उपागम द्वारा छात्रों को पाठ्य-वस्तु का अध्ययन एक केन्द्र के रूप में प्रदान करने पर बल दिया जाता है।

2. छात्र सरलता, सुगमता तथा सजीव रूप में विभिन्न विषयों के तथ्यों को आत्मसात करता जाता है।

3. यह उपागम पाठ्य-वस्तु के क्रमबद्ध रूप पर बल देती है।

4. छात्र को पाठ्य सामग्री का अध्ययन सरल से कठिन की ओर प्रदान किया जाता है। इससे वह प्रत्येक बिन्दु को साथ-साथ सीखता जाता है।

5. यह उपागम छात्रों में अन्तर्दृष्टि का विकास करता है।

6. इस उपागम द्वारा छात्र को समुचित निर्देशन प्राप्त हो जाता है।

7. छात्रों को सामाजिक विज्ञान का ज्ञान क्रमबद्ध एवं केन्द्रित सामाजिक रूप में प्राप्त हो जाता है।

8. यह उपागम सामाजिक विज्ञान में व्यावहारिक एवं प्रयोगात्मक पक्ष पर बल देता है।

9. यह उपागम पूर्णत: मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। क्योंकि इसमें छात्रों की रुचि एवं अभिरुचियों पर विशेष बल दिया जाता है।

10. केन्द्रित उपागम द्वारा पाठ्य-वस्तु को प्रभावशाली, सार्थक, उपयुक्त एवं सादृश्य के रूप में प्रस्तुत करने पर बल दिया जाता है।

3. चक्राकार उपागम
(Spiral Approach)

सामाजिक विज्ञान शिक्षण के पाठ्यक्रम की रचना में चक्राकार उपागम पर भी केन्द्रित उपगाम की भाँति विशेष बल दिया जाता है। सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम का

मुख्य आधार सामाजिक चरित्र एवं सामाजिक आदर्शों व मूल्यों का विकास करना है। साथ ही समाजवादी मानवीय, सम्बन्धों, सिद्धान्तों तथा सामाजिक जीवन हेतु चेतनशील एवं जागरूकता उत्पन्न करना है। इसी सामाजिक भावना द्वारा महत्वों, मूल्यों तथा मनोभावों को उत्पन्न करने में उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती है। अत: यह सभी क्रियायें सामाजिक रूप से चक्राकार रूप में मानव के उत्थान के लिए बराबर संलग्न रहती है। अत: सामाजिक विज्ञान में चक्राकार उपागम का अपना एक अलग महत्त्व होता है। इसी के माध्यम से सभी सामाजिक क्रियाओं को सम्पन्न किया जाता है।

चक्राकार उपागम में पाठ्य-वस्तु की प्रत्येक इकाई एक चक्राकार रूप में सम्बन्धित होती है। यह एक दूसरे से परस्पर एवं समन्वित कार्यों पर आधारित होती है। इन सामाजिक क्रियाओं का चक्र पूर्ण रूप से क्रमबद्ध होता है। जिसके द्वारा प्रत्येक इकाई एवं अधीन दो रूपों में कार्य करती है। इसे ही चक्राकार उपागम के नाम से पुकारा जाता है।

पाठ्यक्रम की रचना में चक्राकार उपागम के माध्यम से प्रत्येक क्रियाओं को एक दूसरे की पूरक के रूप में चक्र द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। ताकि प्रत्येक क्रिया उस चक्र में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान कर सकें। प्रत्येक मानवीय क्रिया का अपना विशेष महत्त्व माना जाता है तथा सक्रिय योगदान होता है। अत: चक्राकार उपागम की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं :

1. प्रत्येक सामाजिक क्रिया एक चक्राकार रूप में कार्य करती हैं जिसके द्वारा इस प्रक्रिया में प्रत्येक का महत्व होता है।

2. छात्र सरलता एवं सुगमता से इस उपागम द्वारा प्रत्येक बिन्दु को समझता जाता है।

3. ज्ञान की प्रत्येक कड़ी एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित होती है। इससे शिक्षण में व्यावहारिक तथा सार्थक पर बल प्रदान किया जाता है।

4. यह उपागम सामाजित विज्ञान पाठ्यक्रम का एक अभिन्न ढंग माना जाता है।

5. इस उपागम में शिक्षा को प्रभावशाली तथा सार्थक बनाने में विशेष बल दिया जाता है।

6. प्रत्येक शिक्षण की इकाई चक्राकार रूप में कार्य करती है। इससे उनका महत्त्व अधिक बढ़ जाता है।

4. कालक्रम उपागम
(Chronological Approach)

अतीत की घटनाओं को सत्यापित अध्ययन करना ऐतिहासिक कार्य है। यह मानव सभ्यता के विकास क्रम का अध्ययन है तथा विकास तथा अतीत की सम्पूर्ण घटनायें समय या काल के सन्दर्भ में ही जानी जा सकती है, समय एक भावात्मक वस्तु है, जिसे हम केवल समझ व अनुमान ही कर सकते हैं, इसे हम देख नहीं सकते। इसकी तो हम

अनुभूति ही कर सकते हैं, इसलिए इसका बोध करना एक जटिल कार्य है। काल
उपागम का मुख्य सम्बन्ध काल अवधि से है। इसलिए काल अवधि तथा समय का
कराना शिक्षक का प्रमुख कर्त्तव्य है। जिन विद्यार्थियों को समय का बोध नहीं
ऐतिहासिक तथ्यों को समझने में सफल नहीं होते हैं।

("The main use of the time chart in teaching is to provide a chron
logical framework within which events and developments of history ma
be recorded and to guard against the vaguennes of times sense which ma
result from teaching arranged by topic rather than by reigns.")

कालक्रम उपागम का अर्थ

(Meaning of Chronological Approach)

ऐतिहासिक घटनाओं के समय, स्थान के परिप्रेक्ष्य तथा सन्दर्भ में समझने को ह
'काल बोध' कहते हैं।

घाटे ने अपने शब्दों में कालक्रम की परिभाषा निम्न प्रकार दी है :

("Time-sense is a capacity to conceive life and action under rela
tions.")
—Glad

"कालक्रम उपागम अनुभूति जीवन व क्रियाओं को समझने की वह क्षमता है, जो
उनमें कुछ सम्बन्ध स्थापित करती है।"

काण्ट के अनुसार, "सामाजिक विज्ञान में ऐतिहासिक पहलू का सम्बन्ध उन
घटनाओं के वर्णन से है, जो एक के बाद एक क्रम में घटित होती रहती है और जो किसी
काल से सम्बन्धित होती है, अर्थात् ऐतिहासिक घटनाओं में सततता होती है। अत:
प्रत्येक घटना समय के सन्दर्भ में होती है तथा वे एक के बाद दूसरी के सतत् क्रम में
घटित होती रहती है। कालक्रम हमें इन घटनाओं के समय व काल के सन्दर्भ में न केवल
सततता का ही ज्ञान कराता है, अपितु परिवर्तनों का भी ज्ञान कराता है।"

सामाजिक विज्ञान शिक्षण में कालक्रम का महत्त्व

कालक्रम का ज्ञान देना सामाजिक विज्ञान शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य माना जाता है। इससे घटनाओं, वर्तमान तथा अतीत को समझना सुगम होता है। इसके अभाव में घटनाओं का काल निर्देश नहीं कर सकता है। अतीत के अध्ययन से वर्तमान को नहीं समझ सकते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से कालान्तर का मापन नहीं किया जा सकता है। समय की क्रियाशीलता का बोध नहीं कराया जा सकता है।

कालक्रम अनुभूति महान् पुरुषों, घटनाओं तथा आन्दोलनों, युद्धों को समझने तथा उनकी प्राचीनता का अनुभव करने में सहायक होता है।

कालक्रम उपागम के तत्त्व

(Factors of Chronological Approach)

इस उपागम द्वारा अतीत की घटनाओं का सत्यापित विवरण है ये घटनायें अतीत के विभिन्न कालों में घटित हुई है, साथ ही काल की लम्बी अवधि में घटना कब घटी, घटना के घटित होने का समय वर्तमान समय में कितनी दूर था तथा उस घटना ने घटित होने में कितना समय लिया तथा इन तत्त्वों का समय से क्या सम्बन्ध है। इस प्रकार कालक्रम उपागम के चार तत्व मुख्य होते हैं :

1. स्थिति का रूप (Form of Location)
2. समय की दूरी (Distance of Time)
3. समर्थ की अवधि (Duration of Time)
4. समय का सम्बन्ध (Relation of Time)

1. स्थिति का रूप (Form of Situation or Location) : छात्रों में समय ज्ञान को विकसित करने के लिए स्थिति एक महत्त्वपूण तत्व है, जिसको कार्य रूप में परिणित करना अत्यन्त आवश्यक है। स्थिति में तात्पर्य 'तिथि को घटना के साथ स्थिर' करना है। प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान काल तक विश्व में जितनी भी महत्त्वपूर्ण घटनायें घटित हुई हैं, उनके लिए अनेक स्थितियों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। अत: इतिहास विषय के अन्तर्गत प्रत्येक घटना के साथ समय का सम्बन्ध स्थापित करना परम आवश्यक है। उदाहरण के लिए 'बक्सर का युद्ध' 1764 में हुआ। यदि इतिहास के छात्रों को बक्सर के युद्ध का सन् अथवा समय का ज्ञान नहीं है, तो इस युद्ध का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। अत: शिक्षक के लिए यह परम आवश्यक है कि वह छात्रों को किसी घटना के साथ उस घटना घटित होने के समय का भी स्पष्ट ज्ञान दें।

2. समय का अन्तराल (Distance of Time): समय की दूरी से भूतकाल में घटित घटना में, उस समय से तथा वर्तमान समय के मध्य कितनी-कितनी दूरी है। अर्थात् समय की लम्बाई है। उदाहरण के लिए सन् 1992 ई. में सिन्धु घाटी की सभ्यता की खोज की गई। यदि विद्यार्थियों को केवल मात्र यही बताया जाए कि वर्तमान समय से बहुत समय सिन्धु सभ्यता की खोज की गई तो इससे विद्यार्थी असन्तुष्ट ही रहेंगें कि सिन्धु घाटी सभ्यता की खोज किस सन् में की गई। यदि विद्यार्थियों को पूर्णतया स्पष्ट ज्ञान प्रदान किया जाये तो उसको सरलता व सुगमता से ग्रहण कर सकेंगें जैसे सिन्धु घाटी सभ्यता की खोज सन् 1922 ई. में की गई।

3. समय की अवधि (Duration of Time) : प्रत्येक घटना की पृष्ठ-भूमि में अनेक कारण विद्यमान रहते हैं तथा इन कारणों के घटित होने के लिए पहले से ही भूमिका बनी रहती है। घटना के घटित होने के उपरान्त भी उस घटना का प्रभाव आवश्य रहता है। जब

तक वह घटना राष्ट्र अथवा समाज को प्रभावित करती रहती है तब तक के समय को उस घटना की अवधि कहते हैं। समय अवधि द्वारा छात्रों में निर्णय शक्ति का विकास किया जा सकता है तथा उन्हें यथार्थवादी बनाया जा सकता है तथा किसी काल की उन्नति अवनति के बारे में स्वष्ट रूप से छात्रों को ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।

उदाहरणार्थ : भारतवर्ष में स्वतन्त्रता आन्दोलन सन् 1857 ई. में पूर्व ही आरम्भ हो गया था और उसका अन्त 1947 ई. में हुआ। इस प्रकार स्वतन्त्रता आन्दोलन की अवधि 100 वर्ष से अधिक मानी जाती है। इस अवधि को विशेष युग की संज्ञा दी जाती है। जैसे महाकाव्य युग, बौद्ध युग तथा मुगल काल आदि।

छात्रों में अवधि के ज्ञान से विभिन्न मानसिक शक्तियों का चिन्तन तथा निर्णय सन्तुलन आदि शक्तियों का विकास होता है। छात्र समय की दूरी तथा अवधि की सहायता के समय की अनुभूति करते हैं।

कक्षा में तिथियों के शिक्षण से कालक्रम अनुभूति का विकास नहीं किया जा सकता है। क्योंकि जीवन एवं क्रियाविहीन तिथि का कोई महत्त्व नहीं होता है तिथियों का ऐतिहासिक जीवन में महत्त्व सड़क के पत्थरों के सदृश होता है। क्योंकि सड़क पर लगे पत्थर पर अंकित किलोमीटर से स्थान की दूरी का सही बोध होता है। उसी प्रकार ऐतिहासिक घटनाओं की तिथियों से वर्तमान की दूरी तथा अवधि का शुद्ध ज्ञान हो जाता है। अत: महत्त्वपूर्ण तिथियों को बतलाया जाये।

4. समय का सम्बन्ध (Relation of Time) : कोई भी समय, सन् सम्वत् या तिथि स्वतन्त्र रूप से महत्त्वहीन तथा नीरस है। समय का महत्त्व किसी न किसी घटना के परिप्रेक्ष्य में ही होता है। इसलिए काल-बोध कराते समय छात्रों को काल के सन्दर्भ में छात्रों को ईसवीं गणना नहीं करनी होती है। छात्र को पढ़ने तथा समझने में अधिक सुगमता होती है।

घटनाओं का भी ज्ञान कराना चाहिए। उदाहरण के लिए सन् 1947 एक स्वतन्त्र सन् है, इसमें छात्रों की कोई विशेष रुचि नहीं है। जब हम इसका सम्बन्ध भारतीय स्वतन्त्रता से जोड़ देते हैं तो सही सन् (1947) महत्त्वपूर्ण तथा सार्थक बन जाता है। इसलिये समय को जब तक किसी घटना से सम्बन्धित करके हम नहीं सीखेंगें, तब तक न तो वह समय सार्थक हैं, न रुचि और न बोधगम्य। इसलिए शिक्षक को चाहिये कि वह समय का ज्ञान बालकों को किसी न किसी घटना से सम्बधित करके ही दें, तभी उनका काल-बोध सार्थक होगा।

कालक्रम उपागम की विधियाँ
(Methods of Chronological Approach)

इतिहास शिक्षक के रूप में हम अपने छात्रों के कालक्रम बोध का विकास करने हेतु मुख्य रूप से तीन विधियों का प्रयोग करते हैं, यह इस प्रकार है -

1. समय रेखा (Time Line)
2. समय चार्ट (Time Chart)
3. समय-ग्राफ (Time Graph)

1. समय रेखा (Time Line) : समय-रेखा का कालक्रम अनुभूति के विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इसमें अमूर्तप्रत्यय के बोधगम्य बनाने के लिए रेखा द्वारा छात्रों को प्रत्यक्षीकरण कराया जाता है।

उदाहरणार्थ : एक शताब्दी को दस इंच द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। प्रत्येक इंच एक शताब्दी को प्रदर्शित करेगी और प्रत्येक इंच का दसवां भाग एक वर्ष को। सन् के अंकों को बायीं और अंकित करते हैं और दाहिनी और महत्त्वपूर्ण तिथि को समुचित रूप में प्रदर्शित करते हैं और महत्त्वपूर्ण घटना का प्रकरण भी लिखा जाता है।

इस समय-रेखा में जीवनकाल की प्रमुख घटनाओं को जन्म से लेकर मृत्यु तक दिखाया गया है। छत्रपति शिवाजी का जन्म 1630 ई. तथा मृत्यु रायगढ़ में 1680 ई. में हुई थी। उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं को एक पैमाने पर अंकित किया गया है। इस पैमाने पर 2 किलोमीटर में 1 वर्ष को प्रदर्शित किया गया है। 5 वर्ष की अवधि को 2 से.मी. की दूरी से दिखाया जाता है। इस प्रकार (1630-1680) की अवधि 50 वर्षो को 11 से.मी. से दिखाया गया है। पैमाने पर 5 वर्ष का अन्तराल अंकित किया गया है और महत्त्वपूर्ण घटना का वर्ष भी समय रेखा पर दिखाया गया है।

समय रेखा (Time Line) का प्रयोग किसी महापुरुष के जीवन काल को प्रदर्शित करने हेतु करते हैं। छत्रपति शिवाजी तथा अकबर के राज्य काल के लिए प्रयुक्त किया गया है।

समय-रेखा में पैमाने के साथ घटनाओं पर भी ईसवीं को अंकित करते हैं जिससे समय रेखा का सामाजिक विज्ञान शिक्षण में विशेष महत्त्व तथानुपादेयता है। क्योंकि घटनाओं की स्थिति को समय-रेखा की सहायता से छात्रों को दिखाया जाता है। जिससे दृश्य इन्द्रियों को भी सीखने की क्रिया में शामिल करते हैं। शिक्षण रुचिकर तथा प्रभावी होता है।

कक्षा में समय रेखा बताते समय शिक्षक को निम्नलिखित बातों को दृष्टिगत रखना अत्यन्त आवश्यक है -

1. शिक्षक को उन तिथियों का ही चयन करना चाहिये जो कि प्रभावशाली हों तथा जिनका समाज से सम्बन्ध स्थापित किया जा सके अर्थात् उस समय के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था तथा कला का स्तर समान रहा हो।
2. समय रेखा न तो बहुत बड़ी होनी चाहिये और न ही बहुत छोटी।
3. अध्यापक को ऐसी घटनाओं का चयन करना चाहिये, जो किसी समय विशेष

की मुख्य घटनाओं, आन्दोलनों तथा विभिन्न मानवीय कार्यों से सम्बन्धित हों।

4. शिक्षक उन्हीं तिथियों का चयन करे, जो किसी काल अथवा घटना विशेष की प्रगति, अवनति तथा परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करने वाली हों।

5. तिथियां पूर्ण घटना अथवा काल का प्रतिनिधित्व करने वाली हों।

6. तिथियां अत्यन्त अल्प तथा चुनी हुई हों।

2. समय चार्ट (Time Chart) : सामाजिक विज्ञान शिक्षण में काल-बोध का विकास करने के लिये समय-चार्ट अत्यन्त ही उपयोगी होते हैं। समय चार्ट द्वारा विभिन्न घटनाओं के मध्य समयगत सम्बन्धों को स्पष्ट किया जा सकता है। समय-चार्ट में एक क्षेत्र या व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित घटनाओं को कालक्रम के अनुसार प्रदर्शित किया जाता है। इससे एक क्षेत्र या व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित सभी घटनायें एक समय-क्रम में एक दृष्टि में हमारी आंखों के सामने स्पष्ट हो जाती हैं। समय-चार्टों को हम मुख्य रूप से तीन प्रकार से बना सकते हैं -

(i) चित्रमय समय चार्य (Pictorial Time Chart) : इस प्रकार के चार्टों में कालक्रम के अनुसार ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा घटनाओं को चित्रों के माध्यम से रखकर उन पर सम्बन्धित घटनायें अंकित की जाती हैं। उदाहरण के लिए यदि हम इतिहास में 'स्वतन्त्रता प्राप्ति' के उपरान्त हमारे प्रधानमन्त्री के विषय में पढ़ा रहे हैं, तो पं. नेहरू, श्री शास्त्री, श्रीमति गांधी, श्री देसाई, आदि के चित्र समय क्रम के अनुसार एक कार्ड-शीट पर लगाकर उनके सामने उनके प्रधानमन्त्रित्व काल को लिखेंगें। इसी प्रकार यदि हम मुगल वंश के शासकों के काल से सम्बन्धित चित्रमय समय-चार्ट बनाना चाहते हैं तो एक कार्ड पर बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ तथा औरंगज़ेब के चित्र क्रमवार चिपकाकर उनके सामने, उनका काल अंकित करेंगें। यही चित्रमय समय चार्ट हैं।

(ii) दृश्यावली समय चार्ट (Panorama Time Chart) : इस प्रकार के चार्टों में एक ही समय की दो विभिन्न घटनाओं को तुलनात्मक रूप से प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रकार के चार्टों में सौ वर्ष के काल को एक युग माना जाता है फिर एक युग (एक सदी) की प्रमुख घटनाओं को दृश्यमय रूप से काल-क्रम में प्रस्तुत किया जाता है। यहां हम पृथक-पृथक दृश्यों व चित्रों का प्रयोग करते हैं जो उस शताब्दियों से सम्बन्ध रखते हैं।

(iii) तुलनात्मक समय चार्ट (Comparative Time Chart) : इस प्रकार के चार्टों में एक ही समय की विभिन्न घटनाओं की तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिये दक्षिण में टीपू सुल्तान के समय घटनाओं के साथ ही साथ उत्तर भारत के किसी शासक के समय की प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं को तुलनात्मक रूप में एक ही साथ प्रस्तुत किया जा सकता है या फिर अकबर के समय उत्तर एवं दक्षिण भारत

की प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं को एक साथ प्रस्तुत कर सकते हैं।

हम किसी भी प्रकार का समय चार्ट बनायें, हमें इस सम्बन्ध में नीचे लिखी सावधानियाँ रखनी चाहियें -

1. पूरे चार्ट को समान पैमाने (Scale) पर बनाना चाहिये।
2. ये चार्ट ऐतिहासिक ज्ञान की शुद्धता से बनाये जायें।
3. ये सरल, सहज तथा बोधगम्य हों।
4. ये आकर्षक तथा सुन्दर हों।

3. समय-ग्राफ (Time Graph) : समय-ग्राफ का प्रयोग विकास-क्रम तुलनात्मक अध्ययन में अधिक प्रयुक्त होता है। मुगल तथा मराठा साम्राज्य को दो समान ग्राफ पर तुलनात्मक अध्ययन के लिये प्रदर्शित किया जा सकता है। छात्रों में कालक्रम अनुभूति का विकास सुगमता से किया जा सकता है। इसी प्रकार दो समान समय-ग्राफ ब्राह्मण युग तथा बुद्ध युग के बुद्ध की जन्मतिथि और हर्ष की मृत्यु के शिक्षण के लिए प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

उदाहरणार्थ : समय-ग्राफ को साधारणत: ग्राफ पेपर पर ही तैयार किया जाता है। ग्राफ की 'क' अक्षर सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों को प्रदर्शित करते हैं। इसको प्रदर्शित करने में तुलनात्मक मानदण्ड को ध्यान में रखा जाता है। इस विधि से तिथियों एवं घटनाओं का ग्राफ की सहायता से प्रत्यक्षीकरण कराया जाता है। यह विधि समय-रेखा की अपेक्षा अधिक व्यापक है। परन्तु इसको बनाना अधिक कठिन होता है। इसका प्रयोग तुलनात्मक अध्ययन के लिए विशेष रूप में किया जाता है।

शिक्षक को समय-ग्राफ का प्रयोग माध्यमिक कक्षाओं से आरम्भ करना चाहिए। प्राथमिक तथा जूनियर कक्षाओं में प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

4. तुलनात्मक समय-ग्राफ (Comparative Time Graph) : विभिन्न विषयों में तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है। भारत तथा ब्रिटेन के एक ही युग का तुलनात्मक अध्ययन सुगमता से किया जा सकता है। एक ही ग्राफ पर प्रदर्शित कर सकते हैं तथा दो अलग-अलग ग्राफ पर ऐतिहासिक घटनाओं की गतिविधियों को प्रदर्शित किया जा सकता है।

समय-ग्राफ (Time Graph) का प्रयोग विकास-क्रम के अध्ययन के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। तुलनात्मक अध्ययन के लिये भी प्रयोग किया जाता है। समय-ग्राफ का प्रयोग किसी साम्राज्य के उत्थान एवं पतन के प्रदर्शन के लिये किया जाता है। इसकी रचना समय रेखा की भाँति ही की जाती है। 'मुगल साम्राज्य' के लिये समय-ग्राफ प्रस्तुत किया गया है।

छत्रपति शिवाजी जीवनकाल

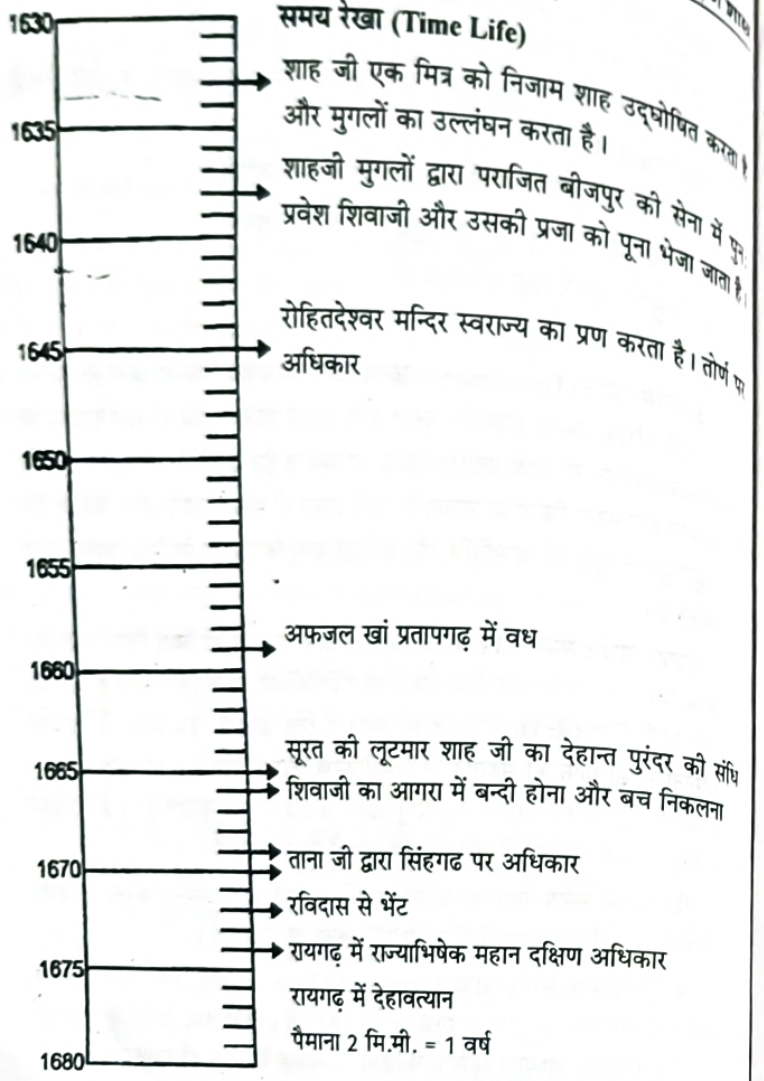

इस समय-ग्राफ के द्वारा मुगल साम्राज्य के विकास-क्रम एवं पतन को दिखाया गया। मुगल साम्राज्य का आरम्भ पानीपत के प्रथम युद्ध (1526) से आरम्भ होता है और पानीपत के तृतीय युद्ध (1761) में अन्त होता है। अन्तिम शासक औरंगजेब थे और अकबर के शासन-काल में मुगल सामाज्य शिखर पर या उसके बाद पतन होता गया। इस समय-ग्राफ द्वारा शासक की अवधि और उसके शासन का स्तर भी प्रदर्शित किया जाता है। इसके निर्माण में पैमाना उसी प्रकार माना जाता है जिस प्रकार समय-रेखा में मानते

परन्तु शासन का क्षेत्र घटना बढ़ता रहता है जिससे विकास-क्रम अथवा उत्थान को दिखाया जाता है। इसके द्वारा विभिन्न मुगल शासकों की तुलना भी की जा सकती है।

अभ्यास के प्रश्न
(Study Questions)

1. पाठ्यक्रम को परिभाषित कीजिये। पाठ्यक्रम संरचना के क्या-क्या आधार हैं? विवेचन कीजिये।
   (Define curriculum. What are the basis of the construction of curriculum? Discuss.)
2. सामाजिक विज्ञान शिक्षण पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों का विवेचन कीजिये।
   (Discuss the principles of construction of curriculum of the teaching of Social Science.)
3. सामाजिक अध्ययन/विज्ञान शिक्षण के पाठ्यक्रम को संगठित करने के विभिन्न उपागमों का विवेचन कीजिये।
   (Discuss the various approaches to organize the curriculum of teaching Social Studies/Science.)
4. सामाजिक विज्ञान शिक्षण के पाठ्यक्रम में केन्द्रित उपागम के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
   (Describe the importance of concentiric approach in curriculum of teaching Social Science.)
5. सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम में चक्राकार उपागम के कार्य का विवेचन कीजिये।
   (Discuss the role of spiral approach in the curriculum of Social Science.)
6. कालक्रम उपागम का क्या अर्थ है? इसकी सामाजिक विज्ञान शिक्षण के पाठ्यक्रम में क्या महत्ता है?
   (What is the meaning of chronological approach? What its importance in the curriculum of Social Science.)

ଔ ଔ ଔ

CHAPTER

2

शिक्षण और सीखने की सामग्री (Teaching Learning Material)

शिक्षण और सीखने की सामग्री : पाठ्यपुस्तक और संदर्भ पुस्तकें, वृत्तचित्र, अखबारें, नक्शे, समुदाय, एटलस और ई-संसाधन (ब्लॉग, वर्ल्ड वाईड वेब और सोशल नेटवर्किंग)

[Teaching Learning Material : Textbook & Reference Books, Documentaries, Newspapers, Maps, Community, Atlas and E-Resources (World Wide Web and Social Networking)]

शिक्षण और सीखने की सामग्री

(Teaching and Learning Material)

''यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि एक श्रेष्ठ शिक्षक वर्ग कम साधन सुविधाओं के मध्य ही कहीं अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है, उस वर्ग से, जो अधिक साधन सुविधाओं के मध्य भी निम्न स्तर का हो। सम्पूर्ण क्रिया की सफलता या विफलता की कुंजी शिक्षक स्वयं है। इस तरह हम देखते हैं कि शिक्षण प्रक्रिया में यदि सर्वोपरि महत्त्व किसी का है तो वह शिक्षक का है, अत: उस पर विचार की विशेष आवश्यकता है।''

("It is safe to say that a good teaching staff with poor equipment will accomplish definitely more than a poor one with much material aid. In words, the key to success or failure of the whole project of education is the teacher himself.")— **Teaching of social studies is secondary school's by Bining and Bining**

कक्षा-कक्ष शिक्षा सदैव ही बाल केन्द्रित होता है। यहाँ शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बालक की योग्यता, रुचि, मनोवृत्तियाँ, आवश्यकता आदि का आधार बनाया जाता है। अत: शिक्षण क्रिया को सरल, सजीव तथा प्रभावी बनाने के लिये यह आवश्यक है कि नवीन सामग्री को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाये कि उसका स्वरूप छात्रों को अधिकाधिक सरल एवं स्पष्ट हो जाये। ऐसा करने के लिये शैक्षिक उपकरणों की जरूरत पड़ती है। इन शैक्षिक उपकरणों को शिक्षण सामग्री कहा जाता है। शिक्षण सामग्री के दो प्रमुख तत्व होते हैं :-

1. माध्यम (Medium)
2. विधा (Stimulus)

इसमें विधा उद्दीपक (Stimulus) का वह रूप जिसे छात्रों के सम्पर्क में लाया जाता है। इस प्रकार रेखाचित्र (Line Diagram), छाया चित्र (Photograph), प्रतिमूर्ति (Model) आदि अनेक प्रकार की विधाओं का निर्माण करते हैं। इन छायाचित्रों, रेखाचित्रों या प्रतिमूर्तियों आदि को प्रदर्शित करने में अनेक माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। कक्षा-कक्ष अन्तर्क्रियाओं में आजकल हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर शब्दों का प्रचलन बहुत हो रहा है।

हार्डवेयर उपागम का आविर्भाव विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी (Technology) से हुआ है। हार्डवेयर उपागम शिक्षण-प्रक्रिया का मशीनीकरण करता है, जिससे शिक्षक अधिक छात्रों को कम सव्यय एवं समय में शिक्षित कर सके। हार्डवेयर उपागमों के अन्तर्गत चलचित्र (Motion Pictures), टेपरिकॉर्डर, दूरदर्शन (Television), शिक्षण मशीन (Teaching machine) तथा कम्प्यूटर आते हैं।

सोफ्टवेयर उपागम को अनुदेशन तकनीकी (Instructional technology), शिक्षण तकनीकी (Teaching technology) भी कहते हैं। इसमें शिक्षण मशीनों का प्रयोग न करके शिक्षण तथा सीखने के सिद्धान्तों का प्रयोग बालकों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने के लिये किया जाता है। इसका सम्बन्ध शिक्षा के सिद्धान्तों, उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने, शिक्षण-प्रविधियों (Teaching Strategies),अनुदेशन प्रणाली के पुनर्बलन तथा मूल्यांकन से होता है। समाचार-पत्र, पाठ्य-पुस्तक, मैगजीन, शैक्षिक खेल, फ्लैश कार्ड आदि सोफ्टवेयर के अंग हो सकते हैं।

पाठ्य पुस्तक और संदर्भ पुस्तकें

(Text Book & Reference Books)

मूल पुस्तकें विषय वस्तु का लगातार संग्रह है जो विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है। पुस्तकें पढ़ाने के नए संकल्पों तथा कौशलों की गति तीव्र करती है तथा जो जानकारी प्राप्त की गई होती है उसे और दृढ़ करती हैं तथा जीवन के सैद्धान्तिक ज्ञान का व्यावहारिक जीवन से संबंध बनाने में सहायता करती है।

वेबेस्टर शब्दकोष के अनुसार, ''अनुदेशन का एक हस्तलेख एक पुस्तक जिसमें विषय के सिद्धान्तों का प्रस्तुतीकरण होता है, को अनुदेशन के आधार रूप में प्रयोग किया जाता है।'' (A manual of instruction, a book containing a presentation of the principle of the subject used as a basis of instruction.)

बैकन के अनुसार, यह पाठ्य-पुस्तकों को परिभाषित करता हुआ लिखता है कि, ''पुस्तकें कक्षा के कमरे में प्रयोग करने के लिये तैयारी की जाती है तथा विशेषज्ञों द्वारा बहुत ही सावधानीपूर्वक तैयार की जाती है तथा साधारण शिक्षण युक्तियों से भरी हुई होती है।''

("A book designed for classroom use, carefully prepared by experts in the field and equipped with the usual teaching devices.")

इनसे भी व्यापक परिभाषा शिक्षा शोध के महाकोष के तीसरे प्रकाशन में दी गई है। इसमें भी कहा गया है कि, "आधुनिक सूझ तथा साधारण समझ में पाठ्य-पुस्तक अधिगम का साधन है, जो साधारण तौर पर ही स्कूलों तथा कालेजों में निर्देशन के कार्यक्रमों को सहारा देने के लिए प्रयोग की जाती हैं। साधारण प्रयोग के लिए आर्थिक पुस्तकें छपी हैं तथा ये न समाप्त होने वाली व अटूट हैं। इनको निर्देशित उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जाता है तथा विद्यार्थियों के हाथों में दी जाती है।"

सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक के उद्देश्य
(Aims of Social Science Text Book)

1. सामाजिक विज्ञान के शिक्षण के सारे ही उद्देश्य सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक में होने चाहिए।

2. सामाजिक विज्ञान के अध्ययन की पाठ्य-पुस्तक विशेष उत्तरदायित्वों जैसे कि राष्ट्रीय उद्देश्य लोकतंत्र, साम्राज्यवाद, निष्पक्षता तथा राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने वाली होनी चाहिए।

3. सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक नैतिक मूल्यों को बढ़ाने वाली होनी चाहिए।

4. सामाजिक विज्ञान की पुस्तक मनुष्य तथा उसके वातावरण के मध्य संबंधों की संतुलित तस्वीर प्रस्तुत करने वाली हो।

5. सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक जिस स्तर के लिए तैयार की गई हो। उसके शिक्षण के विशेष उद्देश्यों को प्रकट करने में सहायता करे तथा उसी का एक प्रतिबिम्ब होनी चाहिए।

6. सामाजिक विज्ञान की पुस्तक में सैकण्डरी स्तर के उद्देश्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

7. सामाजिक विज्ञान की पुस्तक बच्चों की विशेषताओं पर आधारित होनी चाहिए तथा बुद्धि के विभिन्न स्तरों के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने वाली होनी चाहिए।

सामाजिक विज्ञान की पुस्तक की आवश्यकता एवं महत्त्व
(Need and Importance of Social Science Text Book)

1. पुस्तक सहायक की तरह हैं (Textbook is an assistant master print) : पुस्तकें विषय-वस्तु के साथ निर्देशन तकनीक वाली होती है। इन तकनीकों का उद्देश्य

यह होता है कि विद्यार्थी विषय-वस्तु को समझें तथा उन परिस्थितियों में ही समझें जिनमें अध्यापक उसे सहायता नहीं देता।

2. पाठ्य-पुस्तक का व्यवस्थित ढांचा (A Textbook has designed frame work) : एक पाठ्य-पुस्तक का कुछ पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम पर आधारित होना चाहिए। आवश्यक नहीं जो इसकी सीमाओं का खुलासा करे बल्कि उस स्तर का निश्चित होना जरूरी है जिस पर यह लिखी जाती है।

3. पाठ्य-पुस्तक कुछ निर्देशित उद्देश्यों की युक्ति हैं (A textbook is a device of some instructional objectives) : निर्देशित औज़ार की तरह पाठ्य-पुस्तकें पढ़ते से ही सीखे गए उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक यंत्र है।

4. पुस्तकें अध्यापक के लिए एक महत्त्वपूर्ण यंत्र हैं (A textbook is an important tool for the teacher) : पुस्तकें अध्यापक को अपनी रोज़ाना पाठ-योजना बनाने, दत्त कार्य तैयार करने तथा कक्षा के कमरे की क्रियाओं को संगठित करने में सहायता प्रदान करती हैं।

5. पुस्तकें विद्यार्थियों की शुभचिन्तक तथा मित्र हैं (A textbook is a loyal and companion of a student) : पुस्तकें विद्यार्थियों को सीखने के लिए स्कूल तथा घर में मार्गदर्शन देती हैं। विद्यार्थी पुस्तकों को निरन्तर प्रयोग करता है। यही विशेषता है जो साधारण पुस्तकों को संदर्भ पुस्तकों से पृथक करती है। पुस्तक का प्रत्येक शब्द विद्यार्थियों की ओर से न केवल पढ़ा जाता है, बल्कि उससे यह आशा भी की जाती है कि वह इसे समझे भी।

6. पुस्तकें आत्म-निर्देशन की किस्म हैं (A textbook is a self teaching service) : पुस्तकें विद्यार्थियों को इस योग्य बना देती हैं कि वह स्वयं अपने प्रयत्नों द्वारा पढ़ें। पुस्तकें विद्यार्थियों को सोचने तथा मूल्यांकन करने के अवसर प्रदान करती हैं। विद्यार्थी आवश्यक जानकारी जो पुस्तकों में होती है, उसे बिना किसी बाहरी विषय-वस्तु जो उसने उससे पहले अथवा बाद में सुनी होती है, वह इन पुस्तकों में से खोज सकता है। वह सारी विषय-वस्तु जो कि उसने समय-समय पर अपने सन्देहों को दूर करने के लिए पढ़ी होती है, उसका पुन: निरीक्षण कर सकता है। पुस्तकें विषय-वस्तु संबंधी विद्यार्थियों के संदेहों को दूर करती हैं तथा इसे समझने में सहायता देती हैं।

7. पुस्तकें तर्कसंगत तथा विस्तीर्ण विषय-वस्तु प्रदान करती हैं (A textbook provides logical and extensive material) : एक अच्छी पुस्तक क्रमवारता तथा व्यापकता प्रदान करती है। यह इस प्रकार तैयार की गई होती है कि यह कम से कम सारी कक्षाओं के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। अध्यापक के लिए एक ही स्थान पर आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराती है। इस प्रकार पुस्तकें एक सामाजिक

विज्ञान के अध्यापक के लिए सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

8. पुस्तकें संस्कृति का संचार करने वाला उपकरण है (A textbook is a transmitter of culture) : यह बहु-गिनती एक संचार के लिए एक बहुत बढ़िया माध्यम है। यह व्यर्थ कर उपेक्षित किये गये मूल्यों तथा रीति-रिवाज़ों द्वारा वर्तमान संस्कृति तथा नए परिवर्तनों को लाने में बहुत ही सकारात्मक भूमिका निभाती हैं।

9. पुस्तकें समाज को बदलने में सहायता करती हैं (A textbook helps to transform the society) : पाठ्य-पुस्तकें केवल संस्कृति तथा विरासत को संभालकर ही नहीं रखती बल्कि ये समाज के मूल्यों, कीमतों, रिवाज़ों, रीतियों तथा सामाजिक ढंग में परिवर्तन भी लाती हैं।

10. पुस्तकें एकत्र करने का कार्य भी करती हैं (A textbook serves as a rallying points) : पुस्तकें विद्यार्थियों तथा अध्यापकों सबके लिए एक जैसा आधार प्रदान करती हैं। एक जैसी विशिष्ट घटनाओं स्थितियों पर ध्यान केन्द्रित करती हैं।

11. पुस्तकें प्रयोगशाला की तरह हैं (A textbook serves as a laboratory) : पुस्तकें विद्यार्थियों को पढ़ने, दत्त कार्य तैयार करते परीक्षाओं की तैयारी तथा मार्गदर्शन हेतु व और आगे अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करती हैं। ये साधारण आधार प्रदान करती हैं जिसमें पढ़ने, विश्लेषण करने तथा संक्षेप करने की प्रक्रिया में कुशलता प्राप्त होती है।

12. पाठ्य-पुस्तकें सामान्यतया सारी विधियों के लिए आधार प्रदान करती हैं (A textbook serves as a bases for almost all the methods) : लगभग अध्यापन की सारी विधियों जैसे-दत्त-कार्य, इकाई विधि, वाद-विवाद विधि तथा प्रोजैक्ट विधि को प्रयोग करने में सहायता करती है।

13. पुस्तकें निश्चित जानकारी देती हैं (A textbook gives definite information) : पुस्तकें उस निश्चित तथा प्रारम्भिक जानकारी का भण्डार होता है जो विभिन्न प्रकार के शिक्षण अनुभवों के लिए आवश्यक होती हैं। पाठ्य-पुस्तकें विद्यार्थियों की किसी इकाई में विचारों को संगठित करने, शब्दावली की सूचना देने में सहायता करती हैं तथा किसी पाठ के बारे में और अधिक सीखने में सहायता देती है ताकि वे उस पर और भी बुद्धिमता से कार्य करने के योग्य हो जाएं।

14. पुस्तकें शिक्षा की अन्तर्क्रिया को पैदा करती हैं (A textbook lubricate educational interaction) : पाठ्य-पुस्तकें शिक्षात्मक आपसी प्रक्रिया जो कक्षा के कमरे में अध्यापक तथा विद्यार्थी के मध्य तथा विद्यार्थी तथा अपने साथियों में जिसके परिणामस्वरूप सामूहिक अधिगम अस्तित्व में आता है, पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

15. पाठ्य-पुस्तकें वास्तविक तौर पर भी पाठ्यक्रम के लिए लाभकारी हैं (A textbook serves as syllabus de-facto) : अध्यापक अपने पढ़ाने के पाठ्यक्रम की सीमाबद्ध करता है। वह पुस्तकों का प्रयोग सामूहिक कार्य या व्यक्तिगत दत्त कार्यों द्वारा शिक्षादायक अनुभवों की विभिन्नता विकसित करने के लिए आरम्भिक निर्देशित सहायता के रूप में करता है।

पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यक विशेषताएं
(Essential Qualities of a Text Book)

इसे दो भागों में बांटा जा सकता है -

1. शिक्षात्मक पक्ष (Academic aspect)
2. शारीरिक पक्ष (Physical aspect)

(क) शिक्षात्मक पक्ष (Academic aspect) :

1. विषय-वस्तु का चुनाव (Selection of content)
2. विषय-वस्तु का संगठन (Organisation of content)
3. विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण (Presentation of content)
4. मौखिक संचार (भाषा द्वारा) (Verbal communication language)
5. दृष्टि संचार (व्याख्या द्वारा) (Visual communication illustration)
6. दत्त-कार्य, अभ्यास आदि (Assignments, exercise etc.)
7. आरम्भिक तथा पिछला पृष्ठ (Problems and back pages)

(ख) शारीरिक पक्ष (Physical aspects) :

1. पाठ्य-पुस्तक का आकार तथा बाहरी दिखावट (Size and format of the textbook)
2. प्रकाशन नमूना (Printing layout)
3. स्थायीपन (Durability)
4. मूल्य (Price)

1. विषय-वस्तु का चुनाव (Selection of content) :

(i) उपयुक्त विषय-वस्तु (Relevant content) : विषय-वस्तु सामाजिक विज्ञान के निर्देशक उद्देश्यों के अनुसार उपयुक्त होनी चाहिए।

(ii) कोर्स को शामिल करने वाला (Coverage of the course) : विषय-वस्तु पाठ्यक्रम में दिए गए सारे उपविषयों को सम्मिलित करने वाला होना चाहिए।

(iii) पर्याप्त विषय-वस्तु (Adequate content) : विषय-वस्तु बिल्कुल प्रत्येक उपविषय के अनुसार होनी चाहिए।

(iv) नवीनतम विषय-वस्तु (Up-to-date content) : विषय-वस्तु समयानुसार उपयुक्त होनी चाहिए।

(v) प्रमाणित विषय-वस्तु (Authentic content) : विषय-वस्तु प्रत्येक उपविषयानुसार प्रमाणित होनी चाहिए।

(vi) निरन्तरता तथा सन्तुलन (Continuity and balance) : पाठ्य-पुस्तक के विभिन्न उपविषयों के मध्य निरन्तरता तथा संतुलन स्थापित होना चाहिए।

(vii) एकीकृत विषय-वस्तु (Integrated content) : पिछली तथा अगली कक्षा के लिए चुने गए उपविषयों के मध्य एकीकरण अवश्य होना चाहिए।

(viii) जीवन में संबंधित (Linking with life) : विचाराधीन रखा गया उपविषय विषय-वस्तु जीवन की स्थितियों तथा दैनिक जीवन के हालातों को पाठ्य-पुस्तक में शामिल करने वाला होना चाहिए।

2. विषय वस्तु का संगठन (Organisation of content) :

(ix) इकाइयों में विभाजन (Division into units) : विषय-वस्तु को पूरी तरह से अध्याय व इकाइयों में बांटा जाना चाहिए।

(x) भागों में विभाजन (Division into sections) : विषय-वस्तु को भागों व अनुच्छेदों में बांटना चाहिए।

(xi) मनोवैज्ञानिक उपागम (Psychological approach) : जो उपागम पाठ्य-पुस्तक में प्रयोग किया जाए वह विद्यार्थियों की जरूरतों के अनुसार होना चाहिए।

(xii) विषय-वस्तु में एकसारता (Coherence in the subject matter) : विषय-वस्तु के संगठन में एकसारता तथा क्रम होना आवश्यक है।

(xiii) लचकशील संगठन (Flexible organisation) : संगठन हमेशा लचकशील होना चाहिए ताकि निर्देशन योजनानुसार इसमें परिवर्तन किए जा सके।

3. विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण (Presentation of content) :

(xiv) आकर्षक तथा उपयुक्त शीर्षक (Appealing and suitable title) : अध्याय का शीर्षक बहुत ही उपयुक्त होना चाहिए।

(xv) प्रेरित करने वाली प्रस्तुति (Motivating Presentation) : प्रस्तुतीकरण विद्यार्थियों को और अधिक अध्ययन के लिए प्रेरित करने वाला हो।

(xvi) रूचिक तथा कलात्मक बाहरी हिस्सा (Interesting and creative cov-

ering) : विषय-वस्तु विद्यार्थियों में रुचि उत्पन्न करे इसलिए इसे बहुत कलात्मक तथा आकर्षक अन्दाज में प्रस्तुत करना चाहिए।

(xvii) आवश्यक पारिभाषिक शब्दावली (Sufficient terminology) : प्रस्तुतीकरण पाठ्यक्रम के साथ संबंधित उपयुक्त शब्दावली प्रदान करने वाला होना चाहिए।

(xviii) उपयुक्त पुनरावृत्ति की सिफारिश (Adequate provision for replication) : यह दोहराई तथा व्यावहारिक रूप में नई चीज़ों को सीखने के लिए उत्साह प्रदान करने वाली होनी चाहिए।

(xix) अध्यापक के लिए उपयुक्त सुझाव देने की सिफारिश (Provision for suitable suggestions for teachers) : पाठ्य-पुस्तक कक्षा के कमरे के अध्यापक को कुछ सुझाव तथा विषय-वस्तु को प्रभावशाली ढंग से पढ़ाने के लिए उपयुक्त विधि तथा निर्देशक युक्ति प्रदान कराने वाली होनी आवश्यक है।

4. मौखिक संचार (भाषा) [Verbal Communication (language)] :

(xx) उपयुक्त शब्दावली (Suitable vocabulary) : शब्दावली कक्षा के स्तरानुसार उपयुक्त होनी चाहिए।

(xxi) छोटे तथा साधारण वाक्य (Short and simple sentences) : वाक्य छोटे तथा उपयुक्त होने चाहिए।

(xxii) सही शब्दावली (Correct spelling) : शब्दावली सही होनी चाहिए।

(xxiii) सही विराम चिन्ह (Correct punctuation) : विराम चिन्ह सही लगे होने चाहिए।

(xxiv) व्याकरणिक तौर पर सही भाषा (Grammatically correct language) : भाषा व्याकरणिक तौर पर सही होनी चाहिए।

(xxv) तकनीकी मदों का सही प्रयोग (Proper use of technical term) : तकनीकी मदों को उपयुक्त ढंग से जहां आवश्यकता हो, वहां प्रयोग किया जाना चाहिए।

5. संचार (स्पष्टीकरण) [Visual commonication (illustrated)] :

(xxvi) स्पष्ट व्याख्या (Clear illustration) : स्पष्टीकरण स्पष्ट तथा सच्चा होना चाहिए।

(xxvii) स्पष्टीकरण की प्रस्तुति उद्देश्यपूर्ण (Purposeful presentation of illustration) : स्पष्टीकरण पाठ्य-पुस्तक में उद्देश्यपूर्ण तथा उपयुक्त स्थान पर दिया होना चाहिए।

(xxviii) उपयुक्त स्पष्टीकरण (Suitable illustration) : स्पष्टीकरण उपयुक्त आकार में उचित होना चाहिए।

(xxix) **परीक्षणों को जोड़ना** (Supplimentation of test) : स्पष्टीकरण परीक्षण को जोड़ने वाला होना चाहिए।

(xxx) **स्पष्टीकरण में विभिन्नता** (Variety of illustration) : स्पष्टता में विभिन्नता होनी चाहिए।

6. अधिगम दत्त कार्य (Learning assignment) :

उपयुक्त तथा प्रोजैक्ट

(Exercises and Projects)

(xxxi) **उपयुक्त अभ्यास** (Adequate exercise) : अभ्यास परीक्षाओं के लिए उपयुक्त तथा अन्य विभिन्न उद्देश्यों जैसे कि दोहराई, एकीकरण आदि होना चाहिए।

(xxxii) **व्यापक** (Wide coverage) : अभ्यास आवश्यक पाठ्यक्रम को शामिल करने वाला होना चाहिए।

(xxxiii) **प्रोजैक्ट के लिए संभावनाएं** (Scope for projects) : प्रोजैक्ट सामाजिक शिक्षा के अधिकतर उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता करने वाला होना चाहिए।

(xxxiv) **वास्तविक प्रोजैक्ट** (Real Projects) : प्रोजैक्ट का जीवन की वास्तविक स्थितियों से निकटतम संबंध होना चाहिए।

(xxxv) **चुनौतियों भरे अभ्यास** (Challenging exercises) : अभ्यास और अधिक अध्ययन करने में विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने तथा जांच करने की भावना को विकसित करने वाला होना चाहिए।

(xxxvi) **स्तरीय अभ्यास** (Graded exercise) : अभ्यास प्रभावशाली तथा कम सीखने वाले विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुसार होना चाहिए।

7. आरम्भिक तथा पिछला पृष्ठ (Problems and back pages) :

(xxxvii) **उचित शीर्षक पृष्ठ** (Appropriate title page) : पृष्ठ पन्ना आवश्यक जानकारी जैसे कि उपयुक्त शीर्षक, लेखक का नाम, प्रकाशक का नाम, प्रकाशन का स्थान तथा वर्ष आदि के बारे में उपयुक्त जानकारी देता हो।

(xxxviii) **उपयुक्त आमुख** (Suitable preface) : आमुख पुस्तक के विषय क्षेत्र तथा केन्द्रीय भावों को व्यक्त करने वाले विचारों वाला होना चाहिए।

(xxxix) **प्रभावशाली जान-पहचान** (Effective introduction) : जान-पहचान पुस्तक की योजनाओं तथा उद्देश्यों की व्याख्या करने वाली होनी चाहिए।

(xxxx) **विषय-वस्तु की सही सूची** (Correct table of contents) : विषय-वस्तु की सही सूची होनी चाहिए।

(xxxxi) **उपयुक्त शब्दकोष** (Suitable glossary) : शब्दकोष उचित भाषा में होना चाहिए।

(xxxxii) **पुस्तक-सूची** (Bibliography) : पुस्तकों की सूची स्पष्ट तथा एकीकृत होनी चाहिए।

(xxxxiii) **अनुक्रमणिका** (Index) : अनुक्रमणिका जहां ठीक हो, वहां होनी चाहिए।

8. पुस्तक का आकार (Size of Book) :

(xxxxiv) **उपयुक्त आकार (Suitable)** : आकार विद्यार्थियों की आयु-वर्गानुसार उचित होना चाहिए।

(xxxxv) **उपयुक्त जिल्द** (Suitable Volume) : किताब के आकार के अनुसार जिल्द उपयुक्त होनी चाहिए।

9. प्रकाशन नमूना (Printing lay) :

(xxxxvi) **उपयुक्त लंबाई** (Suitable length) : पंक्तियों की लंबाई विद्यार्थियों की सुविधानुसार होनी चाहिए।

(xxxxvii) **उपयुक्त अक्षरों की छपाई** (Suitable type) : अध्याय का शीर्षक, उपशीर्षक, पैरों परनौट, अभ्यास आदि के लिए प्रयोग की गई अक्षरों की छपाई विद्यार्थियों की आयु के समूहानुसार उपयुक्त होनी चाहिए।

(xxxxviii) **उचित हाशिया** (Appropriate margin) : दाएं-बाएं, ऊपर-नीचे का हाशिया उचित होना चाहिए।

(xxxxix) **उचित खाली स्थान** (Aprropriate spacing) : पंक्तियों तथा अनुच्छेदों के बीच उचित स्थान होने चाहिए।

(xxxxx) **कलात्मक दिखावट** (Aesthitic outlook) : पुस्तक के पृष्ठ का हाशिया कलात्मक होना चाहिए।

10 स्थायित्व (Durability)

(xxxxxi) **स्थायी पन्ने** (Durable Paper) : आयु के अनुसार पृष्ठ उचित रूप से स्थायी होने चाहिए।

(xxxxxii) **पुस्तक का जीवन** (Life of Book) : पुस्तक के संभावित जीवन के आधार पर पृष्ठ उचित और स्थायी होने चाहिए।

(xxxxiii) **कागज़ का उचित मूल्य** (Suitable price of Paper) : कागज़ की किस्म पुस्तक के मूल्यानुसार होनी चाहिए।

(xxxxxiv) **आकर्षित जिल्द** (Attractive binding) : जिल्द आकर्षित होनी चाहिए।

(xxxxxv) उचित मूल्य (Suitable price) : पुस्तक का मूल्य विद्यार्थियों के आर्थिक पस्थितियों को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाना चाहिए।

(xxxxxvi) मुनासिब कीमत (Reasonable price) : पुस्तक का मूल्य प्रकाशन नमूने, आकार तथा स्थायित्व को ध्यान में रखकर निश्चित करना चाहिए।

पाठ्य-पुस्तक की सीमाएं
(Limitations of Text-Books)

सैकेण्डरी स्तर पर पाठ्य-पुस्तकों की समस्या एक बहुत भयानक समस्या है। पाठ्य-पुस्तक की समस्या पाठ्यक्रम के साथ संबंधित हैं क्योंकि पुस्तकें निश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी होती हैं। यदि इस पाठ्यक्रम में कुछ कमियां हो तो यह पाठ्य-पुस्तक की बहुत बड़ी कमी बन जायेगी। पुस्तक का सारा स्तर बिगड़ सकता है। यदि पुस्तक के निर्देशन अंग्रेज़ी के स्थान की बजाय किसी क्षेत्रीय भाषा में हो। यहां तक कि यदि पुस्तक कमेटियां अच्छी पुस्तकों का चुनाव नहीं करेंगी या यदि पाठ्य-पुस्तक की विषय-वस्तु बिल्कुल उपयुक्त या उचित न हो, पुस्तकों का स्तर निम्न हो सकता है। पुस्तक की विषय-वस्तु भी पूरी तरह उचित नहीं होती।

निम्नलिखित कमियां सैकेण्डरी शिक्षा आयोग द्वारा पुस्तक में पाई गई है :-

1. त्रुटिपूर्ण भाषा
2. बढ़िया कागज़ के प्रयोग की कमी
3. असंतोषजनक प्रकाशन
4. शब्दों के अक्षरों में अनगिनत गलतियां
5. चित्रों का घटिया स्तर
6. पाठ्य-पुस्तकों का उचित स्तर नहीं क्योंकि कुछ बहुत अधिक कठिन तथा कुछ बहुत सरल होती हैं।
7. पाठ्य-पुस्तक का चुनाव करते हुए बाहरी बातों पर अधिक ध्यान तथा शिक्षात्मक बातों पर कम ध्यान दिया जाता है।

सैकेण्डरी शिक्षा आयोग की सिफारिशों
(Recommendations of Secondary Education Commission)

1. अच्छी पाठ्य-पुस्तक के चुनाव के उद्देश्य उत्साहित करने के लिए एक उच्च स्तर की कमेटी तैयार करनी चाहिए। इस सिफारिश के लिए उचित धन, उचित प्रबन्ध तथा विशेषज्ञों की सूची तैयार करनी चाहिए। निम्नलिखित सदस्य को कमेटी में शामिल करना चाहिए :

(क) उच्च न्यायालय के न्यायधीश
(ख) पब्लिक सर्विस आयोग का एक सदस्य
(ग) उप-कुलपति
(घ) दो उपयुक्त विशेषज्ञ

शिक्षा का निर्देशक 'समिति' के सैक्रेटरी के रूप में कार्य करने वाला होना चाहिए। कमेटी अपने सदस्यों में एक चेयरमैन चुन सकती है। कमेटी के सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष का होना चाहिए। राज्य सरकारें अपनी आवश्यकताओं के अनुसार कमेटी के सदस्यों को नियुक्त कर सकती हैं।

कमेटी के कार्य
(Functions of the Committee)

1. सैकेण्डरी स्कूल के पाठ्यक्रम में प्रत्येक विषय का विशेषज्ञ या सर्वेक्षण करने वाले को कमेटी में शामिल करना।
2. समय-समय पर दो या तीन समीक्षकों को नियुक्त करना।
3. यदि आवश्यकता हो तो पाठ्य-पुस्तक की उपयोगिता के संबंध में व्यापक रिपोर्ट प्रदान करना, कमेटी के सदस्यों को उचित पारिश्रमिक देना।
4. यदि आवश्यकता हो, तो विशेषज्ञों को पाठ्य-पुस्तकों की तैयारी के लिए निमंत्रण भेजना।
5. यदि संभव हो तो अन्य क्षेत्रों में स्थापित कमेटियों के साथ तालमेल स्थापित होना चाहिए।
6. पुस्तकों की बिक्री के पश्चात् प्राप्त धन को उचित ढंग से प्रबंधित करना।
7. उचित पारिश्रमिक तथा लेखक का भाग देना, बाकी बची हुई राशि को निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए प्रयोग करना।

(क) निर्धन तथा योग्य विद्यार्थियों को भत्ते तथा छात्रवृत्तियां देने के लिए।
(ख) स्कूल के बच्चों के लिए आवश्यक पुस्तकों का प्रबंध करने के लिए।
(ग) सैकेण्डरी शिक्षा के लिए अन्य साधनों को विकसित करने के लिए सहायता देना।

8. स्थापित करने के लिए (Laying down the criteria) : कमेटी कागज़ की किस्म, चित्रों के प्रबंध तथा प्रकाशन आदि संबंधी स्तर स्थापित करें।

9. पुस्तक के स्पष्टीकरण की तकनीक (Training in the techniques of book illustration) : पुस्तकों के स्पष्टीकरण की तकनीक का प्रशिक्षण विकसित करने

के संदर्भ में केन्द्रीय सरकार को नई संस्थाओं या चल रही संस्थाओं को आर्थिक स... प्रदान करनी चाहिए।

10. स्पष्टीकरण को और अधिक सुधारने के लिए नये पुस्तकालयों या ... चल रहे पुस्तकालयों की मुरम्मत करना (Setting up and maintaining libr... for improving illustrations) : पुस्तक दृष्टांत प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए के... राज्य सरकारों को अच्छे चित्रों के ब्लॉकों के संग्रहालय स्थापित करने चाहिए ... पाठ्य-पुस्तक कमेटियों तथा प्रकाशकों को ब्लॉक किराए पर देने चाहिए।

11. पुस्तकों की उच्चतर गिनती की सिफारिश (Recommending a reaso... able number of textbooks) : प्रत्येक विषय के लिए केवल एक ही किताब ... सिफारिश नहीं करनी चाहिए। नियमित स्तर के अनुसार बहुत सारी पुस्तकों की सिफारिश करनी चाहिए।

12. भाषा के लिए निश्चित पुस्तकों की सिफारिश (Recommending defi-nite books for languages) : प्रत्येक कक्षा की भाषा से संबंधित एक उपयुक्त ... निश्चित पुस्तक सूची होनी चाहिए।

13. राजनीतिक तथा धार्मिक विचारधारा से दूर (Free from political and religious ideologies) : सिफारिश की हुई पुस्तक या किसी अन्य पुस्तक में कोई ... ऐसा कथन न दिया हो जो समाज के किसी भी वर्ग के लोगों की धार्मिक या सामाजिक भावनाओं को चोट पहुँचाए।

14. बार-बार होने वाले परिवर्तनों को निरूत्साहित करना (Discourgaing frequent changes) : सिफारिश की गई पुस्तकों में बहुत थोड़े समय के पश्चात् ही परिवर्तन नहीं करने चाहिए।

15. निर्देशित पुस्तकों को अवश्य ही उत्साहित करना चाहिए।

16. जहां तक पुस्तकों के प्रकाशन का प्रबंध है वहां राज्य सरकारें पुस्तकों के प्रकाशन का उत्तरदायित्व अपने सिर पर लें बजाय कि किसी व्यावसायिक प्रकाशक के हाथों में देने के। इन सारे सुझावों के होते हुए भी पुस्तकों में आवश्य सुधार नहीं हो रहे न ही उनकी हालत सुधर रही है।

पाठ्य-पुस्तक के लिए कोठारी शिक्षा आयोग की सिफारिशें
(Recommendations of Kothari Commission on Text-book)

कोठारी आयोग ने बहुत ही प्रभावशाली सुझाव दिए हैं कि पुस्तकें विशेषज्ञों द्वारा लिखी हुई और विशेष गुणों, बढ़िया प्रकाशन तथा स्पष्टीकरण के साथ विद्यार्थियों को उत्साहित करने वाली अच्छाइयों से भरपूर होनी चाहिए।

इस संबंध में इस आयोग ने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए हैं :-

(क) राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम (Programme at the national level) :

(i) देश की श्रेष्ठ प्रतिभाओं को एकत्र करना (Mobilisation of best talent in the country) : स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों की पुस्तकों की तैयारी के लिए देशभर में से श्रेष्ठ प्रतिभाओं को एकत्र करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। स्कूल स्तर पर एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा दिए गए सिद्धान्तों को मानना चाहिए। यह राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय कमेटी द्वारा सिफारिश की गई पुस्तकों की कीमत हटाने में तथा स्तर ऊँचा उठाने में सहायता करेगी तथा राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में भी सहायता करेगा।

(ii) पुस्तकों का स्वशासित संगठन (Autonomous organisation of textbook) : शिक्षा मंत्री मण्डल सरकारी क्षेत्र में से स्वशासित संगठन की स्थापना करें जो राष्ट्रीय स्तरों पर पुस्तकों की तैयारी का प्रबन्ध करेगा।

(iii) छोटी कमेटियों की स्थापना (Setting up small committees) : शिक्षा मंत्रालय द्वारा अलग-अलग कार्यों की योजनाओं पर व्यापक स्तर पर विचार करने के लिए छोटी-छोटी कमेटियां अवश्य बनाई जानी चाहिए।

(ख) राज्य स्तरीय कार्यक्रम (Programme of the state level) : राज्य स्तर पर पुस्तकों में संशोधन करने के लिए आयोग की तरफ से निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं:-

(i) राज्य स्तर पर विशेषज्ञों का वर्ग (Programme at the state level) : राज्य स्तर पर पुस्तकों की तैयारी के लिए विशेषज्ञों का वर्ग होना चाहिए तथा राष्ट्रीय स्तर पर किए जाने वाले कार्यों के लिए सहयोग अवश्य होना चाहिए।

(ii) राज्य स्तरीय शिक्षा विभाग (State level education department) : पुस्तकों की तैयारी तथा मूल्यांकन राज्य स्तरीय सरकारों की धरोहर होनी चाहिए। यदि संभव हो सके तो शिक्षा विभाग अपने छापेखाने में पुस्तकों के प्रकाशन की तैयारी करे।

(iii) विद्यार्थी सहकारी (Students Co-operatives) : पुस्तकों के विक्रय तथा विभाजन के लिए विद्यार्थी सहकारी स्टोरों का निर्माण करना चाहिए। कार्य सीधा ही शिक्षा विभाग की ओर से नहीं किया जा सकता।

(iv) राज्य स्तर पर स्वशासित कमेटी (Autonomous Committee at state level) : पुस्तकों के उत्पादन तथा अन्य सामान का प्रबंध कुछ स्वशासित कमेटियों के अधीन कर देनी चाहिए तथा इस कमेटी को शिक्षा विभाग के बहुत ही निकटतम निरीक्षण के अधीन कार्य करना चाहिए।

(v) पुस्तक में निरंतर सुधार (Continuous improvement in text book) : एक संस्था स्थापित करनी चाहिए जो पुस्तकों में सुधार तथा उनकी पुनरावृत्ति करे। पुस्तकों में

सदैव ही सुधार की आवश्यकता होती है क्योंकि पाठ्यक्रम में कोई भी परिवर्तन नहीं होगा। विषय-वस्तु का विस्तार करने के लिए पुनरावृत्ति का होना भी जरूरी है।

(vi) पुस्तकों का बहु-चुनाव (Multiple choice of books) : किसी एक कक्षा के लिए किसी एक पुस्तक की सिफारिश कर देना उपयोगिता को निश्चित नहीं कर सकता। एक विषय के लिए कम से कम दो या तीन पुस्तकों की सिफारिश अवश्य करनी चाहिए ताकि विद्यार्थी उनमें से अपनी पसंद के आधार पर चुनाव कर सकें।

(vii) स्वतंत्र नीतियाँ (Liberal policies) : सरकार लिखित पुस्तकें तो ले लेती है परंतु उनको उचित पारिश्रमिक नहीं देती। इसलिए योग्य व्यक्ति पुस्तकें लिखने की ओर प्रेरित नहीं होते। इसी कारण निजी संस्थाओं की ओर से लिखी पुस्तकों को सरकार की ओर से तैयार की गई पुस्तकों से अधिक मान्यता दी जाती है। इसलिए सरकार को पुस्तक के लेखकों को उचित पारिश्रमिक देने की नीतिक बनानी चाहिए तथा योग्य और कार्यिक व्यक्तियों को पुस्तकें लिखने की ओर आकर्षित करनी चाहिए।

(viii) लाभ-हानि के आधार के बिना (No profit-No loss bases) : राज्यों का पुस्तकों से लाभ कमाने का उद्देश्य नहीं होना चाहिए। राज्यों का केवल एक ही उद्देश्य होना चाहिए कि पुस्तकों की तैयारी तथा विद्यार्थियों तक इन्हें पहुंचाना। इसलिए राज्यों की पुस्तकों के निर्माण की भूमिका होनी चाहिए तथा यह भूमिका न लाभ व न हानि पर आधारित होनी चाहिए।

(ix) हस्तलिखित को स्वीकृति (Approval of Manuscripts) : शिक्षा विभाग को स्वयं दूसरे स्रोतों से हस्तलिखित प्रतियों को निमन्त्रण देना चाहिए। उच्च कमेटी द्वारा परीक्षण के पश्चात् इसे स्वीकृति देनी चाहिए।

(x) व्यावसायिक प्रमाणिकता (Professional recognition) : अध्यापकों को पुस्तकें लिखने के लिए प्रेरित करना चाहिए। अच्छी पुस्तकों को व्यावसायिक प्रमाणिकता देनी चाहिए।

(xi) पुस्तकों के उत्पादन का पक्ष (Aspect of textbook production) : आयोग ने पुस्तकों के उत्पादन के पक्ष से तीन सिफारिशें दी हैं :-

(क) शैक्षिक पक्ष (Academic aspect) : इसमें पुस्तकों के निर्माण तथा मूल्यांकन को शामिल किया गया है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण पक्ष है क्योंकि इसकी पूरी जिम्मेदारी शिक्षा विभाग पर होनी चाहिए।

(ख) उत्पादन पक्ष (Production aspect) : इसमें प्रकाशन तथा छपाई शामिल हैं। कुछ राज्यों के अपने ऊपर यह जिम्मेदारी होती है तथा स्वयं छपाई की प्रक्रिया को संभालते हैं। परन्तु यह क्षेत्र की सरकार पर निर्भर करता है।

(ग) विभाजन पक्ष (Distribution aspect) : इस पक्ष में पुस्तकों का संग्रह तथा विभाजन शामिल होता है। यह अपने-आप में पूर्ण होती है। यदि राज्य की सरकार यह जिम्मेदारी अपने ऊपर लेती है तो बहुत सारा समय इन्हें बेचकर हिसाब-किताब तथा प्रबंध पर नष्ट हो जाता है। इसलिए आयोग ने यह सिफारिश की है कि विद्यार्थी के सहकारी स्टोरों का निर्माण किया जाना चाहिए तथा शिक्षा विभाग यह जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेगा।

वृत्तचित्र (Documentaries) : किसी वृत्त अर्थात् समाचार या सत्य घटना पर आधारित फिल्म को वृत्तचित्र (डॉकुमेण्टरी फिल्म) कहते हैं। इसमें कलात्मकता, अभिनय और मनोरंजन के स्थान पर वृत्त के विषय और उद्देश्य पर अधिक ध्यान रखा जाता है।

वृत्तचित्र एक ऐसा साधन है जिन्हें देखकर छात्र दूसरों के साथ सांस्कृतिक अनुभवों के बारे में सीख सकते हैं। अन्य संस्कृतियों और देशों के बारे में वृत्तचित्रों को देखने से एक राष्ट्र की भाषाओं और संस्कृति जैसे विभिन्न विषयों में छात्रों की रुचि पैदा हो सकती है।

वृत्तचित्र फिल्में मुख्य रूप से शिक्षा देने या एक ऐतिहासिक रिकॉर्ड को बनाए रखने के प्रयोजनों के लिए, वास्तविकता के कुछ पहलू दस्तावेज़ करने के उद्देश्य से शिक्षा के विभिन्न विषयों पर बनाई जाती हैं।

अखबारें/समाचार पत्र
(Newspapers)

आज के समाज में समाचार-पत्र का बड़ा महत्व है। इनका अध्ययन समाज की गतिविधि को जानने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इनमें छपने वाले समाचार तथा लेख सामाजिक विषयों पर प्रकाश डालते हैं। अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह स्वयं इनका अध्ययन करें और बालकों में इसकी आदत डालें। बालकों को चाहिए कि वे समाचार-पत्रों में पढ़ी हुई मुख्य बातों को एक कापी में लिखते रहा करें तथा सप्ताह में एक बार अध्यापक के साथ उनके सम्बन्ध में बातचीत करें।

इस बात का ध्यान रहे कि दैनिक घटनाओं के बारे में अनेक मत हो सकते हैं। अतः अध्यापक इनके बारे में बालकों से बातचीत करे तो निष्पक्ष रह कर सभी बातें बच्चों को बताए। यह बात उन पर छोड़ दी जाए कि वे उनमें से जिस मत को भी ठीक समझे अपना लें।

इस साधन का ठीक ढंग से प्रयोग किए जाने पर बालकों की विचार और तर्क शक्ति का विकास होता है। उन्हें जिम्मेदार नागरिक बनने की ट्रेनिंग मिलती है तथा अंधविश्वास दूर होते हैं जिससे वे दूरदर्शी नागरिक बन जाते हैं।

समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं के अध्ययन का एक और लाभ भी होता है। इससे बालकों को मानव समाज की उन्नति के बारे में पूरी जानकारी रहती है। नए आविष्कारों, नये सरकारी नियमों, गिरते-चढ़ते भावों तथा ऋतुओं की गतिविधि के बारे में जानकारी वे समाचार-पत्रों से प्राप्त करते हैं। इनमें छपने वाले सुन्दर चित्रों का प्रयोग एल्बम बनाने में भी किया जा सकता है।

मानचित्र
(Maps)

मानचित्र कक्षा-कक्ष में सबसे अधिक प्रयोग होने वाली सहायक सामग्री है। भूगोल जैसे विषय में तो इसकी अति आवश्यकता है क्योंकि यह साधन किसी भी प्रदेश या स्थान की उचित भौगोलिक स्थिति तथा दूरी आदि मापने में बहुत सहायता प्रदान करता है। किसी ने सच कहा है कि 9/10 भूगोल तो मानचित्र पर ही होता है। मानचित्र की सहायता से हमें एक दम पता चलता है कि कोई विशिष्ट स्थान कहां पर स्थित है। यह कितनी दूरी पर है और दोनों स्थानों के बीच कितना अंतर है। सामाजिक अध्ययन, इतिहास, नागरिक शास्त्र आदि किसी भी विषय से सम्बन्धित मानचित्र प्रशिक्षण प्रक्रिया को रुचिकर बनाने में सहायता प्रदान करते हैं। केवल मानचित्र ही एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा विश्व को कक्षा कक्ष में उपस्थित किया जा सकता है। मानचित्र मानव की सबसे पहली लिखित कृति है जो केवल कुछ रेखाओं द्वारा प्रदर्शित की गई है। आदि मानव भी पेड़ों की छाल पर तथा पत्थरों पर मानचित्र बनाते थे जिससे उन्हें शिकार के स्थान आदि का ध्यान रहता था।

मानचित्रों का उपयोग
(Uses of Maps)

1. पाठ को रुचिकर बनाने में सहायता प्रदान करना (Helpful in lesson making interesting) : मानचित्र द्वारा शिक्षण को रुचिकर बनाने में सहायता प्रदान करते हैं क्योंकि इससे पाठ ठोस तथा यथार्थ की ओर अग्रसर होता है। इसलिए अध्यापक को चाहिए कि वे मानचित्र बनाने में छात्रों में रुचि उत्पन्न करे। पहले अध्यापक छात्रों को सरल चित्र बनाने के लिए कहे तथा बाद में कठिन चित्र बनवाए जब रुचि तथा ज्ञान बढ़ जाए तो छात्र कल्पना द्वारा भी मानचित्र बना सकता है।

2. उपयुक्त जानकारी (Appropriate knowledge) : मानचित्र द्वारा पृथ्वी के धरातल से सम्बन्धित भागों को प्रदर्शित किया जा सकता है। कौन सा स्थान, किसी दूसरे स्थान से कितनी दूरी पर है। किसी विशेष फसल, खनिज संपदा आदि का वितरण देश या संसार की दृष्टि से कैसा है? इस तरह की बहुत सी बातों की जानकारी प्रदान करने

के दृष्टि से मानचित्रों से उपयुक्त और कोई साधन नहीं।

3. कठिन ज्ञान सरल बन जाता है (Intricate knowledge becomes simple) : मानचित्रों की सहायता से कठिन काम भी सरल बन जाता है। जैसे-विभिन्न राज्यों की राजधानियों का ज्ञान, विभिन्न राजधानियों का ज्ञान तथा महत्वपूर्ण स्थानों का ज्ञान मानचित्र द्वारा सरलता से कराया जा सकता है।

4. ऐतिहासिक घटनाओं में सार्थकता लाने के लिए (To bring about an element of reality in historical event) : मानचित्रों द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं को विद्यार्थियों के समक्ष उपयोगी ढंग से पढ़ाया जा सकता है।

5. जलवायु तथा वनस्पति आदि की जानकारी के लिए (For getting knowledge about climate and vegetation) : किसी भी स्थान की जलवायु, वनस्पति आदि की जानकारी मानचित्र द्वारा सरलता से मिल जाती है।

''चयन और प्रयोग से सम्बन्धित आवश्यक बातें''
(Essential points regarding their selection and use)

1. स्थिति (Situation) : मानचित्र को ऐसे स्थान पर प्रदर्शित किया जाना चाहिए जिसे सभी छात्र ठीक ढंग से देख सकें। इसके साथ-साथ इसमें दिखाई जाने वाली बातों का चित्रण ऐसा होना चाहिए जिससे कक्षा के सभी विद्यार्थी उसके द्वारा प्रदर्शित सभी बातों को अच्छी तरह से देख सकें।

2. उपयुक्त चुनाव (Appropriate selection) : राजनैतिक, आर्थिक तथा भौगोलिक जिस प्रकार के मानचित्र का उपयोग जिस स्थिति में किया जाना है उसी का चुनाव किया जाना चाहिए।

3. खुरदरी सतह (Matt surface) : मानचित्र अच्छे गुण वाले होने चाहिए। इनकी सतह खुरदरी होनी चाहिए। यदि दीवार पर लटकाने वाले मानचित्रों की सतह चमकीली है तो कक्षा में कुछ छात्रों को चमकते भाग दिखाई नहीं देंगें।

4. अत्यधिक विस्तृत नहीं (No too detailed) : एक मानचित्र द्वारा सीमित उद्देश्यों की ही पूर्ति होनी चाहिए। बहुत सी बातों को एक साथ अपना उद्देश्य बना लेने पर मानचित्र इतना भीड़-भड़ाका हो जाता है कि उसकी स्पष्टता और निश्चितता समाप्त हो जाती है। इसके साथ-साथ मानचित्र अधिक विस्तृत नहीं होने चाहिए। जिसके नाम और चिन्ह मानचित्र में उपयोग किए जाते हैं वे ऐसे हो कि छात्र उनको समझ ले। मानचित्र सरल हों न कि कलात्मक और जटिल।

5. चयन (Selection) : विद्यार्थियों की योग्यता कक्षा विशेष के स्तर को ध्यान में रखकर मानचित्र का चयन किया जाना चाहिए।

6. स्थलों का सही ढंग से प्रस्तुत किया जाना (The land should be correctly depicted) : मानचित्र में एतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित स्थल सही ढंग से प्रदर्शित किए जाने चाहिए।

7. मितव्ययता (Economy) : मानचित्र सरल होना चाहिए तथा इसी के साथ इसे अधिक खर्चीला भी नहीं होना चाहिए।

8. विषय-वस्तु की यथार्थता (Subject matter realistic) : मानचित्र पर दी गई विषय-वस्तु यथार्थता, स्पष्टता और सूचनाओं पर्यायता की कसौटी पर पूरा खरा उतरना चाहिए।

9. उपयुक्त पैमाना (Appropriate scale) : मानचित्र का निर्माण करने का पैमाना विश्वसनीय होना चाहिए। संकेतों की दृष्टि से भी इसका उपयुक्त होना आवश्यक है। तभी दूरी तथा संख्यात्मक एवं गुणात्मक आंकड़ों का सही चित्रण हो सकेगा।

10. अधिक रंग नहीं (No too colours) : यद्यपि मानचित्रों में रंगों से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। फिर भी मानचित्रों में आवश्यकता से अधिक रंगों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

11. रेखांकन उपयुक्त (Sketching appropriate) : रेखांकन तथा सूचना व्यक्त करने वाले शब्दों तथा संकेतों की दृष्टि से भी मानचित्रों के उपयुक्त होना चाहिए।

12. उपयुक्त सम्भाल (Appropriate upkeep) : बार-बार प्रयोग में लाने और सम्भालने की दृष्टि से इनका उपयुक्त होना भी काफी आवश्यक है ताकि ये जल्दी खराब न हो जाएं। इसके लिए एक तो मानचित्र बिल्कुल मजबूत खरीदने चाहिए। ताकि बार-बार प्रयोग का भार गहन कर सकें। इसके साथ-साथ समय-समय पर इनकी मुरम्मत होती रहनी चाहिए। ताकि ये जल्दी खराब न हो जाए इसके लिए एक तो मानचित्र केवल मजबूत ही खरीदने चाहिए ताकि बार-बार प्रयोग का भार सहन कर सकें। इसके साथ-साथ समय-समय पर इनकी मुरम्मत होती रहनी चाहिए तथा इनको गर्द मुक्त अलमारियों में रखना चाहिए।

13. निर्माण (Preparation) : जहां तक हो सके मानचित्रों का निर्माण छात्रों द्वारा ही अध्यापक की देखरेख में किया जाना चाहिए। कक्षा में पूरे विवरण वाले मानचित्रों के स्थान पर मानचित्र खरकों (sketches) का प्रयोग किया जाना चाहिए ताकि विद्यार्थियों में ज्ञानार्जन और जिज्ञासा की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जा सके और रटने की प्रवृत्ति को निरुत्साहित किया जा सके।

14. दीवार पर टांगने सम्बन्धी सावधानी (Precaution regarding hanging on the wall) : मानचित्रों को दीवारों पर उतने समय तक ही टंगे रहने देना चाहिए

... देर तक उसकी आवश्यकता हो। आवश्यकता से अधिक समय तक इसे दीवार पर ... रहने नहीं देना चाहिए। प्रसंग आने पर ही इसे दीवार पर लटकाना चाहिए।

मानचित्र के प्रकार

(Types of Maps)

मानचित्र कई प्रकार के होते हैं जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं :-

1. रिलीफ मैप (Relief map) : ये मानचित्र पृथ्वी के धरातल को प्रदर्शित करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

2. फ्लैट मानचित्र (Flat map) : जिन मानचित्रों की सहायता से संसार के विभिन्न देशों के प्राकृतिक दशा या राजनैतिक व्यवस्था दर्शाई जाए उसे फ्लैट मानचित्र कहते हैं। भूगोल में वर्षा, तापक्रम और यातायात के साधन आदि और अर्थशास्त्र में जनसंख्या वितरण, इतिहास में युद्ध और सेनाओं के रास्ते और सीमाएं फ्लैट मानचित्रों में दर्शाए जाते हैं।

3. स्कैच मानचित्र (Sketch maps) : इसमें मानचित्रों में केवल रेखाएं होती हैं जिसे अध्यापक कक्षा में तथा विद्यार्थी भी कक्षा में दोनों ही भर सकते हैं।

प्रारम्भ में छात्रों को सरल मानचित्र बनवाने चाहिए और फिर जब उन्हें रंगों, रेखाओं, चिन्हों आदि की जानकारी प्राप्त हो जाए तो जटिल मानचित्र बनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। शिक्षक तथा छात्रों द्वारा निर्मित मानचित्र, प्रयोगशाला, पुस्तकालय या किसी विषय के कक्ष में लटका देने चाहिए ताकि छात्र समय-समय पर उनका उपयोग कर सकें।

मानचित्र की तैयारी

(Preparation of Maps)

मानचित्रों की तैयारी कई विधियों से की जा सकती है जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:-

1. एटलस (Atlas) : मानचित्र प्रायः एटलस में बने होते हैं कागज़ और कपड़े में बने मानचित्र बाज़ार में उपलब्ध हैं।

2. दीवारों पर बनाना (Preparation on walls) : मानचित्र प्रायः दीवारों पर भी बनाए जा सकते हैं।

3. स्वतन्त्र चित्रण (Free hand drawing) : मानचित्र स्वतन्त्र चित्रण की सहायता से बनाए जा सकते हैं। परन्तु इसके लिए बहुत अभ्यास और प्रतिभा की आवश्यकता है।

4. ट्रैसिंग (Tracing) : ट्रैसिंग द्वारा भी मानचित्र सरलता से बनाए जा सकते हैं।

5. प्रोजेक्टर द्वारा आकार बड़ा करना (Increasing of size through projector) : यदि मौलिक मानचित्र छोटा है तो प्रोजेक्टर की सहायता से इच्छानुसार बड़े प्रकार में प्रदर्शित किया जा सकता है।

6. रुई से (By Cotton) : उभरे हुए मानचित्र प्राय: प्लाई के तख्तों पर मढ़े या कागज की लुगदी से बनाए जाते हैं।

समुदाय
(Community)

शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है। "यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज में समाज के द्वारा और समाज के लिए होती है।" (It is process which takes place in society, by society, for society) इसलिये शिक्षा बालक केन्द्रित, जीवन केन्द्रित होने का साथ-साथ समाज केन्द्रित भी होनी चाहिए। व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है। यही कारण है कि मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा जाता है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक को समाज का एक अच्छा नागरिक बनाना है। इसलिये बालक की शिक्षा स्कूल तक सीमित न होकर बल्कि सामाजिक वातावरण में भी होनी चाहिए। ऐसा करने के लिए यह आवश्यक है कि स्कूल और समाज को एक दूसरे के समीप लाया जाये। वैसे भी अगर देखा जाये तो बालक अपने समय का अधिकांश भाग स्कूल में न बिताकर समाज के बीच बिताता है और वहां जीवन एवं सजीव अनुभवों से परिचित होता है।

उपरोक्त विचारधारा के अनुसार स्कूल तथा समाज दोनों एक दूसरे के पूरक ही नहीं बल्कि एक-दूसरे के अभिन्न अंग हैं या यूँ कहिये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिनको अलग करना असम्भव है। इसलिये स्कूल को चाहिये कि वह सामाजिक जीवन में प्रत्यक्ष रूप से भाग ले तथा समाज की मुख्य समस्याओं के समाधान में सहायता करे। के.जी. **सैयदीन** के शब्दों में, "यह आवश्यक है कि सामुदायिक स्कूल समाज की समस्याओं व आवश्यकताओं पर आधारित हों। इसकी पाठ्य चर्चा में सामाजिक जीवन की बातों को मुख्य स्थान मिलना चाहिये। सामाजिक जीवन के प्राकृतिक रूप में जो कुछ भी महत्वपूर्ण तथा विशेष बातें हों, उन सबका संकेत स्कूल की पाठ्य चर्चा में मिलना चाहिये।"

शिक्षा के क्षेत्र में समुदायों का सहयोग प्राचीन काल से ही रहा है, आज भी है और भविष्य में भी बिना इनके सहयोग के शिक्षा की उचित व्यवस्था करना सम्भव नहीं होगा। कोई भी समुदाय अपने बच्चों की शिक्षा में दोहरा कार्य करता है - एक तो वह स्वयं ऐसा वातावरण प्रस्तुत करता है कि बच्चे उसमें भाषा, आचरण, मूल्य और मान्यताओं की शिक्षा ग्रहण करते हैं और दूसरे वह अपने अन्दर शिक्षा के अन्य औपचारिक/अनौपचारिक अभिकरणों का निर्माण करता है।

शिक्षा के महत्त्वपूर्ण स्त्रोत के रूप में समाज
(Community as an important Source of Education)

समुदाय में बच्चे अपनी मूल शक्तियों के विकास के लिये पूरा-पूरा अवसर प्राप्त करते हैं। विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों से मिलते हैं, विभिन्न परिस्थितियों से होकर गुजरते हैं, वे विभिन्न प्रकार के जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव ग्रहण करते हैं। वे समाज में रहकर ही इतिहास, भूगोल, अर्थ शास्त्र, परिवहन, नागरिक शास्त्र, समुदाय, सरकार और जीवन से सम्बन्धित अन्य संस्थाओं के बारे में अपने विचार बनाते हैं। वे विभिन्न विषयों पर तर्क-वितर्क करते हैं और परिणामस्वरूप उनका मानसिक विकास होता है। समुदाय द्वारा पुस्तकालयों और वाचनालयों की व्यवस्था करते हैं जिनका लाभ स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों को होता है। समुदाय द्वारा आयोजित विभिन्न समारोहों, नाटक, सिनेमा आदि की सहायता से बच्चों का मनोरंजन और सांस्कृतिक विकास होता है।

समुदाय एक ऐसा सामाजिक समूह होता है जिसके सदस्यों के बीच 'हम' की भावना होती है और उसके सदस्य आपस में मिल-जुलकर रहते हैं और अपनी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति एक-दूसरे के सहयोग से करते हैं। वे समुदाय की सामाजिक क्रियाओं में भाग लेते हैं और समुदाय की भाषा, रहन-सहन एवं खान-पान के तरीकों तथा रीति-रिवाजों को सीखकर समुदाय में समायोजन करते हैं। समुदाय समय-समय पर साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक ,धार्मिक और राजनैतिक आयोजन करते हैं। इन आयोजनों को लोग मिल-जुल कर सम्पन्न करते हैं। बच्चे भी उनमें भाग लेते हैं। इन कार्यों में भाग लेकर वे प्रेम, सहानुभूति, सहनशीलता और सहयोग का सच्चा पाठ सीखते हैं।

उपरोक्त चर्चा का सारांश यह है कि स्कूल समुदाय के निकट आये और समुदाय को स्कूल की प्रयोगशाला मान कर चले। स्कूल को चाहिये वह समुदाय की संस्कृति को समझे, उसके स्रोतों की पूर्ण खोज करे उसकी समस्याओं की पहचान करे तथा उनके भौतिक उचित सामाधान सुझाए। उसके स्कूल के छात्र-छात्राओं को न केवल समुदाय की भौतिक व्यवस्था का ज्ञान होगा बल्कि मानवीय व्यवस्था को खोज करने के अवसर भी मिलेंगे। भौतिक व्यवस्था के अन्तर्गत समुदाय के आकार, जलवायु, स्थान, भूमि और खनिज पदार्थों को सम्मिलित किया जाता है। मानवीय व्यवस्था से तात्पर्य समुदाय के लोगों के समूचे जीवन से है। इसके अन्तर्गत जनसंख्या, स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यवस्था, रहन-सहन, खान-पान, रीजि-रिवाज, जीवन मूल्य और समुदाय के लोगों की मान्यताएं शामिल हैं। सामाजिक अध्ययन विषय शिक्षण की दृष्टि से समुदाय के स्रोतों की जांच और उनका प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद है।

महत्त्वपूर्ण समुदाय स्रोत
(Important Community Resource)

प्रत्येक समुदाय में कुछ न कुछ ऐसे स्रोत होते हैं जिनका प्रयोग शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति हेतु किया जा सकता है। सामाजिक विज्ञान का शिक्षण करने वाला शिक्षक इन स्रोतों का पता लगाकर छात्र-छात्राओं के ज्ञानार्जन हेतु इनका प्रयोग करने का पूरा-पूरा प्रयास करता है। इन स्रोतों का उचित ढंग से प्रयोग करने के लिये और समय के सदुपयोग हेतु शिक्षक के लिये छात्र-छात्राओं की सहायता से इन स्रोतों की सूची बना लेना लाभप्रद होता है। इस सूची में प्रत्येक महत्त्वपूर्ण स्थान का पूर्ण ब्यौरा होता है जो निम्न हैं -

1. स्थान का नाम
2. स्थान की स्थिति
3. स्थान से सम्बन्धित व्यक्ति विशेष या पार्टी का नाम
4. स्थान पर पहुंचने से मार्ग एवं दिशा
5. पहुंचने का सर्वोत्तम समय
6. अध्ययन हेतु विशेष साधन एवं स्रोत
7. छात्र-छात्राओं के समूह की अनुमानित संख्या
8. अनुमानित समय की आवश्यकता
9. अनुमानित खर्च जो किया जाएगा
10. परिवहन आदि की सुविधाएं

सामाजिक विज्ञान शिक्षण की दृष्टि से निम्न स्रोत हैं :-

1. ऐतिहासिक महत्त्व के स्थान (Places of Historical Importance) : एतिहासिक स्थानों की सूची इस प्रकार बनाई जा सकती है जैसे किले स्तम्भ, भवन, मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, गिरजाघर, शिला, मीनार, स्तूप और लेख आदि।

2. भौगोलिक महत्त्व के स्थान (Places of Geographical Importance) : इनमें कारखाने, मिलें, रेलवे स्टेशन, सिनेमा, बंदरगाह, हवाई अड्डे, खानें, टैलीफोन एक्सचेंज, विभिन्न अवस्थाओं में कृषि, यातायात, संचार केन्द्र, पहाड़ी, घाटियां, नदी, झरने, चट्टानें और पुराने अवशेष आदि।

3. सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व के स्थान (Places of Social and Cultural Importance) : इनमें क्लब, पार्क, संग्रहालय, चिड़ियाघर, कला केन्द्र, पुस्तकालय, सिनेमा घर, रेडियो स्टेशन, विश्वविद्यालय, फिल्म स्टुडियो, स्काऊट तथा गर्ल गाईड संगठन, कठपुतली घर आदि।

4. आर्थिक महत्त्व के स्थान (Places of Economic Importance) : इनमें बाजार, फैक्ट्रियां, कारखानें, डाकघर, जीवन बीमा केन्द्र, डेरियां, इटों के भट्टे आदि।

5. सरकारी भवन (Government Buildings) : इनमें पंचायत घर, नगरपालिका पुलिस स्टेशन, न्यायालय, विधान सभा, जिला बोर्ड, अस्पताल, जनकल्याण संस्था आदि।

6. वैज्ञानिक महत्व के स्थान (Places of Scientific Importance) : इनमें विज्ञान की प्रयोगशालाएं,धर्मल एवं हाईड्रो पावर संयन्त्र इंजीनियरिंग कालेज आदि शामिल किया जा सकता है।

7. परम्पराएं इत्यादि (Traditions etc) : इनमें स्थान विशेष की परम्पराएं, रीति-रिवाज, समारोह, उत्सव, मेले, प्रथाएं, धार्मिक विश्वास एवं दृष्टिकोण को सम्मिलित कर सकते हैं।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण में सामुदायिक साधनों का महत्त्व
(Importance of Community Resources in the Teaching of Social Science)

सामुदायिक साधन सामाजिक विज्ञान की शिक्षा के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन साधनों से छात्र-छात्राओं को सामाजिक जीवन के व्यवहार पक्ष का ज्ञान होता है। यह कहना गलत न होगा कि समुदाय ही शिक्षा प्रदान करने का वास्तविक विद्यालय या प्रयोगशाला है। समुदाय छात्र-छात्राओं का ऐसे अनुभव उपलब्ध करवाता है जिनका शैक्षणिक दृष्टि से व्यावहारिक जीवन में बहुत लाभ है जो निम्न हैं :-

1. इनका ज्ञान हमारी इन्द्रियों पर आधारित होता है और जो प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होता है।
2. यह ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होने के कारण स्थाई होता है और छात्र-छात्राएं इसे बहुत समय तक याद रखते हैं।
3. इस ज्ञान में स्पष्टता होती है और छात्र-छात्राएं ज्ञान की प्राप्ति में रुचि लेते हैं।
4. मन्दबुद्धि बालकों के लिये इस प्रकार के स्रोत बहुत प्रभावशाली होते हैं।
5. छात्र-छात्राएं जीवन में सामुदायिक जीवन और उसकी क्रियाओं से अवगत होते हैं तो वे अपने भविष्य के बारे में विचार कर सकते हैं।
6. इस प्रकार के ज्ञान से कल्पना शक्ति का विकास होता है और छात्र-छात्राओं में अवलोकन और विश्लेषण आदि शक्ति का भी विकास होता है।
7. जब छात्र-छात्राएं समुदाय के सम्पर्क में आते हैं तो उनके अन्दर अपनेपन की भावना जाग्रत होती है। वे इस बात को समझ लेते हैं कि समुदाय की भलाई के लिए उन्होंने ही आगे चलकर कुछ नेक कार्य करने हैं।

8. सामुदायिक जीवन को जब सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाता है तो पाठ्यक्रम प्रभावपूर्ण सशक्त एवं सार्थक बन जाता है।

9. छात्र-छात्राएं सामाजिक जीवन में फैली बुराइयों जैसे- भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी, धोखाधड़ी, चोर बाजारी, जातिवाद, पक्षपात आदि से अवगत हो जाते हैं। वे इन बुराइयों को अपनी आंखों से देखते हैं और इनके दुष्परिणामों को देखने का भी अनुभव होता है। सामाजिक अध्ययन का विषय उनको इन बुराइयों को दूर करने के लिए प्रेरित करता है।

इस प्रकार सामाजिक जीवन के स्रोतों का गहनता से अवलोकन करने पर छात्र-छात्राओं में भूतकाल की उपलब्धियों के प्रति चेतना पैदा होती है और भविष्य के प्रति सम्भावनाओं के प्रति आस्था एवं विश्वास होता है। सारांश में यह कहना ही उचित होगा कि स्कूल और समुदाय द्वारा एक योजनाबद्ध ढंग से सामाजिक विज्ञान के शिक्षण को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

सामाजिक स्रोतों का सद्पयोग कैसे करें?

(How to make proper use of Community Resources?)

शिक्षण की दृष्टि से देखा जाए तो यह ज्ञात होता है कि स्कूल समाज की प्रमुख शिक्षण संस्था है। इसलिए समाज और स्कूल में समन्वय स्थापित करने की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो दोनों के बीच में दरार पड़ सकती है। इसलिए दोनों का एक दूसरे से सहयोग करना बहुत आवश्यक है। शिक्षा शास्त्री डीवी (Dewey) के अनुसार, स्कूल एक छोटा समाज है। छात्र-छात्राओं के समाजीकरण के लिये स्कूल एक छोटे समाज की भूमिका निभाता है। स्कूल और समाज के आपसी सम्बन्धों को घनिष्ठ बनाने हेतु दो तरीकों को अपनाना होगा जो निम्न हैं -

(क) स्कूल को समुदाय में ले जाना।

(ख) समाज को विद्यालय के निकट लाना।

(क) स्कूल को समुदाय के निकट लाना (Bringing the School Near to the Community) : आज के स्कूल परम्परागत स्कूलों से भिन्न है। आज आवश्यकता इस बात की है कि स्कूल के छात्र-छात्राओं में सामाजिक चेतना का विकास किया जाये। इसके लिये स्कूल को समुदाय में लाना होगा क्योंकि छात्र-छात्राओं के समुचित विकास के लिये समुदाय और उससे सम्बन्धित स्रोतों का प्रत्यक्ष अनुभव करना आवश्यक है। अनुभव हेतु निम्न तरीका (विधियों) को अपनाया जा सकता है-

1. **भ्रमण** (Excursion) : सभी छात्र-छात्राओं की भ्रमण में स्वाभाविक रूप से रुचि होती है। इसलिये समय-समय पर छात्र-छात्राओं को भ्रमण के लिये ले जाना चाहिये। इस प्रकार के भ्रमणों से छात्र-छात्राओं को पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, सिंचाई की

सुविधाओं मुख्य फसलों, कुटीर उद्योग तथा व्यापार और लोगों के आर्थिक जीवन के बारे में प्रत्यक्ष रूप से देखने और जानने का अवसर मिलता है। ग्रामीण छात्र-छात्राओं का नगर और नगर के छात्र-छात्राओं को गांवों में भ्रमण करने से सामुदायिक ज्ञान प्राप्त होता है। भ्रमण करने के पश्चात् शिक्षक को छात्र-छात्राओं से विचार-विमर्श करना चाहिये और रिपोर्ट बनाने में शिक्षक को छात्र-छात्राओं की सहायता करनी चाहिये।

2. **सामुदायिक सर्वेक्षण** (Community Servey) : सामाजिक विज्ञान विषय के शिक्षण को सार्थक एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिये समय-समय पर समुदाय का सर्वेक्षण करना बहुत आवश्यक है। इसके द्वारा छात्र-छात्राएं समाज में क्षेत्र विशेष का गहनता से अध्ययन करते हैं। सामुदायिक सर्वेक्षण समुदाय में किसी वस्तु की स्थिति का अध्ययन है। सारांश में यह कहा जा सकता है कि सर्वेक्षण सामाजिक या भौतिक आंकड़ों को व्यवस्थित रूप से संगठित व योजनाबद्ध ढंग से निर्धारित करना है।

इस प्रकार सर्वेक्षण से बहुत लाभ होते हैं जो निम्न हैं -

1. सर्वेक्षण करने से सामाजिक ढांचे और लोगों की दैनिक क्रियाओं एवं जीवन की जटिलताओं का ब्यौरा प्राप्त होता है।

2. इससे भूतकाल की दशाओं, वर्तमान के विकास तथा भविष्य की आकांक्षाओं का पता चलता है। इसके द्वारा उन समस्याओं के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है जिनका सामना भविष्य में समुदाय को करना होता है।

3. यह छात्र-छात्राओं को समुदाय के कार्यों में भाग लेने की सम्भावनाओं का सुझाव देता है। इससे छात्र-छात्राओं को सकारात्मक कार्यों में भाग लेने का अवसर मिलता है और लोकतान्त्रिक नागरिक बनने की शिक्षा भी मिलती है।

4. सर्वेक्षण छात्र-छात्राओं को समुदाय में सफलतापूर्वक रहने के लिये आत्मनिर्भरता की भावना का विकास करता है।

5. सर्वेक्षण के द्वारा समुदाय में रहने वाले लोगों की वर्तमान दशाओं का आलोचनात्मक ढंग से निरीक्षण किया जा सकता है और उन्हें अच्छे नागरिक बनने की प्रेरणा दी जा सकत है।

स्कूल के छात्र-छात्राओं के द्वारा किये गये सर्वेक्षण से समुदाय के किसी भी पहलू पर जानकारी प्राप्त की जा सकती है। जैसे-सामाजिक संस्थान, पूर्व इतिहास, रीति-रिवाज, परम्पराएं, प्रथाएं, लोक कथा, लोक गीत, लोक भाषा आदि। सामुदायिक समस्याओं के अन्तर्गत सफाई, बेरोज़गारी, बाल-विवाह, निरक्षरता को शामिल किया जा सकता है।

3. **सामुदायिक सेवाओं का आयोजन** (Organisation of Community Services) : स्कूल का निर्माण केवल मात्र शिक्षा देने के लिये नहीं किया जाता बल्कि

छात्र-छात्राओं में उचित दृष्टिकोण का विकास करना भी स्कूल का आवश्यक कार्य है। सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ समुदाय विशेष से सम्बन्धित व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना भी बहुत आवश्यक है क्योंकि छात्र-छात्राएं समाज के सदस्य होते हैं। इसलिए यदि समाज की समस्याओं को नहीं समझते और उनका समाधान करने की प्रेरणा जागृत नहीं होती तो ऐसी शिक्षा उद्देश्य हीन और निरर्थक है। वैसे भी छात्र-छात्राएं 'करके सीखना' में विश्वास करते हैं। 'करके सीखना' (Learning by doing) का सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक है और कारगर भी है।

कोठारी आयोग (1964-66) (Kothari Commission 1964-66) ने शिक्षा का एक और उद्देश्य बताया है जिसको 'सेवा' (Service) का नाम दिया गया है। यह सेवा समाज और राष्ट्र दोनों से ही सम्बन्धित है। सेवा की भावना से छात्र-छात्राओं में अच्छे गुणों और स्वस्थ एवं सकारात्मक दृष्टिकोणों का भी विकास होता है। 'राष्ट्रीय सेवा योजना' (National Service Scheme) जो कि देश के सभी महाविद्यालयों में अपनाई जा रही है। सेवा भावना के विकास हेतु स्कूलों में भी इसी प्रकार के समाज सेवा कार्यों को बढ़ावा दिया जा सकता है। जैसे- स्कूल की सफाई, स्कूल की फुलवाड़ी की देखभाल आदि। इस प्रकार के कुछ कार्य स्कूल के छात्र-छात्राओं संस्था के बाहर प्रोजैक्टस के रूप में कर सकते हैं। ये प्रोजैक्टस निम्न है -

1. वृक्षारोपण करना।
2. गांव या शहर की नालियों या सड़कों की सफाई।
3. ट्रैफिक के नियमों की जानकारी देना।
4. प्रौढ़ शिक्षा।
5. परिवार कल्याण।
6. भ्रूण हत्या का शान्ति से विरोध।
7. कुओं आदि की सफाई।

इस प्रकार के और भी अनेक प्रोजैक्टस स्कूल के छात्र-छात्राएं अपना सकते हैं लेकिन किसी भी प्रोजैक्टस को अपनाते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है -

1. प्रोजैक्टस का शैक्षिक महत्त्व अवश्य हो। क्योंकि स्कूल की प्रत्येक क्रिया का लक्ष्य शैक्षणिक होना चाहिये।

2. प्रोजैक्टस इस प्रकार के हों जिससे समुदाय को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लाभ अवश्य हो।

3. प्रोजैक्टस अपनाते समय यह देखना भी आवश्यक है कि छात्र-छात्राओं के पास पर्याप्त समय हो।

4. प्रोजैक्टस छात्र-छात्राओं की रुचि, आयु और मानसिक स्तर के अनुकूल होने चाहिए।
5. प्रोजैक्टस बहुत कठिन और खर्चीले नहीं होने चाहिए।

(ख) समुदाय को स्कूल के निकट लाना (Bringing Community Near to School) समुदाय को स्कूल के निकट लाने हेतु निम्न तरीकों को अपनाया जा सकता है-

1. समुदाय के प्रसिद्ध व्यक्तियों का भाषण करवाना (Inviting Eminent Persons for Lectures): समाज में विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित अनेक प्रसिद्ध और अनुभवी व्यक्ति होते हैं। इनको स्कूल में आमन्त्रित करके इनके भाषणों से छात्र-छात्राओं को लाभान्वित किया जा सकता है। ये विशेष व्यक्ति जो ख्याति प्राप्त हैं समुदाय के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाल सकते हैं। उदाहरण के लिए ग्रामीण स्कूलों में सरपंच और नगर के स्कूलों में नगरपालिका के अध्यक्ष, डॉक्टर किसी प्रसिद्ध खिलाड़ी और ख्याति प्राप्त कलाकार एवं सन्त को स्कूल में बुलाकर भाषण का आयोजन किया जा सकता है।

जब भी स्कूल में भाषण का आयोजन करवायें तो शिक्षक को निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये -

1. भाषण की भाषा छात्रों के मानसिक स्तर के अनुकूल हो जिससे वे आसानी से समझ सकें।

2. भाषण की विषय-सामग्री छात्र-छात्राओं की आवश्यकता और आयु के अनुसार हो।

3. भाषण की समाप्ति के पश्चात् छात्र-छात्राओं की शंकाओं को दूर करने का प्रावधान भी हो।

2. अभिभावक शिक्षक संघ (Parent-Teacher Association) : प्रत्येक स्कूल में अभिभावक शिक्षक संघ का होना आवश्यक है। बच्चे के व्यक्तित्व के सही विकास के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक और बच्चे के माता-पिता समय-समय पर मिलते रहें। प्रातः बच्चों के माता-पिता स्कूल में बच्चों की प्रगति के बारे में सही ज्ञान नहीं होता। अभिभावकों को स्कूल में होने वाली विभिन्न क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए। अध्यापक और अभिभावक आपस में मिलकर बच्चों के विकास के लिये योजनाएं बना सकते हैं। अभिभावकों को यह भी ज्ञान रहता है कि विद्यालय में क्या हो रहा है, किस प्रकार विद्यालय के वातावरण को सुधारा जा सकता है। विद्यालय की उन्नति में अपना योगदान दे सकते हैं। विद्यालय में होने वाली क्रियाओं और कार्यक्रम में अभिभावकों को अध्यक्ष बनाया जा सकत है। यदि किसी क्रिकेट खिलाड़ी का बच्चा विद्यालय में पढ़ रहा है तो उस खिलाड़ी को विद्यालय की क्रिकेट टीम का अध्यक्ष बनाया जा सकता है वह भी विद्यालय को अपना सक्रिय योगदान दे सकता है।

3. मेलों एवं राष्ट्रीय दिवसों का आयोजन (Celebration of Fairs and National Days) : स्कूल के छात्र-छात्राओं को सामाजिक विज्ञान विषय का व्यापक और रोचक मात्रा में ज्ञान देने हेतु स्कूल के प्रांगण में भिन्न-भिन्न मेलों, उत्सवों और राष्ट्रीय पर्वों का आयोजन किया जा सकता है। जब मेले में समुदाय के विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित व्यक्ति आते हैं तो छात्र-छात्राएं उनका परिचय पाकर अपने सामान्य ज्ञान में वृद्धि करते हैं। इसी प्रकार कुछ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पर्वों का आयोजन करके छात्र-छात्राओं के ज्ञान में वृद्धि की जा सकती है। उदाहरण 15 अगस्त और 26 जनवरी को स्कूल में स्वतन्त्रता दिवस और गणतन्त्र दिवस के रूप में बड़ी धूम-धाम से मनाया जा सकता है। इसके मनाने से छात्र-छात्राओं में देश भक्ति की भावना के विकास के साथ-साथ उन महान पुरुषों के प्रति आदर एवं सम्मान की भावना जागृत होती है जिन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिये अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया है। इसी प्रकार कुछ अन्तर्राष्ट्रीय दिवस हैं जैसे U.N.O. दिवस, विश्व-शान्ति दिवस को मनाने से छात्रों को मानवीय अधिकारों से परिचित कराया जा सकता है।

4. समाज सेवी क्रियाएं (Social Service Activities) : समय-समय पर स्कूल में अनेक प्रकार की समाज सेवा से सम्बन्धित क्रियाओं का आयोजन किया जा सकता है। जैसे प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम स्कूल समय के बाद छात्र-छात्राओं और शिक्षकों के द्वारा सुचारू रूप से चलाया जा सकता है। समुदाय के लोगों के लिये स्कूल में वाचनालय एवं लघु पुस्तकालय और छोटी-छोटी डिस्पैंसरी का प्रबन्ध किया जा सकता है।

एटलस
(Atlas)

भूगोलविदों के अनुसार भूगोल का अधिकतर अध्ययन एटलस और मानचित्रों से ही किया जा सकता है। इसके प्रयोग के निम्न लक्ष्य हैं -

1. छात्र-छात्राओं के समय और शक्ति की बचत करना।
2. भूगोल अध्ययन हेतु स्वास्थ्य की आदत को प्रेरित करना।
3. भौगोलिक ढांचों, सम्बन्धों आदि के अध्ययन हेतु सुविधा प्रदान करना।
4. दूरी, दिशा, आकार, विस्तार, स्थिति का सही-सही नाम और ज्ञान प्रदान करना।

एक अच्छी एटलस की विशेषताएं
(Characteristics of a Good Atlas)

1. एक अच्छी एटलस में छात्र-छात्राओं के मानसिक विकास, योग्यता और उनकी आयु को ध्यान में रखा जाता है।

2. इसमें पारिभाषिक मानचित्रों और राजनैतिक मानचित्रों के भरमार की आवश्कता नहीं होती।
3. इसमें नक्शे स्पष्ट बने और छपे हों। प्रत्येक प्रमुख बात की स्पष्टता हो ताकि आसानी से पढ़ी जा सके।
4. नक्शे आदि और आकर्षक हों। वास्तविकता और प्रतिबिम्बित करने वाले हों और उनके शीर्षक स्पष्ट हों।
5. प्रत्येक नक्शे में एक ही मुख्य बात का ब्यौरा हो। अनेक बातों को एक ही नक्शे में न दर्शाया गया हो।
6. राजनैतिक बंटवारों को बल न देकर प्राकृतिक धरातल पर अधिक बल दिया गया हो। कुछ सामान्य और कुछ विशेष प्रकार के नक्शे हों जैसे जलवायु, वनस्पति, जनसंख्या, व्यापार, भौगोलिक प्रदेश आदि को अलग-अलग नक्शों में दिखाया गया हो।
7. स्थानीय अथवा गृह प्रवेश के अधिक नक्शे हों, उन नक्शों की क्रमबद्धता गृह प्रदेश, ज़िला, प्रान्त, देश, महाद्वीप और अन्य महाद्वीप और विश्व के अनुसार होनी चाहिये।
8. धरातल की ऊंचाई-निचाई रंगों से दिखाई गई हो।
9. एटलस के उपयोग में यथार्थता (Reality) पर अधिक बल दिया जाना चाहिये।
10. इसमें कुछ मानचित्र अवश्य हो जिनका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके।
11. इसमें मानचित्र के पैमाने और अक्षांश-देशान्तर रेखाओं को महत्त्व दिया जाना चाहिये।

भूगोल शिक्षण में एटलस का विशेष महत्त्व है। एटलस में स्थान देखने से हाथ तथा नेत्र में समन्वय स्थापित होता है और इससे कल्पना शक्ति का विकास होता है। स्कूल स्तर पर मानचित्रावली के उपयोग पर उचित ध्यान दिया जाना चाहिये और शिक्षक को यह देखना चाहिये कि कक्षा में और घर में भूगोल के छात्र-छात्राएं इसका उपयोग करें। इस प्रकार भूगोल के छात्र-छात्राएं बहुत-सा ज्ञान एटलस के अध्ययन से प्राप्त कर लेते हैं।

ई-संसाधन (E-Resources) : नवीनतम प्रौद्योगिकी में संरक्षण, नवाचार और सहयोग के माध्यम से ज्ञान का प्रभावी और कुशल उपयोग करने के उद्देश्य से शैक्षणिक संस्थानों में ई-संसाधनों की बहुत उपयोगिता है।

ई-संसाधनों का उद्देश्य सभी शिक्षा संस्थानों में शैक्षिक समुदाय को विद्वतापूर्ण और समकक्ष समीक्षित इलैक्ट्रानिक संसाधनों सहज, विश्वसनीय सर्वव्यापक पहुंच उन सेवाओं और उपकरण, प्रक्रियाओं और प्रथाओं को ध्यान में रखकर प्रदान करना जो इसके प्रभावी उपयोग की सहायता कर सके और इस जानकारी के महत्त्व में वृद्धि कर सके।

शिक्षा संस्थानों में मूल्य वर्धित सेवाओं के साथ आईसीटी बुनियादी सुविधाओं ... और मजबूत करना। प्रयोक्ताओं को कहीं भी, कभी भी इलैक्ट्रॉनिक स्वरूप ... तक सुरक्षित और सुविधाजनक पहुंच के लिए उपकरण प्रबंधन सक्रिय करना ... और प्रक्रियाओं का विकास करना। ई-संसाधनों के प्रभावी प्रदाय और उपयोग ... संसाधन चयन गाईड और ऑनलाइन ट्यूटोरियल का विकास। शैक्षिक संस्थाओं ... पुस्तकालयों में पूर्व स्वचालन करना।

निम्न में विशेषज्ञता विकसित करना -

1. डिजिटल सामग्री निर्माण

2. डिजिटलीकरण की प्रक्रिया

वर्ल्ड वाइड वेब (World Wide Web) : WWW का अर्थ वर्ल्ड वाइड वेब है। विशेष रूप से स्वरूपित दस्तावेजों का समर्थन करने वाले इंटरनेट सर्वर की व्यवस्था वर्ल्ड वाइड वेब है। वर्ल्ड वाइड वेब या विश्व व्यापी वेब आपस में परस्पर जुड़े हाईपरटेक्स्ट दस्तावेजों को इंटरनेट द्वारा प्राप्त करने की प्रणाली है। एक वेब ब्राउजर की सहायता से हम उन वेब पन्नों को देख सकते हैं जिनमें मूलपाठ, छवि (image), वीडियो, एवं अन्य मल्टीमीडिया होते हैं तथा हाईपरलिंक की सहायता से उन पन्नों के बीच में आवागमन कर सकते हैं। विश्व व्यापी वेब को टिम बर्नर्स ली द्वारा 1989 में यूरोपीय नाभिकीय अनुसंधान संगठन जो कि जेनेवा, स्वीट्ज़रलैंड में है, में काम करते वक्त बनाया गया था और 1992 में जारी किया गया था। उसके बाद से बनरर्स-लीं ने वेब के स्तरों के विकास (जैसे कि मार्कअप भाषाएं जिनमें कि वेब पन्ने लिखे जाते हैं) में एक सक्रिय भूमिका अदा की है। आम भाषा में कहे तो World Wide Web आपको किसी भी वेबसाईट से जुड़ने में मदद करता है। यह एक प्रकार से कम्पयूटर का ही एक एप्लीकेशन मात्र है। World Wide Web पूरी पृथ्वी पर फैले वेब के लिए है।

सामाजिक नेटवर्किंग (Social Networking) : सामाजिक नेटवर्किंग एक ऑनलाइन सेवा, प्लेटफॉर्म या साइट होती है जो लोगों के बीच सामाजिक नेटवर्किंग अथवा सामाजिक संबंधों को बनाने अथवा उनको परिलक्षित करने पर केन्द्रित होती है, उदाहरण के लिये ऐसे व्यक्ति जिनकी रुचियां अथवा गतिविधियां समान होती हैं। एक सामाजिक नेटवर्किंग सेवा में अनिवार्य रूप से प्रत्येक प्रयोगकर्ता का निरूपण (अक्सर एक प्रोफाइल), उसके सामाजिक संपर्क तथा कई अतिरिक्त सेवायें शामिल रहती हैं। अधिकांश सामाजिक नेटवर्किंग सेवायें वेब आधारित होती हैं और प्रयोगकर्ताओं को इंटरनेट का प्रयोग करते हुए एक-दूसरे से संपर्क करने का साधन प्रदान करती है। उदाहरण के रूप में ई-मेल तथा इंसटैंट मैसेजिंग। हालांकि ऑन लाइन समुदाय सेवाओं

... कभी-कभी सामाजिक नेटवर्किंग सेवा माना जाता है। व्यापक अर्थ में, सामाजिक नेटवर्किंग सेवा व्यक्ति केन्द्रित होती हैं। सामाजिक नेटवर्किंग साइटें किसी प्रयोगकर्ता ... अपने व्यक्तिगत नेटवर्किंग में विचारों, गतिविधियों, घटनाओं और उनके व्यक्तिगत ... को बांटने की सुविधा देती हैं।

इंटरनेट ने आज विश्व के लोगों को एक-दूसरे से जोड़ दिया है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स के जरिए आज कोई भी व्यक्ति एक-दूसरे से कहीं से भी संपर्क साध सकता है। इनका प्रयोग करने वाले युवाओं की संख्या निरंतर बढ़ रही है।

सोशल मीडिया का जन्म 1995 में माना जाता है। उस वक्त क्लासमेट्स डॉट कॉम नाम से एक साइट शुरू की गयी थी जिसके जरिये स्कूलों, कॉलेजों, कार्यक्षेत्रों और मिलीटरी के लोग एक दूसरे से जुड़ सकते थे। यह साइट अब भी सक्रिय है। इसके बाद वर्ष 1996 में बोल्ट डॉट कॉम नाम की सोशल साइट बनायी गयी। वर्ष 1997 में एशियन एवेन्यू नाम की एक साइट शुरु की गयी थी एशियाई-अमरीकी कम्यूनिटी के लिए। सोशल मीडिया के क्षेत्र में सबसे बड़ा बदलाव आया फेसबुक और ट्वीटर के आने से फेसबुक का जन्म 4 फरवरी 2004 में हुआ। मार्क जकरबर्ग ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए फेसबुक को डेवल्प किया था। धीरे-धीरे इसका विस्तार दूसरे कॉलेजों और विश्वविद्यालयों तक हुआ और वर्ष 2005 में अमरीका की सरहद लाँघ कर यह विश्व के दूसरे देशों में पहुंच गया। ऐसी ही कहानियां दूसरे सोशल नेटवर्किंग साईट्स की भी है।

भारत में सोशल नेटवर्किंग की भूमिका : भारत में सोशल नेटवर्किंग की भूमिका सबसे ज्यादा अन्ना हजारे द्वारा चलाए गए भ्रष्टाचार के विरोध अनशन आंदोलन में दिखी। जिसमें लोगों ने रैलियों में जो भाग लिया साथ साथ सोशल साइट्स के माध्यम से भी बढ़ बढ़ कर अपनी प्रतिक्रिया दिखाई। यह आंदोलन 2011 की सबसे बड़ी घटना कही जाती है। जिस पर आम लोगों ने ही नहीं बल्कि बड़ी-बड़ी हस्तियों ने भी भाग लिया।

सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हजारे और टीम द्वारा चलाए गए भ्रष्टाचार के विरुद्ध आंदोलन में सबसे ज्यादा समर्थन देश के युवाओं से मिला। अपने स्कूल, कॉलेजों और ऑफिसों को छोड़कर युवा देश के अलग-अलग हिस्सों में भ्रष्टाचार के विरोध में प्रदर्शन कर रहे थे। इनके प्रदर्शन का तरीका नये नारे, रोचक तस्वीरों और संदेशों वाले बैनर टी-शर्ट और टोपी पर आंदोलन के समर्थन में की गई थी कलाकारी साथ ही साथ ढफली बजाकर गाने गाते हुए विरोध जताया। इन सबने भ्रष्टाचार के विरुद्ध किए जा रहे आंदोलन में जान डाल दी और साथ ही साथ सोशल साइट्स का भी भरपूर इस्तेमाल किया और प्रतिक्रिया जताई। विरोध में जहां जमकर नारे लगे वहीं सोशल नेटवर्किंग की मदद से लाइव तस्वीरें और वीडियो अपलोड की गई।

संक्षेप में सोशल नेटवर्किंग - नए समय का संवाद का माध्यम बन गया है।

अभ्यास के प्रश्न
(Study Questions)

1. शिक्षण और सीखने की सामग्री से आप का क्या भाव है? विस्तार से लिखें।
2. पाठ्य पुस्तकों और संदर्भ पुस्तकों के बारे में विस्तार से लिखें।
3. निम्नलिखित का शिक्षण में क्या योगदान है? किन्हीं दो पर संक्षेप में लिखें।
   (i) वृत्तचित्र
   (ii) समाचार पत्र
   (iii) नक्शे
   (iv) समुदाय
   (v) एटलस
4. ई-संसाधनों (वर्ल्ड वाइड वेब और सामाजिक नेटवर्किंग) के बारे में विस्तृत निबंध लिखें।

ॐ ॐ ॐ

CHAPTER 3

सामाजिक अध्ययन के शिक्षण के कौशल
(Skill of Teaching Social Studies)

सामाजिक अध्ययन के शिक्षण के कौशल : स्पष्ट करने के कौशल, उदाहरणों सहित चित्रण के कौशल, सुदृढ़ीकरण के कौशल, पूछताछ के कौशल और प्रोत्साहन विभिन्नता के कौशल
(Skill of Teaching Social Studies : Skill of Explaining, Skill of illustration with Examples, Skill of Reinforcement, Skill of Questioning and Skill of Stimulus Variation)

सामाजिक अध्ययन के शिक्षण के कौशल
(Skill of Teaching Social Studies)

विभिन्न शिक्षा शास्त्रियों ने सूक्ष्म शिक्षण पर शोध कार्य किये हैं और उन्होंने शिक्षण कौशलों की अलग-अलग संख्या बताई है पर कुछ शिक्षण कौशल ऐसे हैं जिनका प्रयोग करना प्रत्येक शिक्षक के लिए श्रेयस्कर रहता है। ये कौशल निम्न हैं :

1. कथन कौशल (Skill of Narration)
2. प्रश्न कौशल (Skill of Questioning)
3. व्याख्या कौशल (Skill of Explaining)
4. उदाहरणों से स्पष्ट करने का कौशल (Skill of illustrating with Examples)
5. उद्दीपन परिवर्तन कौशल (Skill of stimulus variation)
6. प्रस्तावना कौशल (Skill of introduction)

उपरोक्त सभी कौशल सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण और लाभप्रद है। इसलिये सामाजिक अध्ययन का शिक्षण करने वाले शिक्षक को उपरोक्त पांचों कौशलों का बारीकी से ज्ञान होना चाहिए। इनका पूरी तरह से ज्ञान होने पर ही वह इनका शिक्षण प्रक्रिया में प्रभावपूर्ण, सशक्त ढंग और सार्थकता से प्रयोग कर सकता है।

उपरोक्त सभी कौशलों का प्रयोग परम्परागत शिक्षण में भी होता रहा है और आज भी हो रहा है और भविष्य में भी होता रहेगा क्योंकि ये पांचों कौशल शिक्षण प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए आधारभूत कौशल हैं। वैसे भी सामाजिक अध्ययन शिक्षण का एक कुशल और प्रभावशाली शिक्षक बनने और मानचित्र का अध्ययन करने की कला में

निपुण होना बहुत आवश्यक होता है। परम्परागत शिक्षण में हम इन गुणों को कला के नाम देते हैं और आज सूक्ष्म शिक्षण की दृष्टि से इनको कौशल का नाम दिया। इसका कारण है कि सूक्ष्म शिक्षण के अन्तर्गत कौशलों का अभ्यास गहनता एवं बारीकी से कराया जाता है और फिर कक्षा में से तकनीक रूप में लागू किया जाता है। ये सारे कौशल परम्परागत शिक्षण में भी बाखूबी प्रयोग में आते रहे हैं और आज भी ये कौशल शिक्षण प्रक्रिया में पूर्ण रूप से सक्रिय हैं अर्थात् इन कौशलों का प्रयोग अधिकांश शिक्षक अपने शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए करते हैं।

इसलिए इन कौशलों का सूक्ष्म शिक्षण के अन्तर्गत अभ्यास कराने के बारे में यह कहना सही ही होगा कि पुरानी शराब को नई बोतलों में डाला गया है क्योंकि इसमें नवीनता (नयापन) इतना ही है कि इन कौशलों का अभ्यास शिक्षण हेतु वैज्ञानिक ढंग से कराया जाता है।

इन सभी कौशलों का परम्परागत शिक्षण में महत्त्व स्पष्ट करते हुए हम एक-एक कौशल की सूक्ष्म शिक्षण की दृष्टि से अभ्यास की विस्तार की चर्चा करेंगे।

थ्रिंग के अनुसार, "पढ़ाने का अर्थ है कुशलतापूर्वक प्रश्न पूछना जिससे मन देखने, प्रबन्ध करने तथा कार्य करने के लिये विवश हो उठे।" ("Teaching means skillful questioning to force, the mind to see to arrange to act.) —**Thring**

व्याख्या कौशल
(Skill of Explaining)

शिक्षण प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने और पाठ का विकास करने के लिये विषय-वस्तु की व्याख्या करना अत्यन्त आवश्यक होता है। इसलिये शिक्षक को व्याख्या कौशल में निपुणता होनी चाहिये। परम्परागत शिक्षण के अन्तर्गत विषय-वस्तु के स्पष्टीकरण हेतु इसे मौखिक साधन (Oral device) भी कहा जाता है। सूक्ष्म शिक्षण में इसे अलग से शिक्षण कौशल की संज्ञा दी गई है और इस कौशल में प्रवीणता हेतु प्रशिक्षण द्वारा अभ्यास करने का अवसर प्रदान किया जाता है। व्याख्या कौशल का शिक्षण प्रक्रिया में उतना ही महत्व है जितना कि प्रश्न कौशल का जिसकी चर्चा हम विस्तार से कर चुके हैं।

शिक्षण प्रक्रिया को सशक्त, प्रभावपूर्ण, सार्थक एवं सफल बनाने के लिये प्रश्न करने और व्याख्या के बीच सन्तुलन बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। यहां सन्तुलन से तात्पर्य यह है कि न तो अधिक प्रश्न पूछे जायें और न ही अधिक व्याख्या की जाये। गणित, विज्ञान और व्याकरण से सम्बन्धित पाठों में शिक्षक को अधिक व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं पड़ती जितनी कि साहित्य, सामाजिक अध्ययन से सम्बन्धित विषय इतिहास और अन्य वर्णनात्मक पाठों के पढ़ाने के लिये पड़ती है। इन विषयों से

सम्बन्धित पाठों में प्रश्न तो कम करने चाहिये और व्याख्या अधिक-से-अधिक करनी चाहिये ताकि छात्र-छात्राएं विषय-वस्तु को यथा आवश्यक ग्रहण कर सकें और सरलता से समझ सकें।

व्याख्या का अर्थ (Meaning of Explanation) : व्याख्या का अर्थ पाठ की गुत्थी को सुलझाने और उसके भावों को अलग-अलग करके सरल रूप से छात्र-छात्राओं के समझ रखने से हैं, जिससे उनको समझने में कोई कठिनाई न हो और अधिक-से-अधिक ज्ञानार्जन हो। दूसरे हम यह भी कह सकते हैं कि व्याख्या से अभिप्राय अर्थ स्पष्ट करने अथवा किसी पूर्वज्ञान तथा अनुभव की ओर संकेत करके नये ज्ञान अथवा वस्तु या सूचना को समझाने योग्य बना देने से है। स्पष्ट है कि कठिन शब्द, वाक्य और प्रसंग को समझाना व्याख्या कहलाता है। व्याख्या द्वारा छात्र-छात्राओं को पाठ के भाव ग्रहण करने का अवसर दिया जाता है। व्याख्या करने की क्षमता ऐसे शिक्षक में होगी जिसका भाषा पर अधिकार हो, ज्ञान और अनुभव अधिक हो। पाठ्य विषय का भी सम्पूर्ण ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। इस मौखिक अध्ययन (Oral device) से अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करने के लिये शिक्षक को निम्न सावधानियों को बरतना बहुत आवश्यक है –

1. व्याख्या सुगम और स्पष्ट भाषा में होनी चाहिये। व्याख्या की स्पष्टता विचारों अथवा भावों को क्रमबद्ध करने की क्रिया पर निर्भर रहती है। यदि शिक्षक पाठ को क्रमबद्ध कर ले तो वह उसे स्पष्ट रूप से कक्षा के सम्मुख प्रस्तुत कर सकता है। यह सम्भव हो सकता है कि व्याख्या शिक्षक के लिये सरल हो और छात्र-छात्राओं के लिये कठिन हो। इसलिये व्याख्या विद्यार्थियों के मानसिक स्तर, अवस्था (आयु) और चिन्तन एवं मनन शक्ति को ध्यान में रखकर करनी चाहिये।

2. व्याख्या अधिक विस्तृत नहीं होनी चाहिये। बहुत विस्तृत व्याख्या करने से समय अधिक लगता है और विद्यार्थी सुनते-सुनते उबने लगते हैं और पाठ में नीरसता आ जाती है।

3. व्याख्या करने से पूर्व शिक्षक को अपने सब भ्रम दूर कर लेने चाहिये जिससे व्याख्या करते समय किसी प्रकार कोई बाधा न आये।

4. व्याख्या सरल तथा शुद्ध भाषा में होनी चाहिये। यदि व्याख्या की भाषा कठिन एवं जटिल होगी तो विद्यार्थी उसे नहीं समझ सकेंगें। इस प्रकार व्याख्या निरर्थक और सारहीन हो जायेगी।

5. व्याख्या करने से पहले विद्यार्थियों को उन वस्तुओं के अवलोकन एवं प्रयोग का अवसर मिलना चाहिये, जिसकी व्याख्या की जानी है अर्थात् व्याख्या छात्रों के अनुभवों की परिधि से बाहर नहीं होनी चाहिये।

6. व्याख्या में रुचिकर, सजीव एवं प्रयोजन पूर्ण बनाने के लिये शिक्षक को उदाहरणों और दृष्टांतों का खुलकर प्रयोग करना चाहिये।

7. व्याख्या के बीच-बीच में प्रश्न करने के अवसर देने चाहिये और व्याख्या करने के उपरान्त शिक्षक को प्रश्न अवश्य पूछने चाहिये जिससे यह पता चल सके कि छात्रों ने व्याख्या समझ ली है अथवा नहीं। जो बात समझ में न आये उसे फिर से समझा दिया जाये।

8. व्याख्या आवश्यकता पड़ने पर ही करनी चाहिये, छात्र व्याख्या के लिये उत्सुक एवं जिज्ञासाशील हों। बिना आवश्यकता के व्याख्या करना शिक्षक की बहुत बड़ी भूल मानी जाती है।

9. छोटी (निम्न) कक्षाओं में व्याख्या कम और अत्यन्त सरल हो और उच्च कक्षाओं में व्याख्या का स्तर उच्च हो।

10. व्याख्या सदैव उपदेश रहित होनी चाहिये। कोरे उपदेशों की बात करना छात्रों को अच्छा नहीं लगता। व्याख्या का प्रयोग साध्य रूप में न होकर साधन रूप में होना चाहिये। अगर व्याख्या साध्य रूप में होगी तो पाठ का पढ़ाना निरर्थक हो जायेगा।

व्याख्या करने की क्षमता एवं योग्यता सभी शिक्षकों में समान रूप से नहीं होती। यह कहना सत्य होगा कि प्रत्येक शिक्षक एक अच्छी व्याख्या करने वाला नहीं होता। परन्तु आज के तकनीकी युग में सूक्ष्म शिक्षण के द्वारा व्याख्या को शिक्षण कौशल के रूप में मानकर अभ्यास के माध्यम से भावी शिक्षकों की कुशल व्याख्याकर्ता बनाना सम्भव है।

सूक्ष्म शिक्षण की दृष्टि से व्याख्या कौशल
(Skill of Explaining from Micro-Teaching point of View)

व्याख्या कौशल शिक्षण प्रक्रिया को सशक्त, सार्थक और सफल बनाने वाले महत्त्वपूर्ण कौशलों में से एक है। पाठ्य-वस्तु को सरल बनाने के लिये यह सर्वोत्तम मौखिक कौशल है अर्थात् मौखिक साधन (Oral device) है। कठिन शब्दों, वाक्यों और प्रसंगों की कुशलतपूर्वक व्याख्या करने का अनुभव प्रत्येक शिक्षक में होना चाहिए। क्योंकि विद्यार्थी कम अनुभवी अपरिपक्व बुद्धि के होते हैं। शिक्षक विभिन्न कठिन विषयों का ज्ञान छात्र-छात्राओं को प्रदान करने के लिये वह अपने विस्तृत ज्ञान और अनुभवं का प्रयोग करता है। शिक्षक विषय को सरल बनाने और छात्र-छात्राओं के ग्रहण योग्य बनाने के लिये व्याख्या कौशल का प्रयोग करता है। जब विषय को पढ़ाते समय भावों, विचारों, सिद्धान्तों आदि की कठिनाई आ जाती है तो छात्र-छात्राओं को समझाने हेतु शिक्षक को व्याख्या कौशल का सहारा लेना पड़ता है।

शिक्षक को जब विषय-वस्तु के किसी तथ्य सिद्धान्त और संप्रत्यय के 'क्या', 'क्यों', 'कैसे', को समझाना होता है तब उसे समझाने हेतु वह जो व्यवहार करता है वह व्यवहार, व्याख्या कौशल से सम्बन्धित होता है। व्याख्या के द्वारा शिक्षक विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान से नये ज्ञान को इस प्रकर जोड़ता है कि नया ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। व्याख्या का प्रयोग प्राय: किसी घटना क्रिया का, परिणाम, स्थिति का कार्य विधि को स्पष्ट करने के लिये किया जाता है। इसके लिये शिक्षक कई प्रविधियों का सहारा लेता है। जैसे भाषान्तर करना, परिभाषा देना, अभिनय या क्रियात्मक शब्दों (action words) का प्रयोग करना, सरल भाषा में विश्लेषण, पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करना और अनुदेशात्मक सामग्री का उचित प्रयोग आदि।

'व्याख्या' अनिवार्यत: एक शाब्दिक एवं मौखिक कौशल है जिसके दो मुख्य तत्त्व हैं जो निम्न हैं -

1. उचित कथनों का चयन।
2. चुने हुए कथनों का अन्तर्सम्बन्ध।

सामान्य रूप से जब कथनों का गहनता से अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि कथन निम्न प्रकार के होते हैं -

1. वर्णनात्मक कथन
2. अर्थ निरुपण कथन
3. तर्क निरुपण कथन

'क्या', 'क्यों', 'कैसे' को स्पष्ट करने के लिये निरुपण की आवश्यकता पड़ती है। व्याख्या को प्रभावपूर्ण, सशक्त और सार्थक बनाने के लिये शिक्षक को वांछनीय व्यवहार पर बल देना चाहिये और अवांछनीय व्यवहार की उपेक्षा करनी चाहिए।

व्याख्या कौशल के घटना
(Components of Skill of Explaining)

किसी भी काठिन्य की व्याख्या करने हेतु अपनाई जाने वाली शिक्षण प्रक्रिया में वांछित एवं अवांछित दोनों प्रकार के व्यवहारों का समावेश होता है। जहां वांछित व्यवहारों की आवृत्ति होती है वहीं अवांछित व्यवहार की उपेक्षा की जाती है क्योंकि यह व्यवहार अनुचित होता है और शिक्षक को उससे बचने का प्रयास करना चाहिये।

1. वांछित व्यवहार अथवा वांछनीय व्यवहार-

(1) उपयुक्त प्रारम्भिक कथनों का प्रयोग।

(2) निष्कर्षात्मक कथन स्पष्ट करना।

(3) भाषा में प्रवाह का होना।

(4) उपयुक्त शब्दों का प्रयोग।

(5) कथनों में तारतम्य का होना।

(6) कथनों को आपस में जोड़ने वाले शब्दों अथवा मुहावरों का प्रयोग।

(7) प्रश्न पूछना।

2. अवांछनीय व्यवहार-

(1) असम्बन्धित कथन।

(2) कथनों में तारतम्य का अभाव।

(3) प्रवाहशीलता का अभाव।

(4) अस्पष्ट शब्द और मुहावरे।

निरीक्षण अनुसूची युक्त रेटिंग का प्रारूप

टैलियां	व्यवहार घटक	रेटिंग स्केल
हां/नहीं	1. उपयुक्त प्रारम्भिक कथनों का प्रयोग किया गया	0 1 2 3 4 5 6
हां/नहीं	2. निष्कर्षात्मक कथन स्पष्ट किये गये	0 1 2 3 4 5 6
हां/नहीं	3. भाषा में प्रवाह	0 1 2 3 4 5 6
	4. उपयुक्त शब्दों का प्रयोग	0 1 2 3 4 5 6
	5. कथनों में निरन्तरता रखी गई	0 1 2 3 4 5 6
	6. कथनों में तारतम्य होना	0 1 2 3 4 5 6
	7. बीच-बीच में प्रश्न पूछना	0 1 2 3 4 5 6

व्याख्या कौशल की सूक्ष्म आदर्श पाठ योजना

कक्षा - आठवीं **अवधि** - 8 मिनट

विषय - भूगोल **उपविषय** - वन (जंगल)

प्रत्येक देश में प्राकृतिक सम्पत्ति कई रूपों में मिलती है जिसमें 'वन' भी एक है। भारत में विभिन्न प्रकार की जलवायु होने के कारण विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां मिलती है। भारत में कुल क्षेत्रफल का लगभग 21 प्रतिशत भाग जंगलों में ढका हुआ है।

भारत में वन पांच प्रकार के हैं - मैदानी 'वन', चौड़े पत्तों के 'वन', सदा बहार 'वन', पर्वतीय 'वन' और तटीय 'वन'।

मैदानी वनों में शीशम, बबूल, कीकर, कैर, जाल और खजूर के पेड़ होते हैं।

चौड़े पत्तों के 'वन' में साल सागवान के वृक्ष मिलते हैं। ये दक्षिण पंजाब तथा उत्तरप्रदेश में मिलते हैं।

सदाबहार 'वन' में बांस, पान और रबड़ के वृक्ष होते हैं। ये पूर्वी हिमालय और पश्चिमी घाट में मिलते हैं।

पर्वतीय 'वन' में देवदार, चीड़, ऑक, पाईन और फर के वृक्ष होते हैं।

तटीय 'वन' में नारियल तथा ताड़ी के वृक्ष होते हैं। नदियों के डेल्टों तथा समुद्री तट पर पाये जाते हैं।

शिक्षक कथन क्रियाएं	छात्र कथन एवं क्रियाएं
1. शिक्षक-प्राकृतिक सम्पत्ति से क्या तात्पर्य है?	छात्र-जो सम्पत्ति प्रकृति से प्राप्त होती है उसे प्राकृतिक सम्पत्ति कहते हैं।
2. शिक्षक-प्राकृतिक सम्पत्ति का कोई उदाहरण दो।	छात्र-जैसे खनिज पदार्थ वन आदि।
3. शिक्षक-भारत में वन कितने प्रकार के हैं?	एक छात्र-मैदानी वन। दूसरा छात्र- चौड़े पत्तों के वन। तीसरा छात्र-सदाबहार वन। चौथा छात्र-पर्वती वन और पांचवा छात्र-तटीय वन।
4. शिक्षक-मैदानी वन कैसे होते हैं?	छात्र-इनमें शीशम, बबूल, कीकर और खजूर के पेड़ पाये जाते हैं।
5. शिक्षक-चौड़े पत्तों के वन कहां पाये हैं?	छात्र - आसाम, कांगड़ा, विंध्याचल और सतपुड़ा के पर्वतों पर मिलते हैं।
6. शिक्षक-सदाबहार वन से क्या तात्पर्य है?	छात्र-जो वन हर में देवदार, चीड़ के वृक्ष पाये जाते हैं।
7. शिक्षक-पर्वतीय वन में कैसे वृक्ष पाये जाते हैं?	छात्र-पर्वतीय वन में देवदार, चीड़ के वृक्ष पाये जाते हैं।
8. शिक्षक-नारियल और ताड़ी के वृक्ष किस प्रकार के वन में पाये जाते हैं?	छात्र-ये सभी वृक्ष तटीय वन में पाये जाते हैं।

2. उदाहरण कौशल

(Skill of Illustrating with Examples)

सम्पूर्ण शिक्षण की पद्धति की सफलता के लिए केवल प्रश्न कौशल और व्याख्या कौशल ही पर्याप्त नहीं है बल्कि इन शिक्षण कौशलों के साथ-साथ उदाहरण कौशल का अभ्यास भी अत्यन्त आवश्यक है।

यह कहना उचित है कि प्रश्न कौशल और व्याख्या कौशल शिक्षण के महत्वपूर्ण साधन हैं। प्रश्नों के प्रयोग व्याख्या से पाठ का शिक्षण सरल हो जाता है। परन्तु कभी कभी पाठ के महत्त्वपूर्ण तथ्य, नवीन तथ्य और कठिन भाव एवं विचार न तो प्रश्नों द्वारा स्पष्ट होते हैं न ही शिक्षक के कथनों की व्याख्या द्वारा ही। क्योंकि शिक्षक जो कुछ कहता है उसको मानने का छात्र-छात्राओं के पास कोई प्रमाण नहीं होता। यदि उसी बात की पुष्टि स्वरूप कोई ऐसी बात कही जाये तो उसी बात का समर्थन करती है अथवा उस स्पष्ट करने के लिये कही जाती है जो विद्यार्थी शीघ्र ही समझ लेते हैं। इस बात को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि यदि किसी बात को समझने के लिये छात्र-छात्राओं को उचित उदाहरण दिये जायें तो वे उस बात को सरलता एवं शीघ्रता से समझ लेते हैं।

शिक्षण के मौखिक उपकरणों में उदाहरण का विशेष स्थान है। उदाहरण का अर्थ है प्रकाश डालना और शिक्षण में उदाहरण से तात्पर्य विद्यार्थियों को ज्ञान का स्पष्टीकरण कराने तथा भावों एवं विचारों को आत्मसात् कराने से है। कुछ विद्वानों के अनुसार उदाहरण शिक्षण की आत्मा है। **पिन्सेट** (Pinset) महोदय के अनुसार, " अच्छे उदाहरण कथन को सजीव तथा सरल बना देते हैं।" (Good illustration will make intellectually dead presentations come to life.") ये रुचि को जागृत करते हैं तथा विषय-वस्तु को स्पष्ट करके मनोरंजक और समझने योग्य बना देते हैं। क्योंकि ये इन्द्रियों को सम्बोधित करते हैं और इन्द्रियां ज्ञान की द्वार है। इसलिये उदाहरण चिन्तन को सही मार्ग के लिये प्रेरित करते हैं। अकसर ऐसा देखा गया है कि कई बार छात्रों को शिक्षक के कथन को समझने में कठिनाई होती है क्योंकि जो शिक्षक के लिये सरल है वह छात्रों के लिए कठिन हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में उदाहरण देकर अज्ञात का ज्ञात से सम्बन्ध जोड़ अज्ञात को प्रकाशित किया जाता है। इनके प्रयोग से पाठ के प्रत्येक तथ्य को स्पष्ट किया जाता है और विद्यार्थी उन्हें समझ कर ग्रहण कर लेते हैं। मानसिक विकास की कमी के कारण जो विद्यार्थी सूक्ष्म बातों को समझने में असमर्थ होते हैं उन्हें सूक्ष्म बातों का ज्ञान कराने के लिये उदाहरण अथवा मूर्त पदार्थों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। इनकी सहायता से सूक्ष्म बातें समझ में आ जाती है। शिक्षण प्रक्रिया में जितनी अच्छी तरह से उदाहरणों का प्रयोग होगा उतनी ही सफलतापूर्वक शिक्षण कार्य सम्भव होगा।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उदाहरण छात्र-छात्राओं की कल्पना एवं विचार शक्ति को उभार कर उनके मानसिक विकास में योगदान देते हैं। निम्न श्रेणी के विद्यार्थियों के लिये उदाहरणों का प्रयोग बहुत लाभप्रद होता है। ये पाठ में रोचकता उत्पन्न करके विद्यार्थियों का ध्यान पाठ की ओर आकर्षित करते हैं। इनके प्रयोग से विद्यार्थियों की अवलोकन (निरीक्षण) शक्ति और स्मरण शक्ति का भी विकास होता है। विवरण, वर्णन व्याख्या और निर्देशन में उदाहरणों का प्रयोग सहज ढंग से किया जा सकता है।

उदाहरणों के लक्ष्य (Objectives of Examples) : जिन लक्ष्यों की पूर्ति हेतु उदाहरणों का प्रयोग किया जाता है, वे निम्न हैं :-

1. पाठ के विकास हेतु।
2. पाठ में आई हुई कठिनाई को दूर करने हेतु।
3. पाठ में निहित ज्ञान को छात्रों तक पहुंचाने के लिये।
4. छात्रों के समक्ष किसी घटना का चित्र प्रस्तुत करने के लिये।

उदाहरणों के प्रकार (Types of Examples) : ये दो प्रकार के हैं जो इस प्रकार हैं :

1. मौखिक उदाहरण
2. प्रदर्शित किये जाने वाले उदाहरण

मौखिक उदाहरण वे हैं जो मुंह से कहे जाएं और प्रदर्शित करने वाले उदाहरण वह हैं जिन्हें विद्यार्थियों को दिखाया जाये, जैसे चित्र, नमूना आदि अनुदेशात्मक सामग्री के अन्तर्गत आते हैं। मौखिक उदाहरण कई प्रकार के हो सकते हैं लेकिन इनमें वे निम्न प्रमुख हैं -

1. लघु कथा : कई बार छात्र पाठ की उपरी सतह की जानकारी तो कर लेते हैं लेकिन वे उसकी गहनता को नहीं समझ पाते। ऐसे स्थलों को स्पष्ट करने के लिये अनुभवी और कुशल शिक्षक लघु कथाओं का प्रयोग करते आये हैं। उदाहरण के लिये 'सत्य' शब्द को छात्र सरलता से समझ लेते हैं लेकिन यदि उन्हें यह पता न हो कि सत्य बोलने के क्या परिणाम होते हैं, तो छात्र उसे आचरण में नहीं ढाल पाते। इस हेतु कुशल शिक्षक छात्रों को सत्यवादी लोगों (महान पुरुषों) की छोटी-छोटी कहानियां सुनाकर उसे पूर्ण रूप से समझा देते हैं। इस प्रकार बहुत-सी अन्य बातों को भी स्पष्ट किया जा सकता है।

2. उपमा : इसका प्रयोग किसी अज्ञात वस्तु की समानता ज्ञात वस्तु से करने के लिये किया जाता है। उपमाओं का उदाहरण देने में शिक्षकों को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये कि उपमाएं ऐसी दी जाएं जिन्हें छात्र-छात्राएं भली-भान्ति समझते हों।

3. तुलना : जब किसी व्यक्ति या आयु के गुणों की और घटनाओं या वर्णनों की समानता और असमानता किसी अन्य व्यक्ति, वस्तु एवं घटना से की जाती है तो उसे हम तुलना कहते हैं।

उदाहरण कौशल और शिक्षक का दायित्व

वैसे तो शिक्षण कौशलों के प्रयोग करने हेतु शिक्षक का सजग और सचेत होना बहुत आवश्यक है। परन्तु उदाहरण कौशल के उचित प्रयोग के लिये शिक्षक को विशेष रूप से अपना दायित्व बड़ी सूझ-बूझ के साथ निभाना चाहिये। इनका प्रयोग बड़ी सावधानी एवं चतुराई से करना चाहिये क्योंकि उदाहरणों का मूल्य उनके प्रस्तुत करने की कुशलता पर निर्भर करता है। इसलिये कुशल एवं अनुभवी शिक्षक को उदाहरणों की सहायता से पाठ शिक्षण कुशल बनाने हेतु निम्न बातों को अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिये।

1. मौखिक और शाब्दिक उदाहरण निम्न शिक्षण सूत्रों पर आधारित होने चाहियें।

(1) सरल से कठिन की ओर।

(2) ज्ञात से अज्ञात की ओर।

(3) स्थूल से सूक्ष्म की ओर।

यदि शिक्षक उदाहरण देते समय उपरोक्त सूत्रों की उपेक्षा करता है तो वह उदाहरणों से अपने शिक्षण को सफल नहीं बना सकते। उदाहरणों के अंतर्गत जनश्रुतियों, लोकोक्तियों, उपमाओं, रूपकों और तुलनाओं का सहारा अवश्य ही लेना चाहिये।

2. उचित व्यवहार पर ही उदाहरण अथवा दृष्टान्त प्रस्तुत करना चाहिये। बिना किसी कारण के उदाहरण देना अनुचित होता है। इससे उदाहरण सार्थक हीन हो जाता है और छात्र पाठ में रुचि नहीं लेते।

3. जो भी उदाहरण प्रस्तुत किये जायें वे छात्र-छात्राओं के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित होना चाहिये जिससे वे आसानी से विषय-वस्तु को समझ सके। इनके साथ ही साथ उदाहरण देते समय छात्रों की योग्यता, स्तर तथा आवश्यकता को ध्यान में रखना चाहिये। अनावश्यक और अप्रासंगिक उदाहरणों को देने से बचना चाहिये।

4. उदाहरणों की भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिये ताकि बालक उनके आशय को भली प्रकार समझ लें।

5. निम्न कक्षाओं में घरेलू वातावरण से सम्बन्धित उदाहरण देने चाहियें। क्योंकि छोटे बच्चों को घरेलू वातावरण और उनसे सम्बन्धित वस्तुओं का ज्ञान होता है। इसलिये ऐसे उदाहरणों को समझाने में किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं होती।

6. यदि किसी बात को एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट न किया जा सके तो एक से अधिक उदाहरणों का प्रयोग किया जा सकता है।

7. उदाहरण रुचिकर होने चाहिएं जो पाठ की नीरसता और शुष्कता को दूर कर सकें और विषय-वस्तु को सजीव बना सकें।

8. उदाहरणों में विविधता होनी चाहिये। यदि शिक्षक एक ही प्रकार के उदाहरणों का प्रयोग करेगा तो छात्र पाठ में रुचि नहीं लेंगे।

9. उच्च कक्षाओं में उदाहरण देने का प्रयास कम करना चाहिये और अगर उदाहरण देना पड़े तो तभी देना चाहिये जब आप सुनिश्चित हो जायें कि छात्रों को समझने में कठिनाई हो रही है।

10. उदाहरणों से व्यक्तिगत आक्षेप और व्यंग्य नहीं होना चाहिये और इनके अतिरिक्त झूठे निरर्थक और गलत उदाहरणों की उपेक्षा करनी चाहिये।

11. उदाहरण, दृष्टान्त अथवा कोई अन्य मौखिक सामग्री हमेशा साधन के रूप में प्रयोग में लानी चाहिये साध्य के रूप में नहीं। अगर इसको साध्य मान लिया जायेगा तो पाठ पढ़ाने का प्रयोजन ही समाप्त हो जायेगा।

12. प्रत्येक शिक्षक के लिये पाठ योजना बनाते समय उदाहरणों का चयन करना उचित रहता है। शिक्षक को पाठ संकेत करते समय उचित उदाहरणों को चुनकर पाठ संकेतों में लिख लेना चाहिये। इससे उदाहरण से सम्बन्धित भूल नहीं होगी।

सूक्ष्म शिक्षण की दृष्टि से उदाहरण कौशल

(Illustration with Examples from Micro-Teaching Point of View)

उदाहरण कौशल का सम्बन्ध शिक्षण प्रक्रिया से और इसका प्रयोग, विचारों, अवधारणाओं और सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिये किया जाता है। उदाहरण देने के लिए शिक्षक दो प्रकार के साधनों का प्रयोग करता है जैसे - (1) शाब्दिक साधन और (2) अशाब्दिक साधन। शाब्दिक साधनों के अन्तर्गत उपमाओं, तुलनाओं, रूपकों, शब्द-चित्रों और कहानियों का प्रयोग किया जाता है। अशाब्दिक साधनों के अन्तर्गत वास्तविक वस्तुओं, नमूनों, मॉडल, चार्ट, ग्राफ, चित्र, रेखाचित्र और चॉक बोर्ड का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण देने हेतु भावी शिक्षकों को निम्न बातों में सक्षम होना अत्यन्त आवश्यक है -

1. विचार, अवधारणा अथवा नियम के अनुकूल उदाहरणों को चुनना।

2. चुने गये उदाहरणों को कुशलतापूर्वक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करना।

शिक्षण प्रक्रिया का उदाहरण एक ऐसा कौशल है जिसका प्रस्तुतीकरण शिक्षकों को तर्क-वितर्क एवं न्याय संगत ढंग से करना चाहिये जिससे वे सम्बन्धित विचारों, अवधारणाओं और सिद्धान्तों को सहज ढंग से समझा सकें।

उदाहरण कौशल के घटक
(Components of Skill of Illustrations with Example)

उदाहरण कौशल में दो प्रक्रियाएं होती हैं जो निम्न हैं –

1. छात्र-छात्राओं को किसी विचार अथवा सिद्धान्त का स्पष्ट करना।

2. इस बात को पक्का या उसकी परिपुष्टि करना कि छात्र-छात्राओं ने उस विचार अथवा सिद्धान्तों के बारे में अच्छी प्रकार से जानकारी प्राप्त कर ली है।

उदाहरण कौशल के घटक निम्न हैं –

1. सम्बन्धित उदाहरणों का प्रयोग (Formulating Relevant Examples): शिक्षक को उदाहरण का सम्बन्ध उपविषय से जोड़ना चाहिये। अगर उदाहरण का सम्बन्ध उपविषय से नहीं होगा तो उसका कोई लाभ नहीं है। सम्बन्धित उदाहरण ऐसे उदाहरण को कहते हैं जो व्याख्याधीन विचार अथवा सिद्धान्त को उचित रूप से समझने में सहायक हो।

2. सरल उदाहरणों का प्रयोग (Formulating Simple Examples) : उदाहरणों का सरल होना भी आवश्यक है। सरल उदाहरण ऐसे उदाहरणों को कहते हैं जो छात्रों के पूर्व ज्ञान और पूर्व अनुभवों पर आधारित होते हैं। शिक्षक को किसी विचार को स्पष्ट करने के लिये छात्र-छात्राओं के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित उदाहरण देने का प्रयास करना चाहिये। शिक्षक सरल उदाहरणों का प्रयोग करता है या नहीं इस बात का निर्णय निम्न दो बातों से किया जा सकता है –

1. छात्र-छात्राओं के भाग लेने का स्तर और उनके द्वारा दिये गये उत्तरों में शुद्धता।

2. छात्र-छात्राओं को स्पष्ट बोध। इनके स्पष्ट बोध का ज्ञान तभी होता है जब वे व्याख्याधीन विषय के सम्बन्ध से स्वयं उदाहरण देने लगते हैं।

3. रोचक उदाहरणों का प्रयोग (Formulating Interesting Examples) : शिक्षक को रोचक उदाहरणों का प्रयोग करना चाहिये। रोचक उदाहरण ऐसे उदाहरण को कहते हैं जो छात्र-छात्राओं के मन में व्याख्याधीन विषय के सम्बन्ध में रोचकता एवं जिज्ञासा उत्पन्न करें और उदाहरण उनके अनुभवों और उनके मानसिक स्तर के अनुकूल हों। शिक्षक रोचक उदाहरणों का प्रयोग कर रहा है या नहीं इस बात का पता छात्र-छात्राओं की एकाग्रता, रुचि, उत्साह एवं कौतुहल से पता चलता है।

4. उदाहरणों के लिये उचित माध्यमों का प्रयोग (Using Appropriate Media of Examples) : उदाहरणों के लिये उचित माध्यमों का प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है। ये माध्यम इस प्रकार हैं –

(1) अशाब्दिक और (2) शाब्दिक।

(क) उदाहरण प्रस्तुतीकरण के अशाब्दिक साधन (Non-verbal Media of Presentation of Examples) : जब शब्दों का प्रयोग न करके उदाहरणों के प्रस्तुतीकरण के लिये 'अशाब्दिक माध्यम' अर्थात् अनुदेशनात्मक (दृश्य सामग्री) का प्रयोग करते हैं तो वे अशाब्दिक माध्यम कहलाते हैं। ये इस प्रकार के हैं – जैसे ठोस सामग्री, मॉडल, मानचित्र, चार्ट, ग्राफ, चित्र आदि।

(ख) उदाहरण प्रस्तुतीकरण के लिये शाब्दिक साधन (Verbal Media of Presentation of Examples) : शाब्दिक साधन निम्न हैं –

1. कहानियों एवं घटनाओं का कथन।
2. रूपक एवं तुलनायें।
3. शब्द चित्र एवं उपमायें।

उदाहरण प्रस्तुतीकरण के लिये शाब्दिक एवं अशाब्दिक साधनों का प्रयोग करते समय निम्न तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है –

1. छात्र-छात्राओं की आयु, कक्षा और उनका मानसिक एवं बौद्धिक स्तर।
2. पढ़ाये जाने वाले पाठ का स्तर।
3. छात्र-छात्राओं का पूर्व ज्ञान।

5. आगमन-निगमन विधि का प्रयोग (Using Examples of Inductive-Deductive Method) –

1. आगमन विधि (Inductive Method) : इस विधि के अन्तर्गत उदाहरण से नियम की ओर चलते हैं। छात्र-छात्राओं को विशेष से सामान्य की ओर प्रेरित करते हैं जैसे छात्रों के सामने अनेक विशेष उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं और वे इन विशेष उदाहरणों से सामान्यीकरण करते हैं फिर एक सामान्य सिद्धान्त निकालते हैं। जैसे शिक्षक छात्र से पूछता है कि शिमला में मैदानी इलाकों की अपेक्षा अधिक ठंड क्यों पड़ती है। इस प्रकार छात्र उत्तर देता है कि शिमला पहाड़ों पर समुद्र तल की ऊँचाई पर स्थित है। इस प्रकार शिक्षक कई ऊंचाई वाले पहाड़ी शहरों के उदाहरण प्रस्तुत करता है और छात्र उन सब में समानता देखते हैं और वह सामान्यीकरण की ओर बढ़ता है। फिर छात्र इसको नियम रूप में समझने का प्रयास करते हैं। जैसे-शिक्षक कहेगा कि जो शहर पहाड़ों में ऊँचाई पर स्थित होते हैं वे मैदानी इलाकों से अधिक ठंडे होते हैं।

इस विधि द्वारा शिक्षण करते समय चार पदों का अनुसरण करना होता है जो निम्न है

(क) उदाहरण - एक ही प्रकार के कई उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

(ख) निरीक्षण - सभी उदाहरणों की तुलना करके उनमें समानता देखने का प्रयोग किया जाता है।

(ग) नियमीकरण - उदाहरणों में समानता देखने के बाद ऐसे नियम या सिद्धान्त को निकाला जाता है जिससे प्रयोजन सिद्ध हो जाये।

(घ) परीक्षण - इस निकाले गये नियम या सिद्धान्त की सत्यता हेतु विभिन्न उदाहरणों का परीक्षण किया जाता है। यह विधि सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में भूगोल पढ़ाने की दृष्टि से बहुत सार्थक और उपयोगी है।

2. निगमन विधि (Deductive Method) : यह विधि आगमन विधि के विपरीत है। इस विधि में सामान्य से विशेष की ओर बढ़ते हैं अर्थात् नियम या सिद्धान्त से उदाहरणों की ओर बढ़ते हैं। इसमें शिक्षक छात्र-छात्राओं को सामान्य नियम बता देता है और फिर एक-एक उदाहरण लेकर उनकी सत्यता सिद्ध करता है। जैसे शिक्षक कहता है कि ऐसा स्थान जिसके चारों ओर पानी हो और बीच से शुष्क या बीच में पृथ्वी हो उसे टापू कहते हैं। छात्र मानचित्र पर ऐसे अनेक स्थान देखते हैं और इस नियम की सत्यता को स्वीकार कर लेते हैं।

प्रस्तुत है उदाहरण कौशल का अवलोकन युक्त रेटिंग स्केल

टैलियां	घटक	रेटिंग स्केल
1.	उदाहरण की सम्बन्धता	0 1 2 3 4 5 6
2.	उदाहरणों की सरलता	0 1 2 3 4 5 6
3.	रोचक उदाहरण	0 1 2 3 4 5 6
4.	माध्यमों की उपयुक्ता	0 1 2 3 4 5 6
5.	विधियों (उपागम) की उपयुक्तता	0 1 2 3 4 5 6

उदाहरण के प्रयोग के लिये व्यावहारिक सुझाव
(Practical Suggestions for using Examples)

1. सरल उदाहरणों का प्रयोग।
2. विषय से सम्बन्धित उदाहरण।
3. वास्तविकता पर आधारित उदाहरण।
4. बहुत अधिक उदाहरणों के प्रयोग से बचना।

5. उदाहरणों में रोचकता।
6. उदाहरणों की भाषा तकनीकी न हो।
7. उदाहरण तैयारी के साथ प्रस्तुत किये जायें।
8. आवश्यकतानुकूल उदाहरणों की प्रस्तुति।

उपरोक्त चर्चा का सारांश यह है कि उदाहरणों का विवेकपूर्ण चयन किया जाये और उनकी तैयारी अच्छी तरह से की जाये फिर इसके पश्चात् कक्षा शिक्षण में आवश्यकतानुकूल एवं समयानुकूल इनका विवेकतापूर्ण बुद्धिमता से प्रयोग किया जाये।

उदाहरणों की उपयोगिता
(Utility of Examples)

1. रुचि एवं जिज्ञासा को जागृत करना।
2. कल्पना एवं विवेक शक्ति का विकास करना।
3. अमूर्त शब्दों और अवधारणाओं की व्याख्या करना।
4. समझने और याद करने में सहायता देना।
5. अवलोकन और प्रयोगीकरण में सहायक।

उदाहरण कौशल की आदर्श पाठ योजना

कक्षा - आठवीं
अवधि - 8 मिनट
विषय - भूगोल
उपविषय -तारा एवं ग्रह

शिक्षक कथन एवं क्रियाएं	छात्र कथन एवं क्रियाएं
1. पृथ्वी एक ग्रह है, अन्य ग्रहों के क्या नाम हैं? (सौर मण्डल चित्र की सहायता)।	चन्द्रमा एक उपग्रह है। बुद्ध मंगल, शनि, बृहस्पति ग्रह हैं।
2. ग्रहों की क्या विशेषता है?	एक छात्र कहता है कि ग्रहों का अपना स्वयं का प्रकाश नहीं होता। दूसरा छात्र - ग्रहों में स्वयं अपनी कोई गर्मी नहीं होती। तीसरा छात्र - ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं।
3. शिक्षक-तारा किसे कहते हैं?	छात्र - जिन आकाश के पिण्डों में स्वयं का प्रकाश तथा गर्मी होती है उन्हें तारा कहते हैं।

4. शिक्षक-तारा का उदाहरण दीजिए?	छात्र - सूर्य एक तारा है।
5. शिक्षक - तारे और ग्रह में क्या अन्तर है?	छात्र - जिन आकाश पिण्डों में स्वयं की गर्मी और प्रकाश होता है उन्हें तारा कहते हैं और जिनमें अपना स्वयं का प्रकाश और गर्मी नहीं होती उन्हें ग्रह कहते हैं।
6. शिक्षक - इनके उदाहरण दो।	छात्र - सूर्य एक तारा है और पृथ्वी एवं चन्द्रमा ग्रह हैं।

सुदृढ़ीकरण के कौशल
(Skill of Reinforcement)

पुष्टिकरण की धारणा मनोवैज्ञानिक धारणा है। कोई भी तथ्य जो धारणा की पुष्टि करता है, मजबूती प्रदान करता है, उसको पुष्टिकरण का नाम दिया जाता है। यह एक ऐसा कौशल है जो ध्यान तथा व्यवहार प्रक्रिया को प्रभावित करने की दिशा में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह शिक्षक के लिये प्रशिक्षण की एक कला है जो कि प्रत्येक शिक्षक के लिए आवश्यक है। यह दो प्रकार की होती है :

- **सकारात्मक पुष्टिकरण** (Positive reinforcement) : जो पुष्टिकरण शिक्षण/अनुक्रिया को मजबूत बनाता है, उसको सकारात्मक पुष्टिकरण कहते हैं। सकारात्मक पुष्टिकरण विद्यार्थियों को आवश्यक व्यवहार या उचित अनुक्रियाओं को उत्साह तथा सुखदायक एहसास/अनुभव करवा देता है। यह कक्षा के विद्यार्थियों की सहभागिता में वृद्धि करता है।

- **नकारात्मक पुष्टिकरण** (Negative reinforcement) : वह पुष्टिकरण जिसको हटा देने से व्यवहार या क्रिया को शक्ति मिले, उसे नकारात्मक पुष्टिकरण कहते हैं। यह पुष्टि विद्यार्थियों के अनावश्यक व्यवहार तथा गलत अनुक्रियाओं को निरुत्साहित करके तथा दु:खदायक अनुभव करवाकर, उनमें आवश्यक सुधार लाने में सहायता करता है।

1. पुष्टिकरण कौशल के तत्त्व (Components of Skill of reinforcement) : पुष्टिकरण कौशल के अग्रलिखित तत्त्व हैं :

(i) **आवश्यक व्यवहार** (Desirable behaviour)

- **धनात्मक शाब्दिक पुष्टिकरण का प्रयोग** (Use of positive verbal reinforcement) : जिन शाब्दिक पुष्टिकरण शब्दों का बच्चे पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है, वे धनात्मक शाब्दिक पुष्टिकरण कहलाते हैं। इसमें शिक्षक उन सभी शब्दों का प्रयोग करता है, जो बच्चों में उत्साह भरते हैं, जैसे कि :

* **प्रशंसात्मक शब्द** (Praise words) : जैसे ठीक है, शाबाश, उत्तम, बहुत अच्छा (good, excellent, splendid) आदि।
* **स्वीकारात्मक कथन** (Accepting statements) : जैसे हां जी, आप ठीक कह रहे हो, इसकी क्या व्याख्या करो, आदि।
* **दोहराना, नए शब्द बताना, सार देना** (Repeating, rephrasing and summarising) : विद्यार्थियों के उत्तरों को दूसरे शब्दों द्वारा दोहराना, नए शब्द बताना या सार देना।

- **धनात्मक अशाब्दिक पुष्टिकरण का प्रयोग** (Use of positive non-verbal reinforcement) : शिक्षक का वह व्यवहार अशाब्दिक व्यवहार है जो विद्यार्थियों को धनात्मक पुष्टिकरण प्रदान करे, धनात्मक अशाब्दिक पुष्टिकरण कहलाता है। इसको दो भागों में विभाजित किया जाता है :

* **विद्यार्थियों के उत्तर चॉक बोर्ड पर लिखना** (Writing pupil's responses on the chalk-board) : शिक्षक विद्यार्थियों को पुष्टिकरण प्रदान करने के लिए उसके ठीक तथा मौलिक उत्तर चॉक-बोर्ड पर लिख सकता है। इससे विद्यार्थी विषय में रुचि लेते हैं।

* **अशाब्दिक क्रियाओं का प्रयोग** (Use of non-verbal actions) : शिक्षक विद्यार्थियों के उत्तर पर बिना बोले, हाव-भाव तथा संकेतों द्वारा जैसे हंस कर, सिर हिलाकर, ताली बजाकर, पीठ थप-थपाकर आदि विद्यार्थी का उत्साह बढ़ाता है।

* **अतिरिक्त शाब्दिक पुष्टिकरण का प्रयोग** (Use of extra verbal reinforcement) : यह शाब्दिक तथा अशाब्दिक धनात्मक पुष्टिकरण के बीच की स्थिति है। यह अशाब्दिक पुष्टिकरण के संयोजक के रूप में प्रयोग किए जाते हैं पर इनका अधिक प्रयोग अच्छे परिणामों के मार्ग में रुकावट सिद्ध हो सकती है। जैसे - आह, वाह आदि।

(ii) **अनावश्यक व्यवहार** (Undesirable behaviour)

- **नकारात्मक शाब्दिक पुष्टिकरण का प्रयोग** (Use of negative verbal reinforcement) : शिक्षक का वह शाब्दिक व्यवहार जो विद्यार्थियों को नकारात्मक पुष्टिकरण प्रदान करता है, नकारात्मक शाब्दिक पुष्टिकरण कहलाता है। यह शिक्षक की प्रभावशीलता है। यह शिक्षक की प्रभावशीलता को तो कम करते ही हैं, साथ ही साथ बच्चों की सहभागिता को भी कम करते हैं, जैसे :

* **निरुत्साहित करने वाले शब्द** (Discouraging words) : जैसे गलत, घटिया, बकवास आदि।

* **निरुत्साहित करने वाले कथन** (Discouraging statements) : जैसे यह ठीक नहीं, आपको कुछ नहीं पता, आप कुछ नहीं कर सकते, आदि।

- **नकारात्मक अशाब्दिक पुष्टिकरण** (Use of negative non-verbal reinforcement) : शिक्षक के वे अशाब्दिक व्यवहार जो विद्यार्थियों को नकारात्मक पुष्टिकरण प्रदान करें 'नकारात्मक' अशाब्दिक पुष्टिकरण कहलाता है जैसे कि नराजगी के साथ विद्यार्थियों की ओर देखना 'न' के पक्ष में बदलना आदि।

- **पुष्टिकरण का अनुचित प्रयोग** (Wrong use of reinforcement) : पुष्टिकरण के ठीक प्रयोग द्वारा ही आवश्यक परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। इसलिए इसके अनुचित प्रयोग से बचना चाहिए। इसका समयानुसार तथा संतुलित प्रयोग करना चाहिए।

2. सूक्ष्म पाठ योजना (Micro lesson plan) :

विद्यार्थी शिक्षक क्रमांक : 882/07

विषय : सामाजिक विज्ञान

उपविषय : दिन तथा रात का बनना

कक्षा : आठवीं

समय : 6 मिनट

कौशल : पुष्टिकरण

तिथि : .....

विद्यार्थी-शिक्षक की क्रिया	विद्यार्थियों की क्रिया
बच्चों हमारे ग्रह का क्या नाम है?	पृथ्वी।
शाबाश! (सहमति के साथ सिर हिलाते हुए)	सूर्य के गिर्द।
बहुत अच्छा! अब यह बताओ कि यह किसके इर्द-गिर्द चक्र लगाती है?	
शाबाश! सूर्य क्या है?	आग का गोला।
पृथ्वी की कितनी गतियाँ हैं?	दो।
बहुत अच्छा! अब बताओ वार्षिक गति क्या है?	पृथ्वी की सूर्य के इर्द-गिर्द गति।
शाबाश! यह कितने समय में एक चक्र लगाती है?	365 दिन 6 घंटों में।

बच्चो! दिन तथा रात कौन सी गति के कारण बनते हैं? दिन-रात कैसे बनते हैं?	दैनिक गति के कारण। विद्यार्थी सोचेंगे तथा कोई उत्तर नहीं दे सकेंगे।

4. प्रश्न कौशल
(Skill of Questioning)

प्रश्न पूछकर विषय-वस्तु को स्पष्ट एवं सरल ढंग से समझाने का ढंग बहुत प्राचीन है। ग्रीक के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने मनुष्य के अव्यवस्थित ज्ञान को व्यवस्थित करने के लिये इस विधि को अपनाया था। इसीलिये यह विधि सुकराती (Soeratic) नाम से भी जानी जाती है जिसकी आज हम 'प्रश्नोत्तर विधि' कहते हैं। शिक्षण की दृष्टि से प्रश्न पूछने के कौशल का अत्यन्त महत्त्व है। प्रश्न करना शिक्षण करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसके द्वारा ही शिक्षक छात्र-छात्राओं के सम्पर्क में आता है और उनसे विचार-विमर्श अथवा विचारों का आदान-प्रदान करता है। प्रश्न विद्यार्थियों को प्रेरित करते हैं और उनकी शिक्षा प्राप्ति की प्रक्रिया और दिशा का निर्देशन करते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि 'शिक्षण की निपुणता' (Efficiency of Teaching) बहुत कुछ पूछे गये प्रश्नों तथा उनके बताने पर निर्भर करती है। **पार्कर** महोदय ने अपनी पुस्तक 'शिक्षण पद्धतियां' में प्रश्नों की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "प्रश्न आदत-कौशल स्तर के बाहर समस्त शैक्षिक क्रिया की कुंजी है।" ("The question is the key to all educative activity above the habit-skill level.")

उपरोक्त कथन से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट होती है कि शिक्षण कला में प्रश्नों का सबसे अधिक महत्त्व है। प्रश्न पूछना एक कला है और बहुत कुछ सीमा तक शिक्षक की कुशलता उसके प्रश्न पूछने की योग्यता पर निर्भर करती है। एक अच्छा शिक्षक एक अच्छा प्रश्नकर्ता होता है। परन्तु प्रश्न पूछने की कला में सभी शिक्षक निपुण नहीं होते। इसलिये सभी शिक्षकों को प्रश्नोत्तर की कला में प्रवीण होना चाहिये। इस कला में दक्षता प्राप्त करने हेतु शिक्षकों को यह पता होना चाहिये कि अच्छे प्रश्नों के कौन से लक्ष्य होते हैं और उनका प्रयोग करना शिक्षण प्रक्रिया में किस प्रकार हितकर हो सकता है।

शिक्षण प्रक्रिया को सफल बनाने में प्रश्नों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रश्नों के महत्त्व को निम्न बातों के आधार पर भली-भांति समझा जा सकता है -

1. पाठ के विकास हेतु आवश्यकतानुकूल प्रश्न पूछना बहुत सहायक सिद्ध होता है।

2. प्रश्नों के पूछने से छात्र-छात्राएं जिज्ञासाशील रहते हैं और वे कक्षा में दत्तचित्त होकर सुनते हैं।

3. बीच-बीच में प्रश्न पूछने से छात्र-छात्राएं शिक्षक के हरेक वाक्य को बड़े ध्यान से सुनते हैं, ताकि बाद में पूछे जाने पर उन प्रश्नों का उत्तर दे सकें।

4. इनके द्वारा छात्र-छात्राएं की कल्पना और तर्क-वितर्क शक्ति और किसी गूढ़ अथवा रहस्यपूर्ण बात या तथ्य को समझने की शक्ति का विकास होता है।

5. छात्र-छात्राओं ने पढ़ाये हुए प्रकरण के बारे में कितनी जानकारी प्राप्त कर ली है, इसका परीक्षण प्रश्नों द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

6. समयानुकूल उचित एवं खोजपूर्ण प्रश्नों के द्वारा छात्र-छात्राओं को प्रेरित करके उनकी कल्पना एवं रचनात्मक शक्ति का विकास भी किया जा सकता है।

प्रश्नों के उद्देश्य
(Objectives of Questioning)

शिक्षण करते समय शिक्षक को यह प्रयास करना चाहिये कि वह आवश्यकता एवं समयानुकूल प्रश्न पूछकर छात्र एवं छात्राओं को अधिक-से-अधिक ज्ञानार्जन में सहायता दे और छात्र-छात्राओं के प्रश्नों को उत्तर उनकी शंकाओं का निवारण करें। उनको इस योग्य भी बनाया जाये कि वे ज्ञान से सम्बन्धित तथ्यों को तर्क की कसौटी पर कस कर स्वीकार करे। इन सभी महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखते हुए खोजपूर्ण प्रश्नों के उद्देश्य इस प्रकार से होने चाहिएं -

1. प्रश्नों के द्वारा कक्षा में सजीवता लाना।
2. छात्र-छात्राओं की कठिनाइयों का निवारण करना।
3. उनके ज्ञान, ज्ञान के प्रयोग और उनके चातुर्य का पता लगाना।
4. उनका मानसिक एवं बौद्धिक विकास करना।
5. पाठ को रोचक बनाकर छात्र-छात्राओं के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करना।
6. उनकी अभिव्यक्ति क्षमता एवं योग्यता का पता लगाना।
7. उनकी झिझक और संकोच को दूर करते हुए आत्मभिव्यक्ति के कौशल का विकास करना।
8. इस बात का पता लगाना है कि जो कुछ पढ़ाया जा रहा है उसमें से विद्यार्थियों को कितना कुछ समझ में आ रहा है।
9. छात्र-छात्राओं में स्वस्थ समालोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास करना।
10. उनके द्वारा प्राप्त किये ज्ञान एवं तथ्यों का मूल्यांकन करना।

प्रश्न और शिक्षक का दायित्व : इस बात की चर्चा पहले ही की जा चुकी है कि प्रश्न पूछना एक कला है और शिक्षक को इस दृष्टि से कलाकार होना चाहिये। अपने शिक्षण दायित्व को कुशलतापूर्वक एवं निष्ठापूर्वक निभाने हेतु प्रत्येक शिक्षक को इस कला में दक्ष होने का पूर्ण रूप से प्रयास करना चाहिये। इस कला में प्रवीण एवं दक्ष होने के बाद ही वह शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण, सशक्त एवं सार्थक बना सकता है। इसलिये एक कुशल एवं अनुभवी शिक्षक को प्रश्न पूछते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना अवश्य ही श्रेयस्कर होता है।

1. कक्षा के सभी विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए प्रश्न पूछे जाने चाहिए।
2. प्रश्न छात्र-छात्राओं के मानसिक स्तर के अनुकूल होने चाहिए।
3. अगर प्रश्न बड़े हैं तो उनको छोटे-छोटे भागों में बांट लेना चाहिये। उदाहरणतया मुगल साम्राज्य का कौन-सा राजा (शासक) भवन निर्माता था? उसने कौन-कौन से भवन बनवाये और कहां-कहां बनवाये? यह प्रश्न बहुत बड़ा है। यह प्रश्न को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है?

(क) मुगल साम्राज्य का कौन सा राजा (शासक) भवन निर्माता था? सही उत्तर मिलने पर

(ख) शाहजहां ने कौन-कौन से भवन बनवाये?

(ग) ये सभी भवन कहां-कहां है?

4. प्रश्नों का केन्द्र एक ही छात्र नहीं होना चाहिये। अर्थात् एक ही छात्र से अनेक प्रश्न न पूछे जाएं?
5. प्रश्न पूछने के बाद छात्र-छात्राओं को सोच-समझ कर उत्तर देने के लिए शिक्षक को धैर्य रखना चाहिए।
6. प्रश्न पूछते समय विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिये।
7. विद्यार्थियों द्वारा दिये गये अशुद्ध उत्तरों में शिक्षक को सुधार करना चाहिए।
8. प्रश्न केवल प्रश्न पूछने के लिये नहीं होने चाहिए बल्कि प्रश्न उद्देश्य पूर्ण और सार्थक होने चाहिए अन्यथा पाठ में नीरसता की सम्भावना बढ़ जायेगी और विद्यार्थी उबने लगेंगे।
9. ऐसे प्रश्न न पूछे जायें जो विवादास्पद हों।
10. प्रश्न पूछने के बाद शिक्षक को विद्यार्थियों को उत्तर देने के लिए प्रेरित करना चाहिये।

11. ऐसे प्रश्न कदापि भी न पूछे जायें जिनके उत्तर अनेक हों जैसे -श्रीमति इंदिरा गांधी कौन थी?

12. शिक्षक को ऐसे प्रश्न नहीं पूछने चाहिये जिनका उत्तर प्रश्न में ही निहित हो जैसे-"क्या देहली भारत की राजधानी नहीं है?", "क्या अशोक महान बुद्ध धर्म में विश्वास नहीं रखते थे?"

13. प्रश्नों की भाषा सरल स्पष्ट हो ताकि सभी छात्र-छात्राओं की समझ में आ जायें।

14. प्रश्नों की रचना एक जैसी नहीं होनी चाहिये।

15. प्रश्न ऐसे होने चाहिए जो छात्र-छात्राओं की मानसिक क्रियाओं को सचेत और जागृत कर दे और उन्हें अवलोकन ,स्मरण और विचार करने के लिये प्रोत्साहित करे।

16. शिक्षक को ऐसे प्रश्न भी नहीं पूछने चाहिये जिनका उत्तर हां या ना में हो।

17. प्रश्नों में विषय-वस्तु की दृष्टि से क्रमबद्धता होनी चाहिये।

18. ऐसे प्रश्न भी न पूछे जायें जिनके अन्त में यह ठीक है न? यह कहना सही होगा? आदि का प्रयोग होता है। ये प्रश्न पुष्टि कारक प्रश्न कहलाते है। ऐसे प्रश्नों के द्वारा शिक्षक अपने कथन की पुष्टि छात्र-छात्राओं से करवाता है। यह एक बड़ी भूल है। शिक्षक को कदापि भी ऐसा नहीं करना चाहिए।

19. शिक्षक को प्रश्न पूछते समय अभ्यस्त शब्दों का प्रयोग अधिक नहीं करना चाहिये। जैसे-शाबाश ,बहुत अच्छे, अति सुन्दर, बहुत खूब, वाह क्या जवाब दिया है ,कमाल कर दिया आदि आदि। ऐसा करने से शिक्षक उपहास का पात्र बन जाता है। इसलिये शिक्षक को ऐसे शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए।

20. प्रति ध्वनि (Echo Questions) भी नहीं पूछे जाने चाहिए। ऐसे प्रश्नों से तर्क एंव मनन शक्ति का विकास नहीं होता। उदाहरणतया भारत विशाल देश है। भारत क्या है?

5. उद्दीपन परिवर्तन कौशल

(Skill of Stimulus Variation)

एक कुशल एंव अनुभवी शिक्षक अपने पाठ को प्रभावशाली एवं सार्थक बनाने के लिये अच्छे ढंग से प्रश्न पूछता है, विषय-वस्तु की व्याख्या करता है, पाठ को विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से सरल बनाता है। परन्तु इन तीनों कौशलों के प्रयोग के साथ-साथ शिक्षक के लिये छात्र-छात्राओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिये विभिन्न प्रकार के उद्दीपनों का शिक्षण प्रक्रिया में प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है। इस बात को हम इस प्रकार भी कह सकते है कि शिक्षक कक्षा में खड़ा होकर एक मुद्रा में न बोलता रहें बल्कि उसे अभिनयात्मक ढंग को अपना कर अपनी शिक्षण प्रक्रिया को पूर्ण रूप से सार्थक, आकर्षक एवं सजीव बनाने का पूरा-पूरा प्रयास करना चाहिये। अगर वह ऐसा करने में असफल रहता है तो छात्र-छात्राओं का ध्यान पाठ में न होकर अपनी बातचीत में लग जायेगा अर्थात उनको पाठ नीरस लगने लगेगा और शिक्षण प्रक्रिया का प्रयोजन ही व्यर्थ हो जायेगा। इसलिये शिक्षक के लिये छात्र-छात्राओं के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये अपनी शारीरिक मुद्रा, हाव-भाव, अंग संचालन और आवाज में उतार-चढ़ाव का परिवर्तन करना आवश्यक है। शिक्षक के इस प्रकार के व्यवहार परिवर्तन को ही उद्दीपन परिवर्तन कौशल कहा जाता है।

उद्दीपन परिवर्तन कौशल के घटक

(Components of Skill of Stimulus Variation)

उद्दीपन परिवर्तन हेतु शिक्षक कक्षा में अनेक ढंग से व्यवहार करता है। उनमें से कुछ व्यवहार निश्चित रूप से सफल शिक्षण के लिये उपयोगी हैं, जो निम्न हैं -

1. शरीर संचालन (Movement)
2. भाव मुद्रा (Gesture)
3. आवाज़ में आरोह-अवरोह (Change in speech pattern)
4. भाव केन्द्रीयकरण (Focussing)
5. छात्र शिक्षण परस्पर क्रिया (Change in interaction style)
6. विराम प्रयोग (बोलते-बोलते चुप हो जाना) (Pause)
7. श्रव्य-दृश्य क्रम परिवर्तन (Oral visual switching)

1. शरीर एवं अंग संचालन (Movement) : बहुत से शिक्षक एक स्थान पर बुत की तरह खड़े होकर बोलते रहते हैं और वे छात्र-छात्राओं का ध्यान बहुत देर तक अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकते। जो शिक्षक इस कौशल का प्रयोग करना जानते हैं वे आवश्यकतानुकूल शरीर एवं अंगों का संचालन करते हुए विद्यार्थियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये रखते हैं।

2. भाव मुद्रा (Gesture) : छात्रों के ध्यान को आकर्षित किये रखने के लिये भाव मुद्राओं में परिवर्तन होना चाहिये जैसे - मुख मुद्रा के अंतर्गत हंसना, मुस्कुराना, गुस्सा करना और भौंह आदि का चढ़ाना। सिर को हां या ना के लिये हिलाना और विभिन्न क्रियाओं के लिए हाथ से संकेत करना। कई बार नैन के संकेत से शिक्षक स्नेह, आश्चर्य और क्रोध को भी दर्शाता है।

3. स्वर में आरोह-अवरोह (Change in Speech Pattern) : शिक्षक की आवाज़ शिक्षण करते समय एक जैसी न होकर उसमें उतार-चढ़ाव का होना आवश्यक है अर्थात् आवश्यकानुकूल और समयानुकूल आवाज़ में परिवर्तन होना चाहिये।

4. भाव केन्द्रीयकरण (Focussing) : शिक्षक इसका प्रयोग छात्र-छात्राओं के ध्यान को किसी विशेष बिन्दु, घटना की ओर आकर्षित करने के लिये करता है। इस

घटक का प्रयोग शिक्षण को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये शिक्षक शाब्दिक एवं अशाब्दिक दोनों तरह के व्यवहारों से कर सकता है जैसे चॉक बोर्ड पर देखिए या ध्यान से सुनिये प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है।

5. छात्र शिक्षण परस्पर क्रिया (Change in Interaction Style) : छात्र शिक्षक परस्पर क्रिया छात्र-छात्रों के पाठ को सीखने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस क्रिया को छात्र-छात्राओं का संकोच दूर होता है और आत्मविश्वास की भावना का विकास होता है।

यह क्रिया कई ढंग से हो सकती है जिसे निम्न रूप में दर्शाया गया है -

(क) शिक्षक का पूरी तरह से कक्षा के सभी छात्रों का सम्बोधित करना।

(ख) छात्रों से प्रश्न पूछना और उनको प्रश्न का उत्तर देने के लिये हाथ खड़ा करने के लिये कहना।

(ग) छात्र विशेष से प्रश्न करना और छात्र द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर देना।

(घ) छात्रा द्वारा पूछे गये प्रश्न का किसी अन्य छात्र को उत्तर देने के लिये कहना।

6. विराम का प्रयोग (बोलते-बोलते चुप हो जाना) (Pause) : कई बार शिक्षक छात्र-छात्राओं के ध्यान को आकर्षित करने के लिये बोलता-बोलता कुछ क्षण के लिये रुक जाता है तो इसे विराम प्रयोग कहा जाता है और शिक्षण प्रक्रिया में सहायता हेतु ऐसा करना शिक्षक के लिए श्रेयस्कर रहता है।

7. श्रव्य-दृश्य क्रम परिवर्तन (Oral Visual Switching) : जब शिक्षक कुछ बोलते हुए पढ़ा रहा हो और फिर बाद में चॉक बोर्ड पर कुछ लिखना शुरू कर दें या मानचित्र दिखाने लगे तो इसे श्रव्य दृश्य क्रम परिवर्तन कहते हैं।

उद्दीपन परिवर्तन कौशल का अवलोकन युक्त रेटिंग स्केल

टैलियां	घटक रेटिंग स्केल
1. शिक्षक ने पर्याप्त रूप से संचालन क्रिया	1 2 3 4 5 6 7
2. शिक्षक ने पर्याप्त रूप से भाव मुद्राओं का प्रयोग किया	1 2 3 4 5 6 7
3. स्वर में आरोह-अवरोह का प्रयोग हुआ	1 2 3 4 5 6 7
4. भाव केन्द्रीयकरण का प्रयास किया गया	1 2 3 4 5 6 7
5. छात्र-शिक्षक परस्पर क्रिया में परिवर्तन हुआ	1 2 3 4 5 6 7
6. 'विराम' का प्रयोग	1 2 3 4 5 6 7
7. श्रव्य-दृश्य क्रम परिवर्तन	1 2 3 4 5 6 7

उद्दीपन परिवर्तन कौशल की आदर्श सूक्ष्म पाठ योजना

विषय - सामाजिक अध्ययन (इतिहास) **कक्षा** - आठवीं

उपविषय - सिकन्दर पौरुष संवाद **अवधि** - 8 मिनट

शिक्षक कथन एवं क्रिया	छात्र कथन एवं क्रिया	घटक
1. शिक्षक-सिकन्दर महान यूनान का राजा था। वह बहुत बहादुर विशालकाय राजा था। विशालकाय के लिये अंग संचालन और संसार के मानचित्र पर यूनान को दिखाना।	छात्र उत्सुकता से ध्यानपूर्वक सुनते हैं। छात्र ध्यानपूर्वक सुनते और देखते हैं।	अंग संचालन श्रव्य-दृश्य परिवर्तन
2. सिकन्दर बहुत महत्त्वाकांक्षी था और वह समूचे संसार पर विजय पाना चाहता था-अपने हाथ चारों दिशाओं को ओर घुमाता है।	ध्यानपूर्वक सुनते हुए शिक्षक की ओर देखते हैं।	अंग संचालन
3. इस इच्छा को साकार रूप देने हेतु भारत के महान राजा पौरुष पर आक्रमण किया। आवाज में परिवर्तन करते हुए कहेगा।	ध्यानपूर्वक सुनते हैं।	स्वर में आरोह अवरोह
4. परिस्थितियों के विपरीत होने के कारण महान् पौरुष हार गया। लेकिन पौरुष मन से नहीं हारा था। पौरुष के हौंसले में किसी परिवर्तन का कोई संकेत नहीं था क्योंकि उसका मानना था कि सिकन्दर विपरीत परिस्थितियों के कारण जीता है।	छात्र ध्यानपूर्वक सुनते हैं।	स्वर में आरोह अवरोह दो बार होगा। आवाज में आरोह-
5. शिक्षक-सिकन्दर और पौरूष की भूमिका निभाते हुए कहेगा।	छात्र उत्सुकता से सुनते हुए शिक्षक के व्यवहार को बदलते हुए देखते हैं।	अंग का संचालन स्वर में आरोह-अवरोह दो बार होगा।

सिकन्दर–अपने पर गर्व करते हुए कहेगा कि बताओ तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाये?		
6. पौरूष–गर्व से कहता है कि जैसा एक राजा को दूसरे राजा से व्यवहार करना चाहिये।	छात्र ध्यान से सुनते हैं।	अंग संचालन · आवाज़ में आरोह–अवरोह। मुद्रा भावों में परिवर्तन भाव केन्द्रीयकरण।
7. सिकन्दर–पौरुष के इस उत्तर को पाकर बहुत खुश होता है।	छात्र ध्यान से सुनते हैं।	भाव मुद्रा परिवर्तन
8. सिकन्दर–अपनी खुशी को प्रकट करते हुए और पौरुष का सम्मान करते हुए उसके राज्य को वापिस दे देता है।	छात्र उत्सुकता और ध्यान से सुनते हैं और शिक्षक की भाव भंगिमाओं को देखते हैं।	भाव भंगिमाओं में परिवर्तन और आवाज़ में आरोह-अवरोह

अभ्यास के प्रश्न
(Study Questions)

1. सामाजिक अध्ययन के शिक्षण के कौशल पर एक संक्षिप्त नोट लिखें।
2. सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में स्पष्ट करने के कौशल पर एक विस्तृत निबंध लिखें।
3. सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में उदाहरणों के साथ चित्रण के कौशल पर एक विस्तृत निबंध लिखें।
4. सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में सुदृढ़ीकरण के कौशल पर एक विस्तृत निबंध लिखें।
5. सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में पूछताछ के कौशल पर एक विस्तृत निबंध लिखें।
6. सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में प्रोत्साहन विभिन्नता के कौशल पर एक विस्तृत निबंध लिखें।

इकाई - 4
Unit - 4

शिक्षण में मूल्यांकन और दृष्टिकोण / कक्षा परिक्रियाएँ और सामाजिक विज्ञानों में मूल्यांकन
(Approaches and Evaluation in Teaching/Classroom Processes and Evaluation in Social Sciences)

1. कक्षा परिक्रियाएँ : खोज विधि, चर्चा विधि, स्त्रोत विधि, सर्वेक्षण विधि, मानचित्रण अवधारणा और कहानी कहना। अवधारणा प्राप्ति, जांच प्रशिक्षण मॉडल, कंप्यूटर द्वारा सहायता प्राप्त शिक्षण (सी ऐ आई) शैक्षिक प्रसारण और टेलिविजन का प्रसारण, ई-ट्यूशन, क्षेत्रीय दौर/यात्राएं
   Classroom Processes : Discovery Method, Discussion Method, Source Method, Survey Method, Concept Mapping and Story Telling. Concept Attainment, Inquiry Training Model, Computer Assisted Instruction (CAI), Educational Broadcasting and Telecasting, E-Tutoring, Field Visits/Trips
2. सामाजिक विज्ञान क्लब : अर्थ, महत्व और संगठन (क्लब क्रियाएँ, प्रदर्शनियां, प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताएं)
   Social Science Club : Meaning, Importance and Organization (Club Activities, Exhibitions, Quiz Competitons)
3. मूल्यांकन का अर्थ, महत्व और सामाजिक विज्ञानों में मूल्यांकन के प्रकार
   (Meaning, Importance and Types of Evaluation in Social Sciences)
4. सतत् और व्यापक मूल्यांकन : अर्थ, महत्व और प्रक्रिया
   (Continuous and Comprehensive Evaluation : Meaning, Importance & Process)
5. आंकलन के लिए नए दृष्टिकोण - प्रश्न बैंक, खुली किताब परीक्षा, ग्रेडिंग और क्रेडिट प्रणाली
   New Approaches to Assessment – Question Bank, Open Book Examination, Grading & Credit System
6. उपलब्धि परीक्षा का निर्माण - अवधारणा और कदम
   (Construction of Achievement Test–Concept and Steps)

CHAPTER 1

कक्षा परिक्रियाएँ
Classroom Processes

कक्षा परिक्रियाएँ : खोज विधि, चर्चा विधि, स्त्रोत विधि, सर्वेक्षण विधि, संप्रत्यय अवधारणा और कहानी कहना। अवधारणा प्राप्ति, जांच प्रशिक्षण मॉडल, कंप्यूटर द्वारा सहायता प्राप्त शिक्षण (सी ऐ आई) शैक्षिक प्रसारण और टेलिविजन का प्रसारण, ई-ट्यूशन, क्षेत्रीय दौरे/यात्राएं

(Classroom Processes : Discovery Method, Discussion Method, Source Method, Survey Method, Concept Mapping and Story Telling. Concept Attainment, Inquiry Training Model, Computer Assisted Instruction (CAI), Educational Broadcasting and Telecasting, E-Tutoring, Field Visits/Trips)

कक्षा परिक्रियाएँ
(Classroom Processes)

1. **सामाजिक कुशलता (Social Efficiency)**–प्रोफेसर बाग्ले (Bagley) के अनुसार सामाजिक दृष्टि से दक्ष मनुष्य की अधोलिखित विशेषताएं हैं :-

(a) **आर्थिक दक्षता (Economic efficiency)**–अपनी जीविका कमाने की योग्यता जिसमें व्यक्ति समाज पर भार न बन सकें।

(b) **निषेधात्मक नैतिकता (Negative morality)**–इसका अभिप्राय यह है कि जब व्यक्ति की इच्छाओं की सन्तुष्टि दूसरों की आर्थिक कुशलता में बाधा उत्पन्न करें, तब उसमें अपनी इच्छाओं को त्यागने की तत्परता होनी चाहिये।

(c) **सकारात्मक नैतिकता (Positive morality)**–जन मनुष्य को अपनी इच्छाओं की सन्तुष्टि से सामाजिक प्रगति में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में योगदान न दिया जाता हों तब उसमें उन्हें त्यागने की तत्परता होनी चाहिये।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि मानव के विकास में सामाजिक अध्ययन बहुत सहायता देता है। सामाजिक अध्ययन मानवीय सम्बन्धों को स्पष्ट करके बालक में निषेधात्मक एवं सकारात्मक दोनों प्रकार की नैतिकता का विकास करता हैं। इसके अलावा अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्तों का परिचय प्रदान करके बालकों को अपने व्यवसाय का चयन करने के लिये तैयार करता है। अर्थशास्त्र एक चयन करने (Choice making) का विज्ञान है। अत: सामाजिक अध्ययन के शिक्षण का महत्त्वपूर्ण लाभ बालक को सामाजिक दृष्टि से कुशल बनाना है।

2. व्यावहारिक उपयोगिता (Practical Utility)-सामाजिक अध्ययन के शिक्षण से बालक में व्यावहारिक उपयोगिता आती है। वह मानवीय सम्बन्धों तथा सामाजिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही नहीं करता, अपितु उनका प्रयोग करना भी सिखाता है। अध्ययन से बालक उन सिद्धान्तों तथा नियमों का प्रयोग अपने जीवन में करता है। बालक संहाबद्ध रहकर सहयोग, उत्तरदायित्व तथा नेतृत्व करने की भावना प्रायोगिक रूप से सीखता है। वह विभिन्न पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में इनका प्रशिक्षण प्राप्त करता है तथा उसके पश्चात् अपने जीवन में इन सिद्धान्तों का प्रयोग करता है। व्यक्ति के समाज के प्रति क्या कर्त्तव्य तथा अधिकार हैं ? सामाजिक अध्ययन ऐसे प्रश्नों का उत्तर ही नहीं देता वरन् उनका जीवन में प्रयोग करना भी सिखाता है जो जीवन को सुखद व सम्पन्न बनाते हैं।

3. स्वतन्त्र अध्ययन की आदत (Habit of Independent Study)-बालक को अपने अध्ययन के लिए उपयोगी सामग्री को ढूँढना पड़ता है जिससे उसमें स्वतन्त्र अध्ययन करने की आदत का विकास होता है। सामाजिक अध्ययन का शिक्षण विभिन्न समस्याओं के रूप में किया जाता है, जिनके हल के लिए बालकों को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने को कहा जाता है, जिससे उनमें स्वावलम्बन की भावना का भी विकास होता है। स्वाध्ययन की आदत से बालकों में मानसिक साहस भी आता है जिससे वे नवीन समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करने में नहीं डरते।

4. मानसिक शक्तियों का विकास (Development of Mental Powers)-'समूह विज्ञान' (Faculty Psychology) के समर्थकों के अनुसार मस्तिष्क विभिन्न विभागों या शक्तियों अर्थात्-तर्क, चिन्तन, स्मरण, निर्णय आदि का समूह है। सामाजिक अध्ययन के शिक्षण से इन शक्तियों का विकास होता है। इसमें बालकों के सम्मुख विभिन्न समस्याएं रखी जाती हैं जो उनकी चिन्तन-शक्ति को बढ़ाती हैं तथा उनका हल उनकी नियमन शक्ति, तर्क तथा निर्णयों का विकास करती हैं।

5. विविध जटिलताओं का निराकरण (Solution of Various complexities)-आधुनिक युग विविधताओं तथा जटिलताओं से भरा हुआ है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इन जटिलताओं का सामना करना पड़ता है। सामाजिक अध्ययन से हम इन जटिलताओं को सरलता तथा सफलतापूर्वक सुलझाने में सफल होते हैं। इन जटिल समस्याओं को हल करने से व्यक्ति में विवेक तथा नागरिक की भावना आती है।

6. चयन करने की कुशलता (Skill in Selection)-आधुनिक सभ्यता अधिकाधिक जटिल होती जा रही है। इस कारण उसमें पायी जाने वाली अनेक प्रकार की वस्तुएँ, कौशल, प्रणालियाँ आदि में से उचित चयन करने की योग्यता परमावश्यक है, क्योंकि उचित चयन ही सफल जीवन का आधारशिला है। सामाजिक अध्ययन छात्रों

अध्यापकों दोनों को ही उचित चयन के अभ्यास के लिए अनेक अवसर प्रदान करता है। इसके अध्ययन के द्वारा छात्र घटना-विशेष का विश्लेषण करके तथा विश्लेषण के आधार पर उचित निष्कर्ष निकालकर उपयुक्त वस्तु या परिस्थिति का चयन करने में समर्थ हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में जेम्स हेमिंग ने लिखा है, "**सामाजिक अध्ययन शिक्षकों तथा छात्र दोनों को ही विभेद एवं चयन करने का अभ्यास प्रदान करता है।**" (**"Social Studies, however, provide constant practice in discrimination and selection for both teachers and pupils."**)

-James Hemming

7. सहयोगी कार्य में प्रशिक्षण (Training in Co-Operative work)-आज प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को अपनाता जा रहा है, परन्तु आधुनिक परिस्थितियों ने इस बात पर बल दिया है कि जब तक मानव सहयोगी भावना को ग्रहण नहीं करेगा तब तक वह सफल जीवनयापन नहीं कर सकेगा। विश्व में शान्ति बनाये रखने के लिए भी सहयोगी दृष्टिकोण का होना परमाश्वयक है। इसके अभाव में व्यक्ति जीवन का कोई भी कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर सकेगा। सामाजिक अध्ययन छात्रों को मिल-जुलकर कार्य करने की प्रशिक्षण प्रदान करता है तथा वह मानवीय सम्बन्धों का विवेचन करके सहयोगी कार्य महत्त्व को स्पष्ट करता है।

8. बालकों की आवश्यकताओं की अंशतः या पूर्णतः पूर्ति (To Meet the Needs of the Child, in whole or in part)-सामाजिक अध्ययन शिक्षा प्रदान करके बालकों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह उनकी ज्ञान, मानदण्ड, सामाजिक जागृति, संस्कृति, समझदारी, लगाव की भावना, आधुनिक विश्व के उचित ज्ञान आदि से सम्बन्धित आवश्यकताओं की अंशतः या पूर्णतः पूर्ति करता है।

9. स्वस्थ आदतों एवं उचित वृत्तियों का विकास (Development of Healthy Habits and Right Attitudes)-सामाजिक अध्ययन छात्रों में विभिन्न स्वस्थ आदतों का निर्माण करने में सहायक है। आदतों का हमारे दैनिक जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। हम स्वाध्ययन की आदत के विकास के सम्बन्ध में इसकी उपलब्धियों के विषय में बता चुके हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक अध्ययन स्वच्छता, शुद्धता, संवेगों को नियन्त्रित करने आदि की आदतों के निर्माण में सहयोग प्रदान करता है। इन आदतों के निर्माण के साथ-साथ यह उचित वृत्तियों के विकास में भी सहायक है। इस सम्बन्ध में बाइनिंग तथा बाइनिंग ने लिखा है, "**सामाजिक अध्ययन के शिक्षक को अपने छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, भक्ति भावना, सच्चाई, सहिष्णुता, सहयोग, नागरिक आधार, बुद्धिमत्तापूर्ण, आशावादिता की उचित वृत्तियों के विकास के लिए प्रत्येक अवसर का चयन करना चाहिए।**" (**"Attitudes of scientific-mindedness, of loyalty,**

of truthfulness, of tolerance, of co-operation, of civic gratitude and above all, of intelligent optimism are among the right attitudes the teaching of the social studies must seek at every opportunity develop in his pupils.")

-Bining and Bining

10. अनुकूलता का विकास (Development of Adaptability)-सामाजिक अध्ययन छात्रों में परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को ढालने की योग्यता का विकास करता है। सामाजिक अध्ययन आधुनिक विश्व की जटिलता को स्पष्ट करके उसमें व्यक्तियों को होने की क्षमता का विकास करता है। यह उनको यह भी बताता है कि वे परिवर्तनशील वातावरण से किस प्रकार समायोजन कर सकेंगे ?

अत: निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता हैं कि यदि बालक इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए व अपनी समझ (understanding) के अनुसार कार्य करते हैं, तो वे सामाजिक अध्ययन को ओर अधिक उचित प्रकार से समझ सकेंगे। क्योंकि सामाजिक अध्ययन शिक्षण के द्वारा बालकों में उपर्युक्त योग्यताओं का विकास किया जाता है।

खोज विधि
(Discovery Method)

इस विदि का विकास आर्मस्ट्रांग ने मुख्यत: विज्ञान-शिक्षण के लिए किया। इसे हम 'स्वयं ज्ञान विधि' अथवा 'अन्वेषणात्मक विधि' भी कहते हैं।

स्पेन्सर के अनुसार-बालकों को कम से कम बताना चाहिए और उन्हें अधिक से अधिक तथ्य स्वयं खोज निकालने के लिए प्रेरित करना चाहिए। यह कथन ही इस विधि की आधारशिला है। यह 'Herisco' नामक शब्द पर आधारित है जिसका अर्थ है-"मैं खोजता हूँ।" इस विधि में बालक स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है।

आर्मस्ट्रांग के अनुसार-"ये वे विधियां है जिनमें हम विद्यार्थियों को यथासम्भव एक अनुसंधानकर्ता या खोजी की स्थिति में रखना चाहते हैं। अर्थात् वे विधियाँ जिनमें केवल वस्तुओं के विषय में कहे जाने के लिए उनकी खोज को आवश्यक माना गया है।"

अनुसंधान विधि की कार्यप्रणाली-बालकों के समक्ष कोई समस्या प्रस्तुत कर दी जाती है। सभी छात्र उसे हल करने का प्रयास करते हैं। अध्यापक छात्रों को प्रोत्साहित करता है। इस समस्या से सम्बन्धित आवश्यक निर्देश उन्हें दिए जाते हैं तथा व्यक्तिगत रूप से कार्य करने की स्वतन्त्रता दी जाती है। वे समस्या का समाधान करने के लिए विभिन्न अंगों का विश्लेषण करते हैं। बालक समस्या पर विचार केवल छात्ररूप में ही नहीं करते, वरन् एक अन्वेषक के रूप में करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर बालक परस्पर विचार-विमर्श करते हैं। विद्यार्थियों को स्वयं के प्रयास पर निर्भर रहकर ज्ञान की खोज

करनी होती है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर वे शिक्षक से परामर्श कर सकते हैं और समस्या का हल निकालते हैं।

इस विधि में छात्र को अधिक कार्य करना पड़ता है। अध्यापक केवल मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है। निरीक्षण, तर्क तथा निर्णय लेने की शक्तियों का भी समुचित विकास छात्रों में होता रहता है, चूँकि 'स्वयं करके सीखना' होता है।

संक्षेप में, इस विधि के प्रमुख कार्य-पद निम्नलिखित हैं-

1. **निरीक्षण**-सम्बन्धित विषयवस्तु परिस्थितियों का निरीक्षण।
2. **तुलना**-अन्य विषयवस्तु परिस्थितियों में तुलना।
3. **प्रयोग**-निरीक्षण एवं तुलना के आधार पर स्फूर्त विचारों को प्रयोग द्वारा परखकर तथ्यपरक स्वरूप देना।
4. **प्रदर्शन**-प्रयोग का प्रदर्शन करना।
5. **सामान्यीकरण**-प्रयोग के माध्यम से प्रस्फुटित तथ्यों का परिणाम के रूप में सामान्यीकरण।
6. **प्रमाणीकरण**-पुन: प्रयोग करके निकाले हुए तथ्यों का प्रमाणीकरण।

अनुसंधान या खोज विधि की उपर्युक्त कार्य-प्रकिया किसी ज्ञान को खोज निकालने की दृष्टि से वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है। शिक्षार्थी शिक्षक के अथवा स्वयं के निरीक्षण, प्रयोग, प्रदर्शन के आधार पर निष्कर्ष निकालता है। शिक्षक प्रश्नों द्वारा उसके निरीक्षण एवं निष्कर्ष को सही दिशा देता है और पूरक कथन के माध्यम से उनका स्पष्टीकरण एवं पुष्टि करता है।

अनुसंधान विधि के सिद्धान्त-यह विधि शिक्षा के चार सिद्धान्तों पर आधारित है जो इस प्रकार हैं-

1. **करके सीखना**-इससे बालकों में आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, चिन्तनशीलता, दृढ़ता तथा आत्मानुशासन पैदा होता है।
2. **क्रियाशीलता**-इस विधि में बालक स्वयं कार्य करके नए ज्ञान को खोजते हैं। वे क्रियाशील रहते हैं, केवल निष्क्रिय श्रोता नहीं रहते।
3. **मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण**-इस विधि में बालक में अन्तर्निहित शक्तियों तथा मनोभावों का विकास होता है। यह विधि पूर्णतया मनोवैज्ञानिक विधि है।
4. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण**-इस विधि से छात्रों में निरीक्षण और जिज्ञासा की भावना विकसित होती है और वैज्ञानिक ढंग से सोचने और समस्या का हल खोज निकालने की क्षमता उत्पन्न होती है।

अनुसंधान विधि के गुण-1. यह विधि बालकों को क्रियाशील बनाए रखती है तथा उन्हें सोचने का अवसर देती है।

2. स्वाध्याय की रुचि विकसित होती है। वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बालक चिन्तन करता है।

3. बालक में सोचने, विचारने, निरीक्षण तथा तर्क करने की शक्ति का विकास होता है। वे जो कुछ सोचते हैं, वह स्पष्ट व स्थायी होता है।

4. यह विधि बालक में खोजने की आदत निर्माण करती है।

5. इस विधि से बालक में विषय के प्रति रुचि पैदा होती है।

6. इस विधि द्वारा अर्जित ज्ञान स्थायी होता है।

7. बालकों को गृहकार्य देने की आवश्यकता नहीं होती।

8. इस विधि में अध्यापक प्रत्येक बालक के सम्पर्क में आता है।

9. छात्रों में खोज व शोध के प्रति रुचि व अन्तर्दृष्टि पैदा होती है।

10. बालक में आत्म-निर्णय, आत्म-निर्भरता, आत्मानुशासन, आत्मविश्वास तथा आत्मसंयम आदि चारित्रिक गुणों का विकास होता है।

अनुसंधान विधि के दोष-1. यह विधि प्राथमिक कक्षाओं के लिए उपयुक्त नहीं है। केवल उच्च कक्षाओं में सम्भव हो सकती है। विशेष प्रशिक्षित शिक्षक की आवश्यकता होती है।

2. शिक्षण कार्य बहुत मन्द गति से हो पाता है जिससे आधुनिक पाठ्यक्रम निर्धारण वर्ष की अवधि में समाप्त करना कठिन हो जाता है।

3. प्रतिभावान शिक्षक एवं कुशल बुद्धि बालकों के साथ ही यह विधि सफल हो सकती है। यह सभी छात्रों के लिए प्रयोग में नहीं लाई जा सकती।

2. वाद-विवाद विधि

(Discussion Method)

आधुनिक शैक्षिक विचारधारा के अनुसार छात्र को निष्क्रिय श्रोता नहीं माना जाता, बल्कि उसको सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रखने पर बल दिया जाता है। छात्र जिस ज्ञान को क्रिया द्वारा प्राप्त करता है वह स्थायी रहता है। वाद-विवाद अथवा तर्क-वितर्क विधि द्वारा ज्ञान छात्र को सक्रिय बनाये रखने की दृष्टि में प्रयोग किया जाता है।

वाद-विवाद अथवा तर्क-वितर्क विधि का अर्थ

(Meaning of Discussion Method)

1. **योकम एवं सिम्पसन (Yokam and Simpson) का विचार**, ''वाद-विवाद बातचीत का एक विशिष्ट रूप है। इसमे सामान्य बातचीत की अपेक्षा अधिक

...त एवं विवेकयुक्त विचारों का आदान-प्रदान होता है। सामान्यत: वाद-विवाद में ...पूर्ण विचारों एवं समस्याओं को शामिल किया जाता है।''

2. **थॉमस डब्ल्यू. रॉस्की (Thomas W. Rouski)**-का विचार, ''अध्ययन ...जाने वाली समस्या अथवा प्रकरण में निहित सम्बन्धों का तर्क-युक्त विवेचन ही ...-विवाद है।''

3. **जेम्ज एम. ली (James M. Lee)**-का विचार, ''वाद-विवाद एक सामूहिक क्रिया है जिसमें अध्यापक एवं छात्र सहयोगात्मक रूप से किसी समस्या अथवा प्रकरण ...र वार्तालाप करते हैं।''

उपरोक्त परिभाषाओं के प्रकाश में कहा जा सकता है कि वाद-विवाद शिक्षण की ...ह विधि है जिसमें अध्यापक एवं छात्र मिलजुल कर स्वतन्त्रतापूर्वक सामूहिक रूप में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। वाद-विवाद में अध्ययन तथा तैयारी, विषय-वस्तु का चयन एवं गठन, विचारों का आदन-प्रदान तथा प्रक्रिया सभी कुछ आ जाता है। वाद-विवाद का प्रमुख लक्ष्य छात्रों को 'सामूहिक चिन्तन' अथवा 'सामूहिक निर्णय' की शिक्षा देना है।

वाद-विवाद के रूप (Forms of Discussion)-वाद-विवाद के रूप निम्नलिखित हैं-

1. औपचारिक वाद-विवाद (Formal Discussion)-औपचारिक वाद-विवाद में निश्चित नियमों का पालन आवश्यक है। इसमे प्रत्येक कार्य क्रमानुसार एवं विधिपूर्वक किया जाता है। ऐसे वाद-विवाद के लिए छात्र स्वयं में से सभापत्ति, मन्त्री तथा अन्य पदाधिकारी चुनते हैं। इनके निर्देशन में छात्र सभी कार्यों को निर्धारित नियमों के अनुसार करते हैं। पेनल फोरम (Panel Forum), सिम्पोजियम (Symposium) आदि औपचारिक वाद-विवाद के विभिन्न रूप है।

2. अनौपचारिक वाद-विवाद (Informal Discussion)-अनौपचारिक वाद-विवाद में किसी विधि अथवा निर्धारित नियमों का पालन नहीं किया जाता। इस प्रकार के वाद-विवाद में छात्र किसी प्रश्न या समस्या पर अध्यापक के निर्देशन में स्वतन्त्रतापूर्वक विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।

वाद-विवाद के प्रमुख अंग (Essential Constituents of Discussion)-वाद-विवाद के प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं-

1. नेता (Leader)-अध्यापक स्वयं ही समूह का नेता होता है। वही विवाद-विवाद का आयोजन करता है। वह समस्या प्रस्तुत करता है, उद्देश्यों पर प्रकाश डालता है तथा सम्बन्धित सामग्री के स्त्रोतों को बतलाता है तथा वाद-विवाद का निर्देशन करता

है। उसका कार्य यह भी देखना है कि सभी छात्र वाद-विवाद में भाग ले रहे हैं। इस सावधानीपूर्वक स्थिति का अवलोकन करना चाहिए।

2. छात्रों का समूह (Group of Students)-यहां समूह का अर्थ सामान्यतः विज्ञान की कक्षा के छात्र हैं। कक्षा के छात्रों का बौद्धिक स्तर, स्वभाव तथा रुचियां भिन्न-भिन्न होती हैं। कुछ धीमी गति से सीखने वाले छात्र होते हैं तथा कुछ तीव्र गति से। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह सभी प्रकार के छात्रों को वाद-विवाद में भाग लेने के लिए उत्साहित करे। कक्षा के मन्द छात्रों के विचारों को भी ध्यान से सुनना चाहिए तथा उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए।

3. समस्या अथवा विषय (Problem or Topic)-वाद-विवाद के लिये समस्या अथवा विषय अध्यापक तथा छात्रों द्वारा मिलकर चुना जाना चाहिए। जो समस्या चुनी जाए वह वास्तविक, क्रियात्मक तथा छात्रों की योग्यताओं के अनुकूल होनी चाहिए। यह शैक्षिक सम्भावनाओं से ओत-प्रोत होनी चाहिए। यदि समस्या क्रिया से सम्बन्धित है तो छात्र उसमें रुचि लेंगे। समस्या को यथासम्भव निश्चित एवं स्पष्ट कर लिया जाना चाहिए।

4. सामग्री (Content)-सामग्री का अर्थ है अध्ययन के लिए आवश्यक विषय-वस्तु। इसमें चित्र, मानचित्र, चार्ट, आकृतियां एवं अन्य श्रव्य-दृश्य सहायक साधन शामिल हैं। विषय-वस्तु के प्रतिपादित सत्यों के बारे में किसी प्रकार का वाद-विवाद नहीं किया जा सकता परन्तु उसकी सत्यता को सिद्ध किया जा सकता है। मूल्यों के सम्बन्धित विभिन्न तत्त्वों पर वाद-विवाद भी किया जा सकता है तथा छात्र अपने सत्य स्वयं प्रतिपादित कर सकते हैं।

5. मूल्यांकन (Evaluation)-वाद-विवाद के अन्त में इस बात का मूल्यांकन करना चाहिए कि वाद-विवाद निर्धारित उद्देश्य प्राप्त करने में कहां तक सफल रहा है ? विषय-वस्तु के ज्ञान में कितनी वृद्धि हुई है ? वाद-विवाद में कहां-कहां कठिनाइयां आईं हैं ? क्या कमियां रही हैं ? क्या प्रत्येक छात्र ने भाग लिया ? क्या कुछ छात्र ही वाद-विवाद पर छाये रहे ? सफल वाद-विवाद वही माना जाता है जिससे छात्रों के विचारों में वांछनीय परिवर्तन हो।

वाद-विवाद विधि के लाभ (Advantages of Discussion Method)-वाद-विवाद विधि के लाभ निम्नलिखित हैं-

1. सामूहिक निर्णय (Group Decision)-वाद-विवाद द्वारा छात्र सामूहिक रूप से निर्णय करना सीख जाते हैं। वाद-विवाद सामूहिक रूप से निर्णय लेने की एक प्रक्रिया है।

2. ज्ञान की प्राप्ति (To gain knowledge)-वाद-विवाद विधि प्राप्ति का एक ढंग है। विभिन्न विचारों को सुनने से ज्ञान में वृद्धि होती है।

3. सहयोग की भावना का विकास (Development of the Feeling of co-operation)-वाद-विवाद द्वारा छात्र में सहयोग एवं सहनशीलता की भावना का विकास होता है। वे मिल-जुल कर कार्य करना सीखते हैं।

4. प्रतियोगिता की भावना का विकास (Development of the Feeling of Competition)-छात्रों में सहयोगितापूर्ण प्रतियोगिता की भावना का विकास होता है।

5. तर्क शक्ति का विकास (Development of The Reasoning Power)-इस विधि द्वारा छात्रों में तर्क शक्ति एवं अन्य बौद्धिक शक्तियों का विकास होता है।

6. स्वाध्याय का विकास (To Encourage Self-study)-इस विधि द्वारा छात्रों में स्वाध्याय एवं स्वतन्त्र अध्ययन करने की आदत का विकास होता है।

7. सोद्देश्यपूर्ण अध्ययन (Purposeful Study)-यह विधि छात्रों को सोद्देश्यपूर्ण अध्ययन करना सिखलाती है।

8. व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर आधारित (Based upon the Principle of Individual differences)-यह विधि व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर आधारित है।

9. क्रियाशीलता पर आधारित (Based upon Workability)-यह विधि क्रियाशीलता के सिद्धान्त पर आधारित है। यह छात्र को क्रियाशील बनाए रखती है सीखने की क्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने वाला बन जाता है। सक्रियता से सीखा हु ज्ञान स्थायी होता है।

10. विषय-वस्तु का चयन एवं संगठन (Selection and Organisation of Subject-matter)-यह विधि छात्रों को विषय-वस्तु का चयन एवं संगठन करना सिखाती है।

वाद-विवाद के दोष (Disadavntages of Discussion Method)-वाद-विवाद के दोष निम्नलिखित हैं-

1. कुछ ही छात्रों का एकाधिकार (Monoply of a few students)- इस विधि में थोड़े से चतुर एवं प्रतिभाशाली छात्र वाद-विवाद पर प्रभुत्व जमाए रखते हैं। बाकी छात्र सक्रिय रूप से भाग नहीं लेते। इसलिए छात्रों को सीखने के समान अवसर नहीं मिल पाते।

2. समय का अपव्यय (Wastage of Time)-इस विधि का प्रयोग करने से छात्रों का बहुत-सा-समय व्यर्थ ही चला जाता है। कभी-कभी कक्षा में निरर्थक वाद-विवाद होने लगता है और छात्रों का समय नष्ट होता है।